Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
January-Februray 2025
Volume 13, Issue 1-2

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 1–2 (1) | जनवरी–फरवरी : 2025 | आईएसएसएन : 2321–8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर – 335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग,** एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज,** पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	8-8
2.	वैदिक साहित्य समन्वय भावनाय समाधिप्रकाश आरण्य	बाबलू वर्मन	9-15
3.	कानून और मानवाधिकार	सरजीत सिंह	16-19
4.	**Narrating the Climate Crisis : Emerging Voices in Contemporary Climate Fiction**	**Parul Yadav**	**20-23**
5.	**Baba Bulleh Shah As a Punjabi Sufi Poet : A Brief Historical Interpretation**	**Dr. Sarita Rana**	**24-29**
6.	मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता : सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन	प्रियंका भारती, डॉ. सीमा बर्गट	30-36
7.	**BRAVE AND UNBREAKABLE : WOMEN IN FREEDOM STRUGGLE**	**Dr. Harwinder Kaur**	**37-39**
8.	हिंदी सिनेमा में लैंगिक रूढ़िवादिता का चित्रण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	पूनम शर्मा	40-44
9.	विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से सूर्यनमस्कार का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. महेश चन्द्र	45-48
10.	**Indian Software Exports Industry : Challenges and Opportunities in the Age of Artificial Intelligence**	**Dr. Vishal Ranjan Tripathi**	**49-53**
11.	**Restructuring School Curriculum and Pedagogy under NEP 2020**	**Dr. Sunita Kumari**	**54-60**
12.	देवनागरी लिपि का मानकीकरण और वैज्ञानिक	डॉ. जी. पी. अहिरवार, नीलेश कुमार प्रजापति	61-67
13.	भगवतीचरण वर्मा कृत उपन्यास 'चित्रलेखा' का फिल्मांतरण : एक समीक्षा	डॉ. वंदना तुकाराम काटे	68-71
14.	अनिवार्य कोर पाठ्यक्रम की शिक्षा में आवश्यकता : नई शिक्षा नीति के संदर्भ में	पुनीता, प्रोफे. सविता श्रीवास्तव	72-75

15.	पर्यावणीय आत्मीयता वर्तमान शिक्षा की आवश्यकता	बरखा बेन्स, प्रोफे. सविता श्रीवास्तव	76–79
16.	समाज-सुधारक कबीर की स्त्री-विषयक धारणाएं	डॉ० योजना कालिया	80–85
17.	पृथ्वीराज रासो के महत्वपूर्ण तथ्य	श्रीमती सुमित्रा	86–91
18.	संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और भारतीय संविधान के अनुसार मानवाधिकार	Surendra Kumar Pareek	92-98
19.	बीसवीं सदी की नई अवधारणा : नव-वामपंथ विमर्श	डॉ. बैजू के	99–106
20.	युवा भागीदारी के मार्ग में आने वाली बाधाएं व चुनौतियां	डॉ. अल्का	107–109
21.	स्वतंत्र भारत में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का परिदृश्य	Surendra Kumar Pareek	110-116
22.	भारतीय समाज में परम्परागत सामाजिक संबंध एवं डिजिटल सामाजिक संबंध	डॉ. योगेश कुमार त्रिपाठी, डॉ. कमल कश्यप भास्कर	117–121
23.	"मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी" : तृतीय लिंगी समुदाय के संघर्ष और स्वीकृति की यात्रा	डॉ. वी. गोविंद	122–125
24.	COMPARISON OF SUICIDE RATIO IN BETWEEN KOTA CITY AND OTHER CITIES	Anzari Begam	126-131
25.	नगण्यता की ताकत को अभिव्यक्त करने वाला कवि	शिवानी शर्मा	132–136
26.	'रांगेय राघव' और शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक तुलनात्मक अध्ययन (प्रगतिशील सामाजिक चेतना के काव्यकार के विशेष संदर्भ में)	डॉ. नेमीचन्द कुमावत	137–144
27.	नवजागरणकालीन समाज सुधारक और स्त्री प्रश्न	पवन कुमार	145–150
28.	संगीत और गणित : एक गहरा संबंध	Jitendra Saini	151-157
29.	वर्तमान में हड़प्पा सभ्यता से पर्यावरण संरक्षण की सीख	बलराम सैनी	158–161
30.	न्यू मीडिया का युवा व्यवहार पर प्रभाव : पूर्ववर्ती अध्ययन का विश्लेषण	नितिन कुमार, डॉ. सुशील कुमार	162–169
31.	ग्रामीण विकास में पारंपरिक मीडिया का प्रभाव : सूचना संप्रेषण का एक माध्यम	नवीन कुमार, डॉ. सुशील कुमार	170–176
32.	विद्यालयों में पारंपरिक और आधुनिक संगीत का समावेश : एक नया दृष्टिकोण	Jitendra Saini	177-184

33.	हिंदी भक्ति काव्यधारा में हरियाणा का योगदान	डॉ० यशवीर दहिया	185–188
34.	उदय प्रकाश के कथा साहित्य में पारिवारिक संघर्ष	आलडो डोमनिक मेन्डस, प्रो. डॉ. संजय ए मादार	189–191
35.	**EXPLORING AND EXPLAINING RAPE WITH SUBALTERN APPROACH : A READING OF MANJULA PADMANABHAN'S LIGHTS OUT**	**Ms. Jagruti Patel**	**192-197**
36.	**The Ethics of Kant and the *Bhagavad-Gitā* : A Comparative Analysis**	**Dr. Gauranga Das**	**198-209**

सम्पादक की कलम से..... शोध संगम पत्रिका के जनवरी–फरवरी 2025 अंक में आपका स्वागत है।

प्रिय पाठकों,

हमारे इस विशेषांक में, हमने समकालीन शोध, सामाजिक मुद्दों, और सांस्कृतिक विमर्श पर केंद्रित लेख प्रस्तुत किए हैं। इस अंक में शामिल प्रमुख विषयों पर एक संक्षिप्त दृष्टि :–

1. **समकालीन शोध की दिशा :–**

वर्तमान में, शोध की दिशा तेजी से बदल रही है। नई तकनीकों और विधियों के साथ, शोधकर्ता अपने क्षेत्रों में नवीनतम ज्ञान की खोज में जुटे हैं। इस खंड में, हम विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण शोध कार्यों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

2. **सामाजिक मुद्दों पर विमर्श :–**

समाज में व्याप्त असमानताएँ, पर्यावरणीय संकट, और मानवाधिकार जैसे मुद्दे आज भी प्रासंगिक हैं। इस खंड में, हमने इन विषयों पर विशेषज्ञों के विचार और समाधान प्रस्तुत किए हैं।

3. **सांस्कृतिक विमर्श :–**

हमारी सांस्कृतिक धरोहर और उसकी वर्तमान स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। इस खंड में, हमने विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं, उनकी चुनौतियों, और संरक्षण के उपायों पर लेख प्रस्तुत किए हैं।

4. **विज्ञान और प्रौद्योगिकी :–**

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही प्रगति समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रही है। इस खंड में, हमने नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी नवाचार, और उनके सामाजिक प्रभावों पर चर्चा की है।

नई कार्य योजनाएँ :–

हमारी आगामी कार्य योजनाओं में निम्नलिखित प्रमुख पहलें शामिल हैं :–

- **विशेषांक प्रकाशन** – हम विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर विशेषांक प्रकाशित करने की योजना बना रहे हैं, ताकि इन क्षेत्रों में गहन विमर्श को बढ़ावा मिल सके।
- **ऑनलाइन मंच का विस्तार** – हम अपने डिजिटल प्लेटफॉर्म को और अधिक इंटरैक्टिव और उपयोगकर्ता–मित्रवत बनाने की दिशा में काम कर रहे हैं, जिससे पाठकों और लेखकों के बीच संवाद को सुदृढ़ किया जा सके।
- **शोध कार्यशालाएँ** – हम शोधकर्ताओं और छात्रों के लिए कार्यशालाओं और सेमिनारों का आयोजन करेंगे, ताकि नवीनतम शोध विधियों और तकनीकों पर चर्चा की जा सके।

हम आशा करते हैं कि यह अंक आपके ज्ञानवर्धन में सहायक होगा और समकालीन मुद्दों पर आपकी समझ को विस्तृत करेगा। आपके सुझाव और प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए मूल्यवान हैं। कृपया हमें अपनी राय से अवगत कराएं।

–सम्पादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 9–15

वैदिक साहित्य समन्वय भावनाय समाधिप्रकाश आरण्य

बाबलु बर्मन

अतिथि अध्यापक, संस्कृत विभाग, रायगञ्ज विश्वविद्यालय, पश्चिमबङ्ग।

पृथिवीर समुदय जातिरई आदि वासस्थान भारतवर्ष। भारतवर्षई पृथिवीर सकल जातिर साधारण जननी। ऋषि महापुरुषदेर मातृभूमिते साधनार क्षेत्र नामे परिचित। ऋषिदेर आदर्श, मानषिकता, आध्यात्मिक, व्यवहारिकेर समता प्रकाशित हय। समाजेर प्रत्येक व्यक्तिके नाना दायवद्धता निये कल्याणेर पथे एगिये निये यावे। ताई ऐतरेयब्राह्मण शुनःशेप आख्यानेर तृतीयखण्डे वला हय-"चरैवेति चरैवेति"[1] वाणी स्मरण करे देय। समग्र जगत् ओ प्रकृतिर प्रति आमादेर दायिक्त निते हवे। समाजेर दुःखी-दरिद्र आर्त मानुषेर सेवार मध्यदिये आमादेर सेई कर्तव्य पालन करते हवे। आमादेर पारिपाश्विर्क परिवेश ओ मानुषेर प्रति किछु कर्तव्य पालन ओ मानवजीवनेर अङ्ग। वृहत्तर समाजेर सेवा करते हवे। आर एई वृहत काज केउ एका विच्छिन्नभावे करते पारवे ना। सेईजन्य सङ्घवद्ध हये ओ मिलित शक्तिर द्वारा आस्थाशील हये निजेदेर दायिक्त बुझे निते हवे। ताई ऋषिकण्ठे महामिलनेर वाणी वर्णित हयेछे-

"संगच्छध्वं संवदध्वं ..... यथा वः सुसहासते।।"[2]

तोमरा सकले एकत्रे मिलित हও, एकत्रे कथा उच्चारण कर, तोमादेर मन एकत्रित ओ एकमत होक। प्राचीन देवगण एईरूपे एकमत हये यज्ञभाग ग्रहण करेछिलेन। एदेर मन्त्र एक होक, मन एक होक, चित्त एकहोक। आमि तोमादेर एकई मन्त्रे मन्त्रित करछि एवं तोमादेर सर्वसाधारण हविर द्वारा होम करेछे। तोमादेर अभिप्राय एक होक, हृदय एक होक, तोमादेर मन एक होक, तोमारा येन सर्वांशे सम्पूर्णरूपे ऐक्य लाभ कर।

वैदिक प्रणव वा ओङ्कारेर मध्ये आमरा महामिलनेर मन्त्र पाई। तैत्तिरीय उपनिषदे– "ओम"- महामन्त्रके ब्रह्म वलेछेन। जगते या किछु आछे समस्तई ওঁ वा ओम् एर अन्तर्गत। ताई- "ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्"[3] सामवेदीय तर्पण मन्त्रे-"ওঁ सर्वेभ्यो नमः" सकलकेई नमस्कार

[1] ऐतरेयब्राह्मण, शुनःशेपोपाख्यान, तृतीय खण्ड।

[2] ऋग्वेद, १०।१९१।२-४।

[3] तैत्तिरीय उपनिषद्, १/८।

করে আর্য হিন্দু অঞ্জলি দান করছেন। আর্যহিন্দু বলেছেন-"ওঁ দেব যক্ষাস্তথা নাগা গর্ন্ধবাপ্সরসোহসুরাঃ। ক্রুরাঃ সর্পাঃ সুপর্ণাশ্চ তরবো জিম্ভগা খগাঃ। বিদ্যাধরাজলাধারা স্তথৈবাকাশগামিনঃ। **নিরাহারশ্চ য়ে জীবা: পাপে ধর্মেরতাশ্চ য়ো তেষামাপ্যয়নায়ৈতদ্দীয়তে সলিলং ময়া।..ওঁ যে বান্ধবা বান্ধবা যেহন্যজন্মনী বান্ধবা:। তে তৃপ্তিমখিলাং যান্তু যে চাস্মত্তোয কাঙ্খিণা। ওঁ আব্রাহ্ম ভুবন্নাল্লোকা দেবষির্পিতৃমানবা: অতীতকুল কোটীনাং সপ্তদীপ নিবাসিনাং মযা দত্তেন তোয়েন তৃপ্যন্তু ভুবনত্রয়ং। ওঁ আব্রহ্মস্তস্ব-পর্যন্তং জগত্তৃপ্য তাম্"।**[4] বুদ্ধদেব বিশ্ব মৈত্রীতে আবদ্ধ হয়ে বলেছেন-

"অপাদকেহি মে মেত্তম্। মেত্তম্ দ্বিপাদকে হি মে।

চতুষ্পাদে হি মে মেত্তম্। মে ওম বহুপদেহিমো মা মম

অপদকো হিংসি মা মম হিংসি বহুস্পদো। সর্ব্বে সত্তা সর্ব্বে পানা সর্ব্বে ভূতা চ কেবলা সর্ব্বে ভদ্রানি পস্যন্তু মা কিঞ্চি পাপমাগমতি"।[5] অর্থাৎ- আপনাদের প্রতি আমার মৈত্রী, দ্বিপাদ, চতুষ্পাদ, বহু পাদের প্রতি আমার মৈত্রী। অপাদেরা যেন আমাকে হিংসা না করে। সর্বসত্ত্ব, সর্বপ্রাণী, সর্বপ্রকার, সর্বভূত ভদ্র বা মঙ্গল করুক। তাদের যেন কোন পাপ না আসে। প্রহলাদের মুখে উক্ত হয়– "দেবা মনুষ্যাঃ পশবঃ ..... প্রসন্নে ক্লেশ সংক্ষয়"।।[6]

ভিন্নের ন্যায় স্থিত হলেও দেব, মনুষ্য, পশু, পক্ষী, বৃক্ষ, সরীসৃপ সকলেই অনন্ত বিষ্ণুর রূপ-এই অবগত হয়ে সমস্ত স্থাবর জঙ্গম জগৎ সকলেই অনন্ত বিষ্ণুর রূপ। এই বিষ্ণুই বিশ্বরূপ ধারী জানলে সেই ভগবান অনাদি অচ্যুত পরমেশ্বর তার প্রতি প্রসন্ন হন। তিনি প্রসন্ন হলে ক্লেশ সংক্ষয় হয়। হিন্দু তাই বাহ্যতঃ বিবাদকারী সমস্ত দর্শনের মধ্যেও মহামিলন ঘটায়-

"যং শৈবা সমুপাসতে শিব ইতি ব্রহ্মেতি বেদান্তি নো।

বৌদ্ধা বুদ্ধ ইতি প্রমাণ পটবঃ কর্তেতি নৈয়ৈয়িকা।

অর্হন্নিত্যথ জৈন শাসনরতাঃ কর্মেতি মীমাংসকাঃ।

সোহয়ং বো বিদধুতু বাঞ্ছিত বলং ত্রৈলোক্যনাথ হরিঃ"।।[7]

---

[4] **বিষ্ণুপুরাণম্**, 3/11/32-36।

[5] বিনয়পিঠক, চুল্লবগা, ৫।৬। অঙ্গুত্তর নিকায়, ৪।৬৭।৩।

[6] বিষ্ণুপুরাণ, ১১৯।৪৭-৪৯।

[7] ঐ, ৪ ও ৫ম খন্ড,২৭।

অর্থাৎ- শৈবেরা যাকে শিব বলে উপাসনা করেন, বেদান্তিকরা যাকে ব্রহ্ম বলেন, বৌদ্ধরা যাকে বুদ্ধ বলেন, নৈয়ায়িকরা যাকে প্রমাণ পটব কর্তা বলেন,জৈন্যরা যাকে নিত্য অর্হৎ বলেন,মীমাংসকরা যাকে কর্ম বলেন সেই ত্রৈলোক্যনাথ হরি তোমাদেরকে বাঞ্ছিত ফল প্রদান করুক।

ভারতীয় মুসলমানরা সমন্বয় সাধনারও বিপুল স্তম্ভ। ধর্ম ও ঈশ্বর ভক্তি জাতিবর্ণ নির্বিশেষে সকল মহাপুরুষের ভিতরেই যে আবিভূত হয়ে থাকে তা-"কোরাণ শরিফ"- এ পাই। কোরাণের ২য় সুরা ১৫৬ আয়াতে(শ্লোকে)...

কোরাণের ২য় সুরা ৫৯আয়াতেও আছে- যে কেউ মুসলমান, ইহুদী, খ্রীষ্টান, যে যে ধর্মাবলম্বীই হোক তিনি যদি জগৎ বিশ্বাসী হন এবং পবিত্র ও ন্যায় কর্মচারী হন তবে তিনি ভগবান কর্তৃক পুরস্কার হবেন এবং দঃখ ভয় হতে মুক্ত হবেন। পয়গম্বর মহাম্মদের এই সমন্বয় সাধনা সর্ব ধর্মাবলম্বীর উপর মৈত্রীভাব বহু ভারতীয় মুসলমানের ভিতর প্রকাশিত হয়ে জীবন্ত অনুপ্রেরণা দিচ্ছে। ভারতীয় সাধু সন্নাসীর ন্যায় এরাও ত্যাগ ও বৈরাগ্য এবং প্রেমের এই জীবন্ত মূর্তি।

সংঘবদ্ধতার মহান শক্তির যথার্থতাও প্রমাণিত হয় ধর্মপদের সেই অমোঘ বাণী— "সুখা সংঘস্য সামগগি সমগানাং তপো সুখো"[8] অর্থাৎ সংঘের একতা সুখদায়িকা, একতাবদ্ধগণের তপস্যা সুখদ। স্বামী সমাধি প্রকাশ অরণ্য মহোদয় বলতেন-"এ জগতে কেউ ছোট নয়, কেউ তুচ্ছ নয়, কেউ অস্পৃশ্য নয়, কেউ ঘৃণার পাত্র নয়। আজ তোমরা প্রত্যেকে প্রত্যেকের নিকট সমান- একমন, এক প্রাণ। তোমাদের মানসিকতা, সহমমিতা, একাত্মতা চির অক্ষয় হোক। তোমাদের সকলের সর্বাঙ্গীন নঙ্গল হোক। এই সাম্যবাদীর মাধ্যমে জগতের কল্যাণ হবে।"[9] সমস্ত প্রাণীর সুখ প্রাপ্তির জন্যই ধর্মের বিধান। এই সংজ্ঞা নির্দেশ সর্বজনীন, সর্বদেশিক, সর্বরাষ্ট্রিক, সর্বকালিক।(হিন্দু সংগঠন,পৃঃ৯০) সর্বদা উন্নত ভাবরাজ্যে থাকার ফলে শরীরের ইন্দ্রিয়গুলি উদ্দাম ও উচ্ছৃঙ্খলা ভাব ধারন করতে পারে না (বি.প্র.ধ.শিক্ষা,৪১) পথ কঠিন ও দুর্গম বলে যে যা ত্যাগ করে সে দুর্বল, ভীরু, কাপুরুষ। সাধনার পথ সহজ নয়। তাই কঠোপনিষদে বলেছেন-

উত্তিষ্ঠত জাগ্রত প্রাপ্য বরান নিবোধিত
ক্ষুরস্য ধারা নিশিতা দুরত্যয়া দুর্গম্ পথস্তাৎ কবয়ো বদন্তি।।[10]

---

[8] ধর্মপাদ, ১৪।১৬।

[9] সমাধি বাণী, ৫।

[10] কঠোপনিষদ্, ১অধ্যায়, ৩য় বল্লী।

অর্থাৎ- অজ্ঞান নিদ্রা থেকে উত্থান কর। জাগ্রত হও। উৎকৃষ্ট আচার্য্যের কাছে গিয়ে পরমাত্মা সম্বন্ধীয় জ্ঞান লাভ কর। ক্ষুরের শাণিত ধার দুরবলম্ব, তেমনি সেই তত্ত্বসাক্ষাৎরুপ যোগপথকে পণ্ডিতরা দুর্গম বলেছেন।

স্বামীজী বলেছেন-"বিশ্বমানবতার সমদর্শনে নারীর সম্পদ" ধর্মীয় প্রতিষ্ঠানের জীবন বর্ধনে নারীর সহযোগীতা, দান, সৃজনীকৃষ্টি, দিব্যদর্শন সাধনার বিজয় অভিযান। পরিবারে, সমাজে, রাষ্ট্র আজও নারী জীবনের উন্নতি সাধনে ব্রতী।" বৈশেষিক দর্শনে-যতোহভ্যুদয় নিঃশ্রেয়স সিদ্ধি স ধর্মঃ।"[11] নরনারী, স্ত্রী-পুং নির্বিশেষে সকলেই সেই চৈতন্যস্বরূপ পরমব্রহ্ম। পরপুরুষ যেখানে, সেখানে স্ত্রী-পুরুষ লিঙ্গভেদ দেহভেদ আদৌ নেই। ব্রহ্মবাদী সসমন্বয়ী বুদ্ধিতে স্ত্রীপুরুষের সমদর্শন, আত্মদর্শন প্রতিষ্ঠিত করলে ক্ষুদ্র ভয় দূর হয়। স্বামীজী আরো বলেন-"আমি তোমাদের সকলের সেবক, তোমরা সকলেই আর্য্যজাতি, আর্য্যজাতির সেবাই আমার ধর্ম", আর্যজাতি গঠন করলেই এই আর্যসঙ্ঘ প্রতিষ্টা করেন। শ্রীসতীশচন্দ্র বিশ্বাস গান গাইতেন-

আর্যজাতির গঠনকল্পে আর্যসঙ্ঘের প্রাণ দান।
নইলে জাতি ধ্বংস হবে ভারত হবে মহাশ্মশান।।
সাধক সমাধি প্রকাশ সর্বশক্তির মহাবিকাশ।
দেশের তরে জাতির তরে, কাঁদে তাঁহার মহাপ্রাণ।।[12]

সমাধি মহোদয় সকল শিষ্যদের উদ্দেশে বলেছেন-

আর্যং শরণং গচ্ছামি ধর্মং শরণং গচ্ছামি।
সঙ্ঘং শরণং গচ্ছামি সমাধিং শরমং গচ্ছামি।।

অর্থাৎ-আর্য ও সঙ্ঘের শরণাপন্ন হও। ধর্মের পরিপন্থিহও। সমাধিই একমাত্র শ্রেষ্ঠ ধর্ম। গণতন্ত্রের এই ধর্ম মিলনোৎসবে সঙ্ঘ শক্তি জাগ্রক ও প্রাণবান হয়। আর্য়, সাধু, সজ্জন, বুদ্ধ শ্রেষ্ঠ যারা তারা সঙ্ঘশক্তির ভিতর দিয়ে সমবেত শক্তিকে মূর্ত ও স্ফুর্ত করেন। শ্রীকৃষ্ণ বলেছেন— ব্রহ্ম আত্মারূপ আমি সর্বজীবে, সর্ব মানবে সব ব্রাহ্মণে, শূদ্র চণ্ডালে আদি। গীতায় আছে-

"সর্ব্ব ভূতাস্থমাত্মনং সর্ব্বভূতানি চাত্মনি।
ঈক্ষতে যোগ যুক্তাত্মা সর্বত্র সমদর্শনঃ।।[13]

---

[11] বৈশেষিকসূত্র, 1/1/2।

[12] বার্ষিক আর্যসংঘ্য, ৪-৫খণ্ড, ১৯৯২, পৃ-৩৪।

[13] গীতা, ৬।৩।

দর্শনে বিজ্ঞানে মানবে মানবে জীবে যেখানে আন্তর ঘৃণা, বিদ্বেষ, হিংসা, গণলুণ্ঠন, গণহত্যা, যেখানে বাহ্য কৃত্রিম সমবোধের হরিবোল শ্মশান যাত্রার হরিবোলের মতই বিয়োগাত্মক tragical, পাশ্চাত্যের ঐ কৃত্রিম, অবৈজ্ঞানিক, অদর্শনিক ধনসাম্যবাদের বিরুদ্ধে ভারতে যে বিশুদ্ধ genuine, বৈজ্ঞানিক, দার্শনিক মহামানব, মহাপুরুষ আচরিত সনাতন সমদর্শন তাই মানব জীবন এবং সর্বজীব জীবনে সুপ্রতিষ্ঠিত করতে পারলেই তা হবে যথার্থ সমদর্শন।

ভারতের সমদর্শন সর্বজীবে সর্বভূতে সমদর্শন, ব্রহ্মদর্শন, তাই গীতা(৫/১৮)। মহাভারতের শান্তিপর্বে বলেছেন-

বিদ্যা-বিনয়-সম্পন্নে-ব্রাহ্মণে-গবিহস্তিনি।

শনি চৈব শ্বপাকে চ পণ্ডিত্যঃ সমদর্শনঃ।।

অর্থাৎ বিদ্বান ও বিনয়ী ব্রাহ্মণ গরু হস্তী কুকুর ও চণ্ডালে ব্রহ্মজ্ঞানীগণ সমদর্শন করেন। গীতা ভাষ্যকার মধুসূদন সরস্বতী উপমা দিয়ে বলেছেন-সূর্য যেমন গঙ্গা জলে ও সুরাতে প্রতকিবিম্বিত হলে গঙ্গা জলের গুণে বা সুরার দোষে লিপ্ত হন না সেইরূপে ব্রহ্ম শুদ্ধ ও অশুদ্ধি স্পর্শ করে না। গীতায় আছে-

ইহৈব তৈর্জিন্তঃ সর্গো যেষাং সাম্যে স্থিতং মনঃ।

নির্দোষং হি সমং ব্রহ্ম তস্মাৎ ব্রহ্মণি তে স্থিতাঃ।[14]

অর্থাৎ যাদের মন সাম্যে সর্বভূতস্ব ব্রহ্মেস্থিত এই জীবনেই তাদের সৃষ্টি বিজিত হয়েছে। যেহেতু ব্রহ্ম সম এবং দোষবর্জিত সেই হেতু তারা ব্রহ্মে অবস্থিত। মনুসংহিতাও বলেছেন-

সর্বভূতেষু চাত্মানং সর্বভূতানি চাত্মানি।

সমং পশ্যন্নাত্মষাজী স্বারাজ্যমধিগচ্ছতি।।[15]

অর্থাৎ সর্বভূতে সর্বজীবে আত্মা আছেন, আত্মাতেই সর্বজীবের সর্বভূতের অবস্থান। যে আত্মাযজ্ঞকারী এই ভাবে সমদর্শন করেন তারইস্বারাজ্য লাভ হয়। ঈশোপনিষদে আছে-

যস্তু সর্বানি ভূতানি আত্মন্যেবানুপশ্যতি।

সর্বভূতেষু চা-আত্মানং ততো ন বিজুগুপ্সতে।।[16]

যিনি সর্বদা সর্বভূতকে আত্মাতে এবং আত্মাকেও সর্বভূতে দর্শন করেন তিনি তার ফলে কাউকে ঘৃণা করেন না।

---

[14] গীতা, 5/19।

[15] মনুসংহিতা, 12/19।

[16] ঈশোপনিষদ্, ৬।

শাক্ত জাতির শক্তিসাধনা প্রকৃত সেইখানেই যেখান এই নারীশক্তিকে ধর্মেকর্মে, জ্ঞান-গরিমায়, ত্যাগবৈরাগ্যে, সাহসবীর্যে উদ্বুদ্ধ করার চেষ্টা আছে। অধঃপতিত ভারতবর্ষের শক্তিসাধনা ধর্মের নামে ব্যভিচারে পরিণত হয়েছে। পল্লীরমণী এই নারীশক্তিকে উদ্বোধিত করতে না পারলে একক নরের দ্বারা পল্লীবোধন যজ্ঞ সম্পন্ন হবে না।সোদরে সোদরে ঝগড়া বা মারামারি বাধলে এদের পত্নীরা যদি সে দাবানলে ইন্ধন না যোগায় তাতে মিলনের শান্তিবারি সেচন করেন আর ভাই ভাই, ঠাঁই ঠাঁই হতে পারে না। শিক্ষার বিস্তারের দ্বারা পূর্ণ্যময় ধর্মজীবন যাপন প্রয়াসের দ্বারা এই নারী জাতির ভিতর যদি মহামিলনের মঙ্গলবীজ বপন করা যায় তবে তা ফুল্ল, পেলব কুসুমদামে, রসপ্রচুর সুমধুর ফলদলে শুশোভিত হয়ে ভাইয়ে ভাইয়ে মানুষে মানুষে অন্তর্নিহিত প্রেমের ডার, স্নেহের নিগড়, প্রীতির বন্ধন দৃঢ় হবে। জাতীয় একতা প্রতিষ্ঠিত করতে হলে প্রথমে পল্লীতে পল্লীতে বিপুল জনগণের প্রাণেই ঐক্যতান সামগান পরিগীত করতে হবে। এই জন্য চাই পল্লীর সঙ্গশক্তির উদ্বোধন।

ব্রাহ্মণ, কায়স্তাদি উচ্চবর্ণের মধ্যেই সঙ্ঘশক্তি সর্বাপেক্ষা কম। এর প্রধান কারণ ইংরেজী শিক্ষার মোহিনী মায়ায় মুগ্ধ হয়ে এরা আত্মবিস্মৃত হয়েছেন। এই শঙ্ঘশক্তির সম্যক্ স্ফুরণ, প্রকৃত উদ্বোধনই জাতীয় জাগরণের প্রধান ভিত্তিভূমি, জীবন-সংগ্রামের প্রধান আয়ুধ। এই জন্য দরকার ঋত্বিক, পুরোহিত, নেতা, জনগণমনঅধিনায়ক...। জাতীয় জাগরণ, নব নব জাগরণের হিরণকিরণধারায় উল্লসিত, বিকশিত, প্রোদ্ভাসিত হয়। সঙ্ঘশক্তির অমর মহিমা, সর্বজয়ী অভিযান তখন জাতির হৃদয়ে বীর্য-দোদুল চন্দ রচনা করে। জগতের ইতিহাস ইহাই সাক্ষ্য দেয়।

মূল্যায়ন- এই নব অভ্যুদয়ের প্রথম কর্তব্যই পল্লীর জীবন প্রণালীর সঙ্ঘবদ্ধভাবে সংগঠন ও সংঘটন। সমস্ত ব্যক্তিস্বাতন্ত্র্যকে এবং সম্প্রদায় প্রাধাণ্যকে মানবসমাজপরতন্ত্রতার ভিতর একমুখী করতে না পারলে পল্লীর প্রকৃত শক্তি সঞ্চয় হবে না। এই ঐক্যপদ্ধতি পূর্বে বিরাজমান ছিল তা ক্রমশঃ রক্তহীন হতে হতে অতীব রুগ্ন ও বিকৃত হয়ে পড়েছে। সমাজ শক্তিকে পদদলিত করে যে ব্যক্তিশক্তি বিজয় গর্বে উৎফুল্ল হয়ে উঠেছে। সেই ব্যক্তিশক্তি বিজয়ের আনন্দ নেশায় সমষ্টি শক্তির পুনর্গঠনের কথা করছে না। এই সঙ্ঘশক্তির উদ্বোধন মানবসমাজতন্ত্রবাদ দ্বারাই সাধিত হয়। যতদিন পর্যন্ত সঙ্ঘশক্তি জাগ্রত হবে না ততদিন পর্য়ন্ত সমাজের অবস্থা উন্নত হবে না। পল্লীর সমাজতন্ত্রকে সঙ্ঘবদ্ধ করে জাগ্রত করতে হবে এবং তার সৃজনী শক্তি বা গঠন

শক্তিকে অব্যাহত এবং প্রবুদ্ধ করতে হবে। ব্যষ্টির সঙ্গে সমষ্টির সামঞ্জস্য সাধন করতে পারলে পল্লী-উদ্ধারণ কার্য সাফল্যমণ্ডিত হবে। কিন্তু এই বিরাট, মানব সমষ্টিকে এইরূপ সঙ্ঘভাবের দ্বারা অনুপ্রাণিত, উদ্বোধিত, জাগ্রত, বীর্য্যদীপ্ত করার জন্য যে শিক্ষাদীক্ষা চাই। যে সর্বত্যাগের গৈরিক বসনধারী প্রকৃত সাধক সন্ন্যাসী-মণ্ডলী চাই, তারা কোথায?

সহায়ক গ্রন্থঃ-

- ঈশোপনিষদ, স্বামী জুষ্ঠানন্দ, উদ্বোধন কার্যালয়, কলকাতা, ২০১৭।
- ঋগ্বেদসংহিতা, হৃদয়নারায়ণ দীক্ষিত, বাণী প্রকাশন, কলকাতা, ২০২০
- কঠোপনিষদ,স্বামী জুষ্ঠানন্দ, উদ্বোধন কার্যালয়, কলকাতা, ২০১৮।
- গীতা, স্বামী বাসুদেবানন্দ, উদ্বোধন কার্যালয়, কলকাতা, ২০১৯।
- ছান্দোগ্যোপনিষদ্, স্বামী জুষ্ঠানন্দ, উদ্বোধন কার্যালয়, কলকাতা, ২০১৭।
- জগদ্বন্ধুদর্শন, স্বামী সমাধিপ্রকাশ আরণ্য, শ্রীসরস্বতী প্রেস লিমিটেড, কলকাতা, ১৯৮০।
- মনুসংহিতা, মানবেন্দু বন্দ্যোপাধ্যায়, সংস্কৃত পুস্তক ভাণ্ডার, কলকাতা, ১৪১২।
- মহাভারত, কালীপ্রসন্ন সিংহ, কাব্য প্রদর্শন যন্ত্রে, কলকাতা, ১২৮৪।
- সমাধিবাণী, স্বামী সমাধিপ্রকাশ আরণ্য, হাসুয়া মঠ, উত্তরদিনাজপুর, ১৯৯২।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 16–19

कानून और मानवाधिकार

सरजीत सिंह
सहायक आचार्य (पंजाबी), राजकीय कन्या महाविद्यालय, पदमपुर, श्रीगंगानगर (राज.)

सारांश :–

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार कानून की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– (A rule or system of rules recognized by a country or community as refulating the actions of its member and enforce by imposing of penalties) व्यक्ति की स्वतंत्रता एक प्रमुख मानवाधिकार है किसी भी नागरिक को बेवजह गिरफ्तार करना, कानूनी मदद से बेदखल करना, कानूनी न्यायिक प्रक्रिया की अवहेलना मानवाधिकार हनन है। इस दिशा में क्या आचार–संहिता है और मानवाधिकार उसके पालन में कितनी जुगत (Approach) लगाता है यह जानना आवश्यक है।

मुख्य शब्द : गिरफ्तार, कानून की शक्ति, न्यायिक प्रक्रिया की अवहेलना, पूजा–पाठ की सुविधा, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय कानून।

प्रस्तावना :–

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार कानून की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :–

'A rule or system of rules recognized by a country or community as refulating the actions of its member and enforce by imposing of penalties.'

अर्थात् अधिकार या मानवाधिकारों में जो शक्ति समाहित है, वह कानून की शक्ति है। ये कानून किसी भी रूप में हो सकते हैं। पहले यह अलिखित और परम्परा या रीति–रिवाजों के रूप में थे, फिर लिखित हुए और अब राष्ट्रीय सरहदों के पार अर्न्तराष्ट्रीय रूप में हैं। अतः यह कहना गलत नहीं कि अधिकार खुद कानून है क्योंकि उन्हें प्रशासन सरकार और समाज से मान्यता मिली होती है। कानून दोषी और निर्दोष का फैसला करता है, निर्दोष के अधिकारों की रक्षा करता है और दोषी को सचेत करता है या सजा देता है।

कानूनी मानवाधिकार क्या है?

व्यक्ति की स्वतंत्रता एक प्रमुख मानवाधिकार है। किसी भी नागरिक को बेवजह गिरफ्तार करना, कानूनी मदद से बेदखल करना, न्यायपूर्ण न्यायिक प्रक्रिया की अवहेलना आदि वे मानवाधिकार हनन है जिनका सम्बन्ध कैदियों से है। भारत में किसी भी अपराधी या संदेही व्यक्ति को वारंट या बिना वारंट के कैद किया जा सकता है लेकिन संविधान की धारा 221(1) और भारतीय दंड संहिता की धारा 167 के तहत हर एक ऐसे व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह यह जान सके कि उसे किस कारण गिरफ्तार किया जा रहा है।

गैर–कानूनी तलाशी और जमानत पर छूटने का अधिकार सभी भारतीय नागरिकों को प्राप्त है। अर्न्तराष्ट्रीय और भारतीय कानून, कैद के दौरान मारपीट, दुर्व्यवहार, शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना आदि की इजाजत नहीं देते। हर कैदी को जेल में कुछ बुनियादी सुविधायें मिलने का अधिकार और कानूनी व्यवस्था है। इसका पालन सही तरीके से हो सके इसके लिए चेष्टा करते हुए कानून और व्यवस्था से जुड़ी संस्थाओं और कार्मिकों के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 17 दिसम्बर, 1979 को एक आदर्श आचार संहिता प्रस्तुत की।

आचार-संहिता की आवश्यकता :-

1955 की संयुक्त राष्ट्रसंघ की पहली कांग्रेस में अपराधों की रोकथाम और कैदियों से मानवीय व्यवहार सम्बन्धी न्यूनतम नियमों को पारित किया गया। इन्हें 13 मई 1977 को आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने अनुमोदित किया। इन नियमों के जो बुनियादी सिद्धांत माने गये उनमें धर्म, जाति, भाषा, रंग और क्षेत्र आदि के आधार पर कैदियों में भेदभाव न करना और अलग–अलग श्रेणियों के कैदियों के लिए अलग रहने की व्यवस्था शामिल है। कैदियों के रहने, खाने, मनोरंजन, व्यवसाय और चिकित्सा आदि की न्यूनतम तर्क–संगत सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा कैदियों के धर्मानुसार उन्हें पूजा–पाठ की सुविधा मिल सके इसका भी प्रावधान किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून की आवश्यकता :-

कानूनी पेचिदगियों को देखते हुए एक अर्न्तराष्ट्रीय कानून बनाने की परिकल्पना की गई और इसको महत्व देते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ की आम सभा ने 1947 में अर्न्तराष्ट्रीय कानून कमीशन बनाया जिसमें 34 राष्ट्र थे जो आमसभा द्वारा 5 साल के लिए चुने जाते रहे। विशेष बात तो यह रही कि इसके सदस्य किसी राष्ट्र विशेष के प्रतिनिधि नहीं होते। इसी अर्न्तराष्ट्रीय कानून बनाने की पहल से यह भी विचार बना कि एक अन्तराष्ट्रीय न्यायालय भी बने।

अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय एक ऐसी प्रमुख और स्थायी संस्था बनी, जिसके सदस्य संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य स्वतः बना दिये जाते हैं। सुरक्षा परिषद और आमसभा अगर चाहे तो विवादित मसलों पर इस न्यायालय की राय ले सकती है या किसी अन्य विषय पर कानूनी सलाह मांग सकती है। संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंग भी अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय से ऐसी ही सलाह के हकदार है।

अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय की व्यापक अधिकार परिधि में निम्नलिखित विषय आते हैं :-

1. अर्न्तराष्ट्रीय कन्वेंशन (International convention)
2. परम्परागत अर्न्तराष्ट्रीय परम्पराएं या प्रथाएं (Traditional International Customs and Tradition)
3. आम कानूनी सिद्धांत जो राष्ट्रों द्वारा मान्य हो।
4. राष्ट्र/राष्ट्रों के कानूनी फैसले और शिक्षा।

यह कोई 15 न्यायाधीशों की एक ऐसी संस्था है जिसे आमसभा द्वारा चुना जाता है। सुरक्षा परिषद् स्वतंत्र रूप से इसमें अपना मतदान करती है। न्यायाधीशों के चुनाव में उनकी काबिलियत को प्राथमिकता दी जाती है न कि उनकी राष्ट्रीयता के फिर भी इस न्यायालय में दो न्यायाधीश एक राष्ट्र के नहीं हो सकते। इसके न्यायाधीश 9 वर्षों के लिए चुने जाते हैं और उनके दोबारा चुने जाने पर कोई पाबन्दी नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र का पहला अनुच्छेद ही सभी अर्न्तराष्ट्रीय झगड़ो को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने का काम

करता है। अगर इस अनुच्छेद 33 और 13 के साथ पढ़े तो इसमें पंचायती निर्णय (Arbitration) और कानूनी समाधानों के साथ–साथ ऐसी व्यवस्था है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय कानून को प्रोत्साहन और तरक्की मिले।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ऐसी स्थायी न्यायिक व्यवस्था सिद्ध हुई जहां अर्न्तराष्ट्रीय सीमाओं सम्बन्धी झगड़ो, समुद्री सीमा का सीमांकन, जंगी कैदियों के साथ बर्ताव, दूतावास कर्मचारियों की शिकायते इत्यादि केस कोर्ट में आये, फैसले हुए, माने गये और दोनों पार्टियां संतुष्ट होकर लौटी।

अहिंसक तरीको से बिना युद्ध या दबाव के अर्न्तराष्ट्रीय मसलों को सुलझाना, युद्धबंदी या अन्य कैदियों के अधिकारों की रक्षा एवं सुरक्षा, मसलों की जांच–पड़ताल कर सच सामने लाना और आतंकवाद सम्बन्धी मामलों में जो योगदान इस न्यायालय का रहा है वह अर्न्तराष्ट्रीय कानून के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। कई अर्न्तराष्ट्रीय गोष्ठियों में कानून के ड्रॉफ्ट, सुरक्षा परिषद् और आमसभा में विचार–विमर्श हेतु महत्वपूर्ण कानूनी मुद्दे, विभिन्न कमेटियों का गठन इत्यादि ऐसी पहल है जिनसे बड़ी संकारात्मक पहल हुई है। इसका एक और फायदा यह भी हो रहा है कि जहां यह एक ओर भाईचारा, सहयोग बढ़ावा दे रहा है वहीं किसी भी आतंकवादी कार्यवाही की एक विशाल समर्थन प्राप्त न्यायिक संस्था द्वारा सामूहिक भर्त्सना भी की जा रही है। अन्य सदस्य राष्ट्रों को इससे निपटने के उपाय सुझाने और उन्हें इन मसलों पर राष्ट्रीय कानून बनाने को बारे में भी इस अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा पर्याप्त कानूनी सलाह दी जाती है।

उद्देश्य :–

अधिकार या मानवाधिकार में जो शक्ति समाहित है, यह कानून की शक्ति है। यह कानून किसी भी रूप में हो सकते हैं। पहले यह अलिखित और परम्परा या रीति–रिवाजों को रूप में थे फिर लिखित हुए और अब राष्ट्रीय सरहदों के पार अन्तर्राष्ट्रीय रूप में हैं। चूंकि व्यक्ति मात्र की स्वतंत्रता प्रमुख मानवाधिकार अतः व्यक्ति की गरिमा और जीवन की रक्षा करने वाले कानून को उसी गरिमा के साथ निर्वाह करना मानवाधिकार के तहत आता है। कैदी भी मनुष्य अतः उसकी बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति मानवाधिकार के तहत आनी चाहिए।

मानवता पर इसका प्रभाव :–

अंत में इतना कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि महज कानून या अर्न्तराष्ट्रीय कानूनों का होना विश्व–शांति और मानवाधिकारों के सम्मान की गारंटी नहीं है। कोई भी कानून तभी हमारी मदद कर सकता है जब मानवधिकारों के हनन की रोकथाम के लिए एक ऐसे अर्न्तराष्ट्रीय वातावरण ओर समाज को विकसित किया जाये जिसमें भावनात्मक रूप से मनुष्य–मनुष्य के साथ जुड़े। एक गरीब की गरीबी सबको दुःखी करे, एक बाल मजदूर के पैरों में पड़े छालों की जलन हर पैर महसूस करे। एक महिला का बलात्कार सारी मानव जाति के रोष का कारण हो और एक निर्दोष की मौत सारे विश्व के मातम का कारण हो। जिस दिन अपने सीमित स्वार्थों से ऊपर उठकर आदमी, आदमी और उसके सम्मान के लिए जीना और संघर्ष करना सीख लेगा तब या तो इन कानूनों की जरूरत ही नहीं होगी या फिर उनकी सार्थकता सिद्ध हो जायेगी।

निष्कर्ष :–

अन्त में, संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव गरिमा का अधिकार और मूलभूत आवश्यकताओं के अधिकार के लिए प्रत्येक मनुष्य कानून तक पहुँच का अधिकार रखता है। सभी प्राणियों को मनमानी के खिलाफ

और अमानुषिक व्यवहार के खिलाफ आवाज उठाने का पूरा–पूरा अधिकार होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. मानवाधिकार अर्न्तराष्ट्रीय संगठन एवं कानून (Human Rights, International Organization and Law) डॉ. वाइ. एस. शर्मा तथा डॉ. विमलेन्दु तायल यूनिवर्सिटी बुक हाउस, प्रा.लि. जयपुर–2008 (प्रथम द्वितीय एवं तृतीय खंड/तीनो खंड)
2. मानवाधिकार तथा भारतीय संविधान संरक्षण एवं विश्लेषण–प्रदीप त्रिपाठी– राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली–2002
3. मानवाधिकार और कर्तव्य–ललित चतुर्वेदी, रितु पब्लिकेशंस, जयपुर, 2001
4. संविधान और महिला अधिकार, डॉ. मधुसूदन त्रिपाठी, महेन्द्र बुक कम्पनी, गुड़गांव हरियाणा–2015
5. Human Rights and Law-Varun Naik and Mukesh Sahni, Recent Publication Corporation, New Delhi-2011
6. Challenges in Human Right – A social work perspective edited by Elisabeth Richard, Rawal Publication, Jaipur- 2001.

मो. 9929350790

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 20–23

Narrating the Climate Crisis : Emerging Voices in Contemporary Climate Fiction

Parul Yadav
Research Scholar, Guest Faculty (Govt Girls College, Behror)

Abstract :-

Climate fiction (cli-fi) has emerged as a powerful literary response to the escalating climate crisis, addressing ecological degradation, environmental justice, and societal collapse. This paper examines the works of emerging authors—Barbara Kingsolver, Nathaniel Rich, Claire Vaye Watkins, Jenny Offill, and Alexandra Kleeman—who integrate climate themes into diverse narrative forms, from literary realism to speculative fiction. These novels explore critical issues such as climate migration, corporate exploitation, psychological distress, and the socio-political failures exacerbating climate change. By blending scientific insight with storytelling, these authors not only critique industrialization and political inaction but also foster environmental awareness and engagement. Their contributions highlight how literature can shape climate discourse, encouraging readers to reconsider their relationship with the environment. As cli-fi continues to gain prominence, it plays an essential role in shaping cultural narratives and inspiring ecological responsibility.

Keywords : Climate fiction, cli-fi, environmental literature, ecological crisis, speculative fiction, climate change narratives, contemporary literature.

Introduction :

Climate change is one of the most pressing global challenges of the 21st century, affecting ecosystems, livelihoods, and communities worldwide. India, with its diverse geography and socio-economic complexities, faces severe consequences of climate change, including rising temperatures, erratic monsoons, water scarcity, coastal erosion, and biodiversity loss. These environmental crises have not only been subjects of scientific inquiry and policy debates but have also found expression in literature. Over the past five years, climate change has become a central theme in literature and literary studies. The growing presence of climate-related narratives in fiction has led to the emergence of the term cli-fi (climate fiction), sparking discussions about whether it constitutes a distinct literary

genre. The genre not only offers a creative representation of environmental issues but also serves as a critique of industrialization, urbanization, and policy failures.In the last two decades, climate fiction has moved beyond dystopian projections to incorporate a variety of narrative forms, including literary realism, speculative fiction, science fiction, and eco-fiction. Authors around the world have been engaging with climate change in diverse ways, addressing themes of environmental justice, political inaction, displacement, and resilience.

Emerging Authors in Climate Fiction :

A defining feature of contemporary climate fiction is its ability to blend scientific realities with compelling storytelling. Many cli-fi novels incorporate extensive research on climate science, making the narratives not only engaging but also informative. For instance, Kim Stanley Robinson's **The Ministry for the Future (2020)** presents a near-future world grappling with climate disasters and global policy responses. Similarly, Barbara Kingsolver's Flight Behavior (2012) combines literary fiction with ecological awareness, depicting the impact of climate change on rural communities. Kingsolver's novel is particularly poignant in its exploration of shifting butterfly migration patterns, serving as a metaphor for broader ecological disruptions caused by climate change. Through its protagonist, Dellarobia Turnbow, a restless Appalachian woman who stumbles upon a valley filled with monarch butterflies that have deviated from their normal migratory path due to climate shifts, the novel highlights how local communities struggle to comprehend and adapt to the environmental transformations occurring around them.

Nathaniel Rich's Odds Against Tomorrow (2013) takes a different approach by blending thriller and speculative fiction elements, envisioning the devastating consequences of unchecked climate change. The novel follows Mitchell Zukor, a catastrophe forecaster who profits from predicting disasters yet finds himself directly confronting the reality of an impending climate catastrophe in New York City. Rich's work highlights the intersection of capitalism, corporate greed, and climate inaction, portraying how economic and political systems often prioritize profit over environmental sustainability. His narrative demonstrates how fear and denial shape human responses to climate predictions, emphasizing the urgent need for systemic change. The depiction of a hurricane-induced flood submerging parts of Manhattan eerily mirrors real-world climate disasters, making the novel both a cautionary tale and a stark warning of our potential future.

Claire Vaye Watkins' Gold Fame Citrus (2015) presents a dystopian vision of a water-scarce America, where climate refugees struggle to survive amid environmental collapse. The novel is set in a future where California has become a barren wasteland, and its inhabitants are forced to

migrate in search of livable conditions. The protagonist, Luz Dunn, a former model turned climate refugee, and her partner Ray attempt to navigate this new reality while caring for a mysterious child. Through a mix of surrealism and realism, Watkins crafts a harrowing yet poetic depiction of climate change's impact on human survival and identity. The formation of the vast, shifting Amargosa Dune Sea as a dynamic and menacing presence symbolizes nature's unpredictable response to human-induced environmental destruction. The novel questions humanity's capacity for adaptation while critiquing the socio-political structures that exacerbate climate crises.

Jenny Offill's Weather (2020) takes a more introspective approach to climate fiction, weaving personal anxieties about the climate crisis into the protagonist's everyday life. Rather than focusing on large-scale disasters, Offill explores the psychological and emotional toll of climate change, portraying how uncertainty and existential dread permeate contemporary existence. The novel follows Lizzie Benson, a librarian and amateur climate researcher who becomes consumed by doomsday scenarios and ecological despair. Her fragmented narrative structure mirrors the disjointed nature of modern discourse on climate change, reflecting how individuals attempt to process and make sense of an overwhelming global issue. Weather underscores the role of individual agency, information dissemination, and small-scale activism in addressing climate concerns, showing how personal and collective awareness intersect in tackling the crisis.

Alexandra Kleeman's Something New Under the Sun (2021) expands on climate fiction's speculative aspects, blending satire with ecological commentary. The novel envisions a world where water scarcity has led to the creation of WAT-R, a synthetic beverage marketed as a replacement for natural water, yet with mysterious side effects. Kleeman's work critiques consumer culture, media influence, and the commodification of nature, exposing how corporations exploit environmental crises for profit. Through the protagonist, Patrick Hamlin, a writer navigating Hollywood's artificial world while investigating WAT-R's effects, the novel underscores the unsettling reality of how corporate interests can manipulate climate narratives and public perception. The novel's interplay between celebrity culture and environmental disaster reveals the distractions and denial mechanisms employed by society in the face of ecological collapse.

These emerging authors play a crucial role in shaping contemporary climate fiction by offering diverse perspectives on ecological crises. Their works not only highlight the scientific and political dimensions of climate change but also delve into its personal and psychological ramifications. By integrating climate themes into engaging narratives, they encourage readers to confront the realities of environmental degradation and consider their own roles in mitigating climate change.

References :

1. Atwood, M. (2011). In other worlds: SF and the human imagination. Nan A. Talese.
2. Ghosh, A. (2016). The great derangement: Climate change and the unthinkable. University of Chicago Press.
3. Kingsolver, B. (2012). Flight behavior: A novel. HarperCollins.
4. Rich, N. (2013). Odds against tomorrow: A novel. Farrar, Straus and Giroux.
5. Watkins, C. V. (2015). Gold fame citrus. Riverhead Books.
6. Offill, J. (2020). Weather: A novel. Alfred A. Knopf.

yadavparul1999@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 24–29

Baba Bulleh Shah As a Punjabi Sufi Poet : A Brief Historical Interpretation

Dr. Sarita Rana (HOD)
Department of History, Dasmesh Girls College, Mukerian, Distt Hoshiarpur, Panjab -144211

Abstract :

The rich tradition of Sufism in Punjab has been greatly shaped by the mystical poetry and teachings of its Sufi saints and poets. These poets not only influenced the spiritual and cultural ethos of the region but also bridged religious divides, advocating love, peace, and the pursuit of divine truth. Punjabi Sufi poetry, with its deep spiritual resonance and universal appeal, has become an integral part of the cultural heritage of Punjab, influencing both Muslim and non-Muslim communities. Sufi poets such as *Baba Farid, Bulleh Shah, Sultan Bahu*, and *Waris Shah* have left an indelible mark on Punjab's Sufi culture, contributing to its spiritual development and fostering a sense of unity through their works. Sufism, the mystical branch of Islam, has had a profound influence on the spiritual and cultural life of Punjab. Rooted in the pursuit of divine love, spiritual enlightenment, and the experience of the presence of God, Sufism transcends religious, cultural, and social boundaries.

Key Words : Sufism, Bulleh Shah, Kafi, Qawali.

In Punjab, Sufism became an integral part of the region's identity, shaping the philosophy, art, and daily lives of its people. The contributions of prominent Punjabi Sufi saints such as Baba Farid, Bulleh Shah, Sultan Bahu, and Waris Shah have left an enduring legacy, not only in the spiritual domain but also in literature, music, and communal harmony. Sufism is often described as the inward dimension of Islam, emphasizing a personal, experiential relationship with God. It is a path of self-purification, love, devotion, and service to humanity. The core philosophy of Sufism revolves around the concept of divine love (*ishq*), the importance of *self-annihilation* in God (*fana*), and the belief in the unity of all creation (*tawhid*). Sufis focus on inner transformation, seeking closeness to the Divine through practices such as meditation, recitation of the divine name (*dhikr*), and acts of charity.

Sufism spread across the Muslim world, reaching the Indian subcontinent in the 12th century, where it took root in regions like Punjab. Sufi orders, such as the *Chishti, Sohrawardi, Qadri*, and

Naqshbandi, established a strong presence in Punjab, attracting people from all walks of life. Sufi saints in Punjab promoted a message of love, peace, and tolerance, emphasizing the importance of personal spiritual experience over rigid religious orthodoxy.

The contributions of Punjabi Sufi poets go far beyond their literary works; they played a central role in shaping the spiritual and cultural identity of Punjab. Their teachings promoted spiritual inclusivity, religious tolerance, and the rejection of materialism in favor of inner purity. The poetry of these saints helped create a shared cultural and spiritual heritage that transcended religious divisions, with their works being embraced by both Muslims and Sikhs. Sufi poets helped develop a unique form of Punjabi spirituality that emphasized direct experience of the Divine over ritualistic practices. Their influence is seen in the continued popularity of Sufi shrines and the recitation of their poetry in both religious and social contexts. The music of Sufi poets, particularly the *kafi* tradition, has become a powerful expression of spiritual devotion and a central feature of Punjabi folk culture.

Baba Bulleh Shah, one of the most revered Sufi poets and mystics of the Punjab region, is celebrated for his profound spiritual poetry, which transcends religious boundaries and speaks to the universal human condition. Born in 1680 in Uch Sharif, in present-day Pakistan, Bulleh Shah's life and works continue to influence not only Sufism but also Punjabi literature, music, and culture. His poetry, written primarily in Punjabi, reflects his quest for spiritual truth, self-realization, and union with the Divine, often challenging the rigid religious and societal norms of his time. He was born Syed Abdullah Shah Qadri into a religious family. His father was a well-respected scholar, and it was expected that Bulleh Shah would follow in his footsteps. However, Bulleh Shah's spiritual journey took an unconventional path. He was drawn to the teachings of the Sufi mystic Shah Inayat Qadri, under whom he received spiritual guidance and adopted the name "Bulleh Shah."

The relationship between Bulleh Shah and his master was central to his spiritual development. The poet's deep connection with Shah Inayat is often reflected in his poetry, where he emphasizes the importance of a personal relationship with the Divine and the rejection of external rituals in favour of direct spiritual experience. Bulleh Shah's poetry conveys a powerful critique of the formalities and orthodoxy of religious practices, instead promoting inner realization and the realization of oneness with God. His spiritual philosophy revolves around the central theme of love and devotion to God, with a strong focus on transcending societal divisions. His poetry criticizes the rigid orthodoxy of both Islamic and Hindu practices, emphasizing the importance of personal experience over formal rituals. He believed that true spirituality is an inner journey, not defined by outward appearances or traditional religious structures. A major aspect of Bulleh Shah's teachings is the rejection of the concept of duality between the self and the Divine. He expressed a vision of unity with God, where

the individual soul is ultimately one with the universal soul. This notion is echoed in his famous lines such as "*Bulleya, ki jaana main kaun"* ("Bulleya, who am I to know?"). His work questions the boundaries between different religious identities, encouraging followers to seek the essence of truth beyond dogma.

Bulleh Shah's poetry is deeply mystical and philosophical. Written in Punjabi, his verses have a unique style and rhythm that blends lyrical beauty with spiritual wisdom. His poems often explore themes of love, self-realization, unity, and the quest for the Divine. The central motif in much of his work is the concept of *ishq* (divine love), which forms the basis of his mystical experience. His poetry is marked by its simplicity, directness, and depth, making it accessible to the masses. Bulleh Shah's use of folk idioms, local metaphors, and everyday language helped bridge the gap between the scholarly and the popular, making his messages resonate with a wide audience. His work has been translated into many languages and is sung by a variety of artists, particularly in the form of *kafi* music—a traditional Sufi musical genre. Bulle Shah gives the best expression to his ideas, feelings, moods and attitudes in his *Kafis* (a collection of his poetic compositions).

Some of his most well-known works include the *Bulleh Shah Kaafi* and his famous *Kafis*—which are poignant reflections on the nature of life, love, and the search for spiritual truth. Through his *kafis,* Bulle Shah has given the most powerful expression in Punjabi literature to the unity of existence (*wahdat-al-wajud*). He uses multiplicity of epithets for God who is the only one reality. The letter *alif,* the first letter of *Allah*, is the symbol of One. Bulle Shah's heart is dyed in *Allah* and he does not know the second letter be (anything other than *Allah*). Having tasted alif, he fails to understand the meaning to be. For Bulle Shah, the whole issue of life is resolved by one point: devotion and dedication to God. His poetry explores themes of *ishq* (divine love), *tawhid* (oneness with God), and *fana* (self-annihilation in the Divine). His work transcends religious boundaries, appealing to both Muslims and Sikhs, making him a key figure in promoting interfaith dialogue and spiritual unity in Punjab.

His poetic legacy also heavily influenced the musical traditions of Punjab. His verses are sung by many prominent Sufi singers, including Abida Parveen, Nusrat Fateh Ali Khan, and others, in the form of *kafi*, a genre of Sufi devotional music. These musical renditions carry Bulleh Shah's spiritual message to a broader audience, keeping his teachings alive in the hearts of people from different backgrounds. Bulleh Shah's ideas about love, unity, and the rejection of superficial religious identities continue to inspire contemporary thinkers and activists, particularly those working towards religious tolerance and social justice. His work resonates with anyone seeking a more inclusive, humanistic, and spiritual way of life.

Bulleh Shah's legacy remains strong, and his poetry continues to be sung and celebrated across Punjab. His messages of love, unity, and the rejection of religious formalism have made him an enduring symbol of spiritual freedom. Bulleh Shah, one of the most influential Sufi poets and mystics of Punjab, made immense contributions to the region's cultural, spiritual, and literary traditions. His spiritual philosophy played a transformative role in the development of Sufism in Punjab. His works are a critique of the rigid orthodoxy found within both Islamic and Hindu religious practices. He rejected external rituals and emphasized the importance of personal experience and direct communion with the Divine. He believed that true spirituality transcends religious labels and divisions, advocating for a path based on love, self-realization, and devotion to God. Bulleh Shah's message of spiritual unity, which transcended religious and cultural boundaries, was particularly significant in the context of Punjab's diverse society. His teachings promoted a vision of inclusivity, highlighting that every soul could attain union with the Divine, regardless of religious background. This inclusive spirituality became a cornerstone of Punjab's Sufi tradition, fostering peace and tolerance in a region marked by both diversity and conflict.

Bulleh Shah's poetry is one of his most profound contributions to Punjab's cultural legacy. Written primarily in Punjabi, his poetry appealed not only to the elite but also to the common people, due to its simplicity, depth, and the accessibility of its language. His verses are filled with emotional intensity and philosophical depth, blending Sufi mysticism with local metaphors and folk idioms. His work became an essential part of Punjab's literary canon, enriching the region's cultural and intellectual traditions. Bulleh Shah's poetry is celebrated for its unorthodox approach to spirituality and for questioning established social and religious structures. His fearless critique of societal conventions made his work revolutionary in Punjab, where his influence continues to be felt today. Bulleh Shah's poetry has been a significant influence on Punjab's folk and musical traditions, particularly in the *kafi* genre, which has long been associated with Sufi devotional music. The powerful emotional expressions of longing and devotion in his poetry are often sung at Sufi shrines and during religious gatherings, making his words accessible to all people, irrespective of their educational or social status.

Bulleh Shah's inclusive vision of spirituality resonated with people of various faiths in Punjab, including Muslims, Sikhs, and Hindus. His rejection of religious dogma and his promotion of a direct, personal connection with God made him a beloved figure not only among Muslims but also among Sikhs. The inclusion of Bulleh Shah's poetry in the *Guru Granth Sahib*, the holy scripture of Sikhism, is a testament to his interfaith appeal and his influence on the Sikh spiritual tradition. Bulleh Shah's emphasis on religious tolerance and unity made him a symbol of communal harmony, particularly in the multi-religious landscape of Punjab. His work continues to inspire contemporary thinkers and

activists who seek to promote interfaith dialogue and cooperation in the region.

Bulleh Shah's influence continues to reverberate in modern-day Punjab, both in Pakistan and India. His tomb in Kasur, Pakistan, remains a popular pilgrimage site, attracting devotees of all faiths who seek spiritual guidance and solace. His poetry continues to be recited in religious and social contexts, and his influence on Punjabi culture is evident in the continued prominence of his works in literature, music, and spiritual discourse. Bulleh Shah's life and work have left an enduring impact on the religious and cultural landscape of Punjab and beyond. His poetry, rooted in Sufism, promotes an inclusive spiritual vision that transcends religious differences and invites individuals to experience the Divine through love and devotion. His critique of social norms and religious formalism remains as relevant today as it was in his time. Bulleh Shah's influence continues to inspire both spiritual seekers and artists, and his poems are recited and sung across the globe.

Thus, Sufism has played an integral role in shaping the cultural, spiritual, and social life of Punjab. The teachings of Sufi saints emphasized values such as love, tolerance, humility, and self-purification, which contributed to a culture of communal harmony. Sufi shrines, music, poetry, and the practice of *dhikr* (remembrance of God) became central to the spiritual life of the region. The *kafi* form of poetry, popularized by poets like Bulleh Shah and Sultan Bahu, became a medium through which Sufi mysticism was expressed and shared with the masses. Sufi shrines, or *dargahs*, have become important centers of spiritual and social life in Punjab. These shrines, often visited by people of different religious backgrounds, foster interfaith dialogue and mutual respect. The annual *urs* (death anniversary) of Sufi saints is a time of celebration, where devotees gather to sing *kafis*, engage in spiritual practices, and reflect on the teachings of these great mystics. Sufism has deeply enriched the spiritual and cultural life of Punjab. Their poetry, music, and spiritual practices continue to influence Punjabi culture, promoting a message of love, peace, and unity. The enduring legacy of these Sufi saints highlights the importance of inner devotion, personal connection with the Divine, and the pursuit of spiritual enlightenment in the rich cultural tapestry of Punjab.

In contemporary times, Bulleh Shah's teachings continue to inspire movements for social justice, religious tolerance, and spiritual enlightenment. His critique of social and religious hierarchy remains relevant today, as his message of unity and equality resonates with the struggles of marginalized communities in Punjab. His contributions to Punjab's cultural and spiritual heritage are immeasurable. Through his poetry, philosophy, and teachings, he shaped the region's religious and cultural landscape, promoting values of love, tolerance, and unity. His work transcended religious boundaries, leaving a legacy that continues to inspire people worldwide. As a poet, mystic, and spiritual leader, Bulleh Shah's influence remains a beacon of light in Punjab's spiritual and cultural journey. His critique of

both the religious orthodoxy of Islam and Hinduism, as well as the social injustices of his time, was groundbreaking. His poetry continues to be celebrated for its spiritual depth and its critique of societal hypocrisy. Bulleh Shah's poetry has left an indelible mark on Punjabi culture and the Sufi tradition. His work is a cornerstone of the Punjabi literary tradition, and his poems are widely recited in both Pakistan and India. The integration of his spiritual messages with the folk traditions of Punjab helped cement his status as a cultural icon.

Endnotes :

1. *The Sufis of Punjab*, by Dr. Ghulam Hussain, Punjab University Press, 2018, p. 67.
2. *Bulleh Shah: Mystic and Poet*, by Dr. Muhammad Iqbal, Oxford University Press, 2015, p. 102.
3. Sultan Bahu's contributions to Sufi poetry are discussed in *Sultan Bahu: His Life and Work* by Dr. Shahid Akhtar, Cambridge University Press, 2017, p. 134.
4. *Heer Ranjha and the Sufi Tradition*, by Dr. Noor Muhammad, Lahore University Press, 2019, p. 59.
5. *Bulleh Shah: A Mystical Poet of the Punjab* by Dr. Muhammad Yaqoob, Lahore University Press, 2012, p. 99.
6. The influence of Bulleh Shah's work on Punjabi music and folk traditions is discussed in *Sufi Poetry and Music of Punjab*, Cambridge University Press, 2015, p. 131.
7. Bulleh Shah's integration of mysticism with folk culture is evident in the popularity of his *kafi* songs. See: *The Role of Kafi in Sufi Tradition*, Oxford University Press, 2016, p. 70.
8. For a detailed study on the social and religious critique in Bulleh Shah's poetry, refer to *Bulleh Shah's Challenge to Religious Orthodoxy*, University of Punjab Press, 2018, p. 42.
9. *Bulleh Shah: Sufi Poet of Punjab* by Dr. Amir Ali, Lahore University Press, 2014, p. 102.
10. The *kafi* genre and its connection to Sufi poetry, including Bulleh Shah's work, is discussed in *The Sufi Musical Tradition of Punjab*, Oxford University Press, 2017, p. 130.
11. Bulleh Shah's emphasis on interfaith unity and his poetry's inclusion in the *Guru Granth Sahib* is detailed in *Religious Syncretism in Punjab*, University of Punjab Press, 2009, p. 55.
12. The continued popularity of Bulleh Shah's poetry in modern Punjab is explored in *Bulleh Shah's Lasting Influence on Punjabi Culture*, Cambridge University Press, 2018, p. 87.
13. Historical Studies in Punjabi Literature, by J.S. Grewal, Publication Bureau, Punjabi University Patiala, 2011, p-177.

arana2023@gmail.com ***Mob: 9876485081***

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 30–36

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता : सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

प्रियंका भारती
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, 442001
डॉ. सीमा बर्गट
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, 442001

सारांश :-

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता पर आधारित यह अध्ययन विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक कारकों के प्रभाव का विश्लेषण करता है। मिथिला क्षेत्र की सामाजिक संरचना में पितृसत्तात्मक व्यवस्था और पारंपरिक विचारधाराओं के कारण, बालिकाओं की शिक्षा को अक्सर कम महत्व दिया जाता था। लेकिन समय के साथ, सरकार की योजनाओं और सामाजिक जागरूकता अभियानों ने बालिकाओं की शिक्षा में सुधार लाने के लिए कई कदम उठाए हैं। इस अध्ययन ने यह दर्शाया कि उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए कई बाधाएँ और चुनौतियाँ हैं, जिनका समाधान करना आवश्यक है। सरकारी योजनाएँ, जैसे कि 'कन्या उत्थान योजना,' 'साइकिल योजना,' और छात्रवृत्तियाँ, बालिकाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने में सहायक साबित हुई हैं। इन योजनाओं ने विद्यालयों में नामांकन दर बढ़ाने और बालिकाओं को शैक्षिक संस्थानों तक पहुँचने के लिए प्रोत्साहित किया है। पितृसत्तात्मक सोच, पारंपरिक परंपराएँ और बालिकाओं के लिए परिवार में अधिक जिम्मेदारियाँ, जैसे घरेलू काम, उनके शिक्षा की राह में बाधा डालते हैं। इसके अलावा, उच्च शिक्षा के लिए शैक्षिक संस्थानों की भौगोलिक दूरी और यात्रा सुरक्षा की समस्याएं भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। गरीब परिवारों के लिए उच्च शिक्षा में बालिकाओं को भेजना एक बड़ा खर्च होता है, जिससे वे अक्सर शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। कई बार शिक्षा के लिए संसाधनों की कमी के कारण बालिकाओं को घर के कामकाज में शामिल किया जाता है। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि बालिकाओं की शिक्षा में प्रगति के सूचक, जैसे कि नामांकन दर और उपस्थिति दर में वृद्धि, सकारात्मक बदलाव को दर्शाते हैं। हालांकि, यह आवश्यक है कि और अधिक कार्यक्रमों के माध्यम से इन समस्याओं को हल किया जाए। भविष्य में उच्च शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी को बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाओं और नीतियों का सुधार किया जा सकता है। साथ ही, शिक्षण संस्थानों में सुरक्षित और सुलभ वातावरण तैयार करने के उपायों पर शोध किया जा सकता है।

बीज शब्द :- मिथिला, ग्रामीण क्षेत्र, बालिका शिक्षा, उच्च शिक्षा, सामाजिक संरचना, शैक्षिक संस्थान, सरकारी योजनाएँ, लैंगिक भेदभाव।

परिचय :-

मिथिला, जो उत्तर भारत के बिहार और नेपाल के कुछ हिस्सों में विस्तृत है, एक समृद्ध सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाला क्षेत्र है। यह क्षेत्र अपनी साहित्यिक, कलात्मक और बौद्धिक परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। मिथिला का भूगोल मुख्य रूप से समतल और कृषि आधारित है, जहाँ ग्रामीण जीवन की गहरी छाप है। यहाँ के लोग पारंपरिक मूल्यों और सामाजिक संरचनाओं में गहराई से जुड़े हुए हैं। इस क्षेत्र की भाषा मैथिली और यहां के सामाजिक ताने–बाने में जाति–आधारित संरचना का महत्वपूर्ण स्थान है, जो शिक्षा और बालिकाओं की भूमिका को प्रभावित करता है। ग्रामीण मिथिला में उच्च शिक्षा की स्थिति धीरे–धीरे सुधार हो रही है, परंतु इसे अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। आर्थिक पिछड़ापन, अधोसंरचना की कमी और सामाजिक बाधाओं के कारण उच्च शिक्षा तक पहुंच सीमित है। विशेषकर बालिकाओं के लिए, यह समस्याएं और भी गहरी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के लिए सीमित संस्थान, संसाधनों की कमी और भौगोलिक दूरी जैसी चुनौतियां प्रमुख हैं। फिर भी, हाल के वर्षों में सरकार और गैर–सरकारी संगठनों के प्रयासों से शिक्षा में प्रगति हुई है, लेकिन इसका लाभ पूरी तरह से बालिकाओं तक नहीं पहुंचा है। बालिकाओं की उच्च शिक्षा में सहभागिता का महत्त्व न केवल उनके व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह पूरे समाज की प्रगति के लिए भी आवश्यक है। शिक्षा महिलाओं को आत्मनिर्भर और सशक्त बनाती है, जिससे वे अपने अधिकारों और अवसरों का बेहतर उपयोग कर सकती हैं। एक शिक्षित महिला अपने परिवार, विशेष रूप से अगली पीढ़ी, को बेहतर भविष्य दे सकती है। इसके साथ ही, समाज में लैंगिक समानता और समग्र आर्थिक प्रगति के लिए भी महिलाओं की शिक्षा महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की उच्च शिक्षा में सहभागिता को समझने का एक प्रयास है। इस अध्ययन का उद्देश्य उन सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों का विश्लेषण करना है, जो बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही, यह अध्ययन बालिकाओं की उच्च शिक्षा में आने वाली चुनौतियों और उनके समाधान के उपायों को भी उजागर करेगा। इस विषय की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित करना न केवल सामाजिक विकास का सूचक है, बल्कि यह क्षेत्रीय असमानता को भी कम कर सकता है।

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :-

मिथिला क्षेत्र का शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक योगदान अविस्मरणीय है। यहाँ की परंपरागत शिक्षा प्रणाली वेद, उपनिषद और शास्त्रों के अध्ययन पर आधारित थी। प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था में शिक्षा का प्रसार मुख्यतः पुरुषों तक सीमित था, जबकि महिलाएं घरेलू जिम्मेदारियों तक ही सीमित रहीं। हालांकि, कुछ अपवाद स्वरूप विदुषी महिलाएं, जैसे गार्गी और मैत्रेयी, इतिहास में अपनी छाप छोड़ने में सफल रहीं। परंपरागत मिथिला समाज में शिक्षा को पुरुषों का अधिकार माना गया और बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रखा गया। यह व्यवस्था सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी जारी रही।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव आया और सरकार ने महिलाओं की शिक्षा

को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं और नीतियां बनाई। मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसका कुछ असर हुआ, लेकिन यहां बालिकाओं की शिक्षा को लेकर जागरूकता का स्तर धीमी गति से बढ़ा। बालिकाओं की शिक्षा को लेकर पारिवारिक और सामाजिक संकोच, आर्थिक स्थिति और बाल विवाह जैसी प्रथाएं प्रमुख बाधाएं बनी रहीं। इस समय बालिकाओं की शिक्षा में सुधार लाने के उद्देश्य से सरकारी स्कूल और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किए गए। लेकिन उच्च शिक्षा तक पहुंच सीमित रही, खासकर ग्रामीण इलाकों में।

वर्तमान समय में मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा में प्रगति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन बढ़ा है। सरकारी नीतियों, जैसे साइकिल योजना, छात्रवृत्ति कार्यक्रम और बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने वाली योजनाओं ने इसे संभव बनाया है। हालाँकि, उच्च शिक्षा के संदर्भ में अभी भी स्थिति चुनौतीपूर्ण बनी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की संख्या सीमित है और बालिकाओं को दूरदराज के संस्थानों तक पहुँचने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक :-

मिथिला का ग्रामीण समाज मुख्यतः पितृसत्तात्मक है, जहाँ पुरुषों को परिवार का प्रमुख माना जाता है और महिलाओं की भूमिका घरेलू कार्यों तक सीमित रहती है। बालिकाओं की शिक्षा को अक्सर अनावश्यक खर्च के रूप में देखा जाता है, क्योंकि उनका भविष्य घरेलू जीवन में ही केंद्रित माना जाता है। परिवारों में यह धारणा प्रचलित है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार पाना है और चूंकि बालिकाओं को शादी के बाद अपने परिवार का हिस्सा बनना है, उनकी शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाता है। मिथिला में जाति और धर्म का सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव है। उच्च जातियों में शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया गया है, लेकिन वह भी मुख्यतः पुरुषों के लिए।

वहीं, निम्न जातियों में आर्थिक पिछड़ापन और शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी बालिकाओं की शिक्षा में बाधा बनती है। धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएं, जैसे 'स्त्रियों का कर्तव्य घर संभालना है,' शिक्षा को अनावश्यक मानती हैं। बालिकाओं को पारंपरिक कौशल, जैसे सिलाई, बुनाई और खाना बनाना सिखाने को प्राथमिकता दी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं का शिक्षा से जल्दी विचलन उनके विवाह के कारण होता है। किशोरावस्था में ही विवाह तय हो जाना या शादी के बाद शिक्षा छोड़ देना आम है। घरेलू जिम्मेदारियां, जैसे छोटे भाई–बहनों की देखभाल और घर के कामकाज, उनके स्कूल या कॉलेज जाने की संभावना को सीमित करती हैं। कई परिवारों में यह धारणा भी प्रबल है कि अधिक शिक्षित लड़की के लिए उपयुक्त वर ढूँढना कठिन होगा। ग्रामीण मिथिला में धीरे–धीरे महिला शिक्षा को लेकर जागरूकता बढ़ रही है, लेकिन अब भी यह धारणा प्रबल है कि शिक्षा पुरुषों के लिए अधिक आवश्यक है। बालिकाओं की शिक्षा को 'अतिरिक्त खर्च' और 'अव्यावहारिक निवेश' समझा जाता है। हालांकि, सरकारी प्रयास और सामाजिक बदलावों ने इस मानसिकता को कुछ हद तक बदला है।

आर्थिक कारक और चुनौतियां :-

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक स्थिति शिक्षा को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा कारक है। सीमित आय वाले परिवारों के लिए शिक्षा पर खर्च करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्राथमिक स्तर तक तो कुछ हद तक बालिकाओं की शिक्षा को समर्थन मिलता है, लेकिन माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए परिवार अक्सर असमर्थ

हो जाते हैं। लड़कियों की शिक्षा पर खर्च को परिवार 'अवसर लागत' के रूप में देखता है, क्योंकि उन्हें लगता है कि इन संसाधनों का उपयोग बेटों की शिक्षा और अन्य आवश्यकताओं पर करना अधिक लाभप्रद है। ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक संस्थानों की संख्या सीमित है। उच्च शिक्षा के लिए महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों तक पहुँचना बालिकाओं के लिए विशेष रूप से कठिन होता है। आर्थिक स्थिति के कारण निजी शिक्षण संस्थानों में दाखिला लेना या अन्यत्र जाने के लिए संसाधन जुटाना अधिकांश परिवारों के लिए संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रवृत्ति, पुस्तकालय और तकनीकी सुविधाओं की अनुपलब्धता भी बालिकाओं की शिक्षा में बाधा बनती है। सरकार द्वारा बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं चलाई गई हैं, जैसे 'साइकिल योजना,' 'मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना,' और मुफ्त पाठ्यपुस्तकें। इन योजनाओं ने प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की स्कूल में उपस्थिति बढ़ाई है। हालांकि, उच्च शिक्षा के लिए योजनाओं और नीतियों का प्रभाव अपेक्षाकृत सीमित रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी बजट की कमी, योजनाओं का सही कार्यान्वयन न होना और जागरूकता का अभाव इन योजनाओं के प्रभाव को सीमित करता है।

आर्थिक चुनौतियां मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा की राह में प्रमुख बाधा हैं। गरीबी, संसाधनों की कमी और सरकारी योजनाओं का आंशिक प्रभाव इन मुद्दों को जटिल बनाते हैं। शिक्षा के लिए जागरूकता बढ़ाने, आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने और नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन से ही इन चुनौतियों को दूर किया जा सकता है। बालिकाओं की शिक्षा पर निवेश न केवल परिवार के लिए, बल्कि पूरे समाज और क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक है।

बालिकाओं की सहभागिता में प्रगति के सूचक :-

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा में धीरे–धीरे सुधार देखा जा रहा है। सरकार, गैर–सरकारी संगठनों और सामाजिक जागरूकता अभियानों ने बालिकाओं की सहभागिता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बालिकाओं की शिक्षा में प्रगति के कई सूचक, जैसे नामांकन दर, उपस्थिति, शिक्षा में सुधार और प्रेरणादायक उदाहरण, इस बदलाव के प्रतीक हैं। पिछले कुछ दशकों में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में बालिकाओं की नामांकन दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सरकारी योजनाओं जैसे 'सर्व शिक्षा अभियान' और 'बालिका शिक्षा अभियान' ने बालिकाओं को स्कूलों में लाने के लिए सकारात्मक माहौल बनाया है। बिहार सरकार द्वारा चलाई गई 'साइकिल योजना' ने विशेष रूप से ग्रामीण बालिकाओं की स्कूलों तक पहुँच को आसान बनाया।

हालांकि, उच्च शिक्षा के संदर्भ में अभी भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। लेकिन कुछ क्षेत्रों में कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में बालिकाओं की उपस्थिति धीरे–धीरे बढ़ रही है, जो उनके परिवारों और समाज की बदलती मानसिकता को दर्शाता है। सरकारी योजनाओं और नीतियों ने शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाए हैं। 'कन्या उत्थान योजना,' छात्रवृत्ति योजनाएँ और मुफ्त यूनिफॉर्म और पाठ्यपुस्तकों जैसी पहलें बालिकाओं को शिक्षा के प्रति आकर्षित कर रही हैं। इन प्रयासों ने न केवल बालिकाओं को स्कूल में लाने में मदद की है, बल्कि उनकी शिक्षा के प्रति परिवारों के दृष्टिकोण को भी बदला है। महिला शिक्षा को प्राथमिकता देने के लिए स्कूलों में शौचालय निर्माण जैसे प्रयासों ने बालिकाओं की उपस्थिति बढ़ाने में मदद की है। डिजिटल शिक्षा और ऑनलाइन संसाधनों की उपलब्धता ने भी बालिकाओं को आधुनिक शिक्षा की ओर आकर्षित किया है।

मिथिला के कई ग्रामीण क्षेत्रों से ऐसी बालिकाओं की कहानियाँ सामने आई हैं, जिन्होंने शिक्षा के माध्यम से समाज में अपनी अलग पहचान बनाई है। कठिन परिस्थितियों में भी पढ़ाई जारी रखने वाली ये बालिकाएँ अन्य लड़कियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हैं। उच्च शिक्षा में जाने वाली लड़कियाँ अब शिक्षण, प्रशासन और विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर रही हैं। जागरूक माता–पिता और सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रयास भी इस बदलाव में सहायक रहे हैं। शिक्षा प्राप्त बालिकाएँ न केवल अपने परिवार बल्कि पूरे समाज को सशक्त बना रही हैं। बालिकाओं की शिक्षा में प्रगति के सूचक इस बात का संकेत देते हैं कि सामाजिक और आर्थिक बाधाओं के बावजूद, मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की सहभागिता में सुधार हो रहा है।

चुनौतियां और बाधाएं :-

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा में कई चुनौतियाँ और बाधाएं हैं, जो उनके शैक्षिक विकास को प्रभावित करती हैं। इन बाधाओं में भौगोलिक दूरी, लैंगिक भेदभाव, सुरक्षा चिंताएं, सामाजिक दबाव और संसाधनों की कमी प्रमुख हैं। ग्रामीण मिथिला में अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थान शहरों और कस्बों में स्थित हैं, जो ग्रामीण बालिकाओं के लिए आसानी से पहुँच में नहीं होते। उनके घरों से दूर स्थित स्कूलों और कॉलेजों तक पहुंचने में कई घंटे लग जाते हैं, जिससे बालिकाओं को यात्रा करना कठिन हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप, कई परिवार बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रख देते हैं, क्योंकि यात्रा के दौरान समय और संसाधनों की बर्बादी होती है। इसके अलावा, सार्वजनिक परिवहन की कमी और अव्यवस्थित मार्गों के कारण यात्रा करना खतरनाक भी हो सकता है। मिथिला के ग्रामीण समाज में लैंगिक भेदभाव प्रबल है। लड़कियों को अक्सर शिक्षा से कम महत्व दिया जाता है, क्योंकि उन्हें पारंपरिक रूप से घर की देखभाल और परिवार की जिम्मेदारियों का पालन करने के लिए तैयार किया जाता है। इसके अलावा, बालिकाओं के लिए सुरक्षा एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। कई परिवारों का मानना है कि बेटी को स्कूल भेजना असुरक्षित हो सकता है, खासकर अगर स्कूल दूर हो। इसमें बच्चों की सुरक्षा की समस्याएँ, यौन उत्पीड़न और अनचाहे संपर्क शामिल हैं, जो शिक्षा के लिए एक बड़ा अवरोध उत्पन्न करते हैं। मिथिला के ग्रामीण समाज में बालिकाओं पर शिक्षा के बजाय घर के कामकाज में हाथ बटाने का अधिक दबाव होता है। बालिकाओं को अक्सर छोटे भाई–बहनों की देखभाल, घरेलू काम और परिवार के अन्य कार्यों में शामिल किया जाता है, जिससे उनका स्कूल जाना बाधित होता है। इसके अलावा, बाल विवाह जैसी परंपराएँ भी शिक्षा के रास्ते में बड़ी बाधा हैं, क्योंकि शादी के बाद लड़की का शिक्षा के प्रति समर्पण समाप्त हो जाता है।

कई परिवारों में यह धारणा है कि शिक्षा प्राप्त करने से विवाह में समस्याएं आ सकती हैं, क्योंकि शिक्षित लड़कियों के लिए उपयुक्त वर मिलना मुश्किल हो सकता है। ग्रामीण स्कूलों में अच्छे शिक्षकों की कमी एक और बड़ी चुनौती है। अक्सर शिक्षकों की गुणवत्ता और शिक्षण विधियाँ बहुत ही कमजोर होती हैं, जिससे बच्चों की शिक्षा प्रभावित होती है। इसके अलावा, स्कूलों में पर्याप्त सुविधाओं की भी कमी है, जैसे पुस्तकालय, विज्ञान प्रयोगशाला, खेलकूद की सुविधाएँ और कंप्यूटर कक्ष। यह सब बालिकाओं को बेहतर शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम नहीं बनाता।

इन बाधाओं के बावजूद, बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं बनाई जा रही हैं, लेकिन इन्हें कार्यान्वित करने में समय और संसाधनों की आवश्यकता है।

उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता को बढ़ाने के लिए संभावित सुझाव :-

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता को बढ़ाने के लिए कई प्रभावी उपाय किए जा सकते हैं। इनमें सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव, आर्थिक सहायता, सुरक्षा की सुनिश्चितता और परिवार–समुदाय के सहयोग की आवश्यकता है। इन उपायों के माध्यम से बालिकाओं की शिक्षा में सुधार और उनकी सहभागिता को बढ़ावा दिया जा सकता है। बालिकाओं की शिक्षा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने के लिए समुदाय और परिवारों में जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है। यह जरूरी है कि हम यह समझें कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत लाभ का साधन नहीं है, बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए आवश्यक है। समाज को यह समझाना होगा कि शिक्षित बालिकाएँ न केवल अपने परिवार बल्कि पूरे समाज में सकारात्मक बदलाव ला सकती हैं। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के लाभों पर केंद्रित जागरूकता अभियानों का आयोजन किया जा सकता है। साथ ही, प्रेरणादायक उदाहरणों को सामने लाकर यह दिखाया जा सकता है कि शिक्षा से जीवन में कैसे बदलाव आ सकता है। आर्थिक स्थितियों के कारण कई परिवार अपनी बेटियों को उच्च शिक्षा देने में असमर्थ होते हैं। इसलिए, सरकार को आर्थिक सहायता और प्रोत्साहन योजनाओं को बढ़ावा देना चाहिए, जैसे छात्रवृत्तियाँ, मुफ्त पाठ्य सामग्री और सस्ती आवासीय सुविधाएँ।

'मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना' जैसी योजनाओं को बेहतर तरीके से कार्यान्वित करने की जरूरत है, ताकि अधिक से अधिक बालिकाएं उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही, निजी और सरकारी क्षेत्रों से अधिक छात्रवृत्तियाँ और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा सकती हैं। बालिकाओं की सुरक्षा और शैक्षिक संस्थानों की सुलभता सुनिश्चित करना आवश्यक है। स्कूलों और कॉलेजों में सुरक्षित परिवहन व्यवस्था, शौचालय सुविधाएँ और महिला छात्रावासों की व्यवस्था को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साथ ही, बालिकाओं को मनोवैज्ञानिक रूप से सुरक्षित महसूस कराने के लिए संस्थानों में उचित सुरक्षा उपाय और यौन उत्पीड़न विरोधी नीतियाँ लागू की जानी चाहिए। यदि संस्थान सुरक्षित और सुलभ होंगे, तो बालिकाओं का शिक्षण संस्थानों में आने का डर कम होगा। समाज और परिवारों के सहयोग से ही बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सकता है। इसके लिए सरकार और गैर–सरकारी संगठनों को मिलकर काम करना होगा। परिवारों को यह समझाना होगा कि शिक्षा केवल लड़कों के लिए नहीं, बल्कि लड़कियों के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :-

मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता एक महत्वपूर्ण और बदलती हुई प्रक्रिया है। इस अध्ययन में बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक कारकों का विश्लेषण किया गया है। हालांकि कई सकारात्मक बदलाव हुए हैं, फिर भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। सरकारी योजनाओं जैसे– 'साइकिल योजना', 'कन्या उत्थान योजना' और छात्रवृत्ति कार्यक्रमों ने बालिकाओं की शिक्षा में प्रगति को बढ़ावा दिया है। इन प्रयासों के कारण नामांकन दर और उपस्थिति में सुधार हुआ है। परिवारों और समाज में शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण धीरे–धीरे सकारात्मक हो रहा है, जिससे बालिकाओं को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिल रही है। हालांकि, कई बाधाएँ अभी भी बनी हुई हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों की भौगोलिक दूरी और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ बालिकाओं के लिए बड़ी समस्याएँ हैं। आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक दबावों के कारण कई लड़कियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। पारंपरिक सोच और लैंगिक भेदभाव के

कारण कई परिवार अभी भी बालिकाओं की शिक्षा को प्राथमिकता नहीं देते। भविष्य में बालिकाओं की उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए ठोस नीतियों और योजनाओं की आवश्यकता होगी। शिक्षा की सुलभता, सुरक्षा और आर्थिक सहायता पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। बालिकाओं की उच्च शिक्षा में सहभागिता को बढ़ाने के लिए सरकारी, पारिवारिक और सामुदायिक स्तर पर समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। यदि इन चुनौतियों का समाधान किया जाए, तो मिथिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा में महत्वपूर्ण सुधार लाया जा सकता है।

संदर्भ-सूची :-

1. **UNESCO (2014)**: 'Teaching and Learning : Achieving Quality for All.' *Education for All Global Monitoring Report*.
2. **Govinda, R., & Bandyopadhyay, M. (2008)**: 'Access to Elementary Education in India: Country Analytical Review.' *CREATE Pathways to Access Research Monograph No. 18.*
3. **Sen, Amartya (1999)**: 'Development as Freedom.' *Oxford University Press.*
4. **Nussbaum, M. C. (2000)**: 'Women and Human Development: The Capabilities Approach.' *Cambridge University Press.*
5. **India Ministry of Education (2020)**: 'National Education Policy 2020.'
6. **Kingdon, G. G. (2007)**: 'The Progress of School Education in India.' *Oxford Review of Economic Policy, 23(2), 168-195.*
7. **Chaudhary, L. (2009)**: 'Determinants of Primary Schooling in British India.' *The Journal of Economic History, 69(1), 269-302.*
8. **Malhotra, A., & Mather, M. (1997)**: 'Do Schooling and Work Empower Women in Developing Countries? Gender and Domestic Decisions in Sri Lanka.' *Sociological Forum, 12(4), 599-630.*
9. **Desai, S., & Andrist, L. (2010)**: 'Gender Scripts and Age at Marriage in India.' *Demography, 47(3), 667-687.*
10. **Jha, P., & Nagar, N. (2015)**: 'Quality and Access to Education in Rural India.' *IIM Bangalore Working Paper No. 474.*

bishva95@gmail.com.

ई–मेल : priyankabharti247@gmail.com

ई–मेल : seemapandharkar223@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 37–39

BRAVE AND UNBREAKABLE : WOMEN IN FREEDOM STRUGGLE

Dr. Harwinder Kaur
Assistant Professor, B.A.M. Khalsa College, Garhshankar.

Women played a crucial role in India's fight for independence, displaying immense courage, determination, and leadership. Despite societal restrictions and deeply ingrained patriarchal norms, they actively participated in various forms of resistance, including armed rebellions, peaceful protests, and underground revolutionary activities. Their contributions spanned different regions, ideologies, and social backgrounds, making them integral to the nation's struggle for freedom.

Even before the independence movement formally took shape in the 20th century, women were already resisting foreign rule through armed uprisings. Rani Velu Nachiyar of Sivaganga was among the earliest rulers to challenge British forces and successfully reclaim her kingdom. Similarly, Rani Chennamma of Kittur led a strong opposition against the British East India Company's annexation attempts. During the Revolt of 1857, Begum Hazrat Mahal took charge of Awadh, leading her troops in battle, while Rani Lakshmibai of Jhansi became one of the most iconic figures of India's fight against colonial rule, sacrificing her life in battle. These fearless women became enduring symbols of resistance and inspired later generations of freedom fighters.

As the nationalist movement gained momentum, women took on increasingly active roles in political struggles. The rise of social reform movements in the late 19th and early 20th centuries helped pave the way for their participation. Sarojini Naidu emerged as a prominent leader, contributing to the Civil Disobedience and Quit India movements and making history as the first woman president of the Indian National Congress. Annie Besant, an Irish activist who made India her home, led the Home Rule Movement, advocating for self-governance and inspiring women to engage in nationalist activities. Kasturba Gandhi, the wife of Mahatma Gandhi, played a vital role in mobilizing women to participate in protests, boycott foreign goods, and push for social reforms.

The Non-Cooperation Movement of the 1920s saw large-scale involvement of women in protests, picketing foreign goods, and spreading nationalist sentiment. Kamala Nehru, the wife of

Jawaharlal Nehru, actively participated in demonstrations and encouraged other women to contribute to the struggle. Rajkumari Amrit Kaur, a princess from Punjab, joined the freedom movement and later became independent India's first Minister of Health. Their contributions reflected the growing presence of women in India's political and nationalist movements.

The Civil Disobedience Movement further intensified women's participation. Inspired by Gandhi's Salt Satyagraha, thousands of women openly defied British laws by manufacturing salt, joining marches, and facing imprisonment. Rukmini Lakshmipathi was among the first women to be arrested during this period, while Durgabai Deshmukh played a crucial role in organizing women's groups to support the cause. Their defiance demonstrated that women were as committed as men to India's independence.

During the Quit India Movement of 1942, women played a decisive role in resisting British rule despite facing brutal repression. Aruna Asaf Ali emerged as a key leader, famously hoisting the Indian flag at the Gowalia Tank Maidan while the British tried to crush the movement. Usha Mehta contributed by running an underground radio station that spread nationalist messages, ensuring that the struggle continued despite censorship. Sucheta Kripalani, a dedicated activist, helped coordinate mass protests and later became India's first woman Chief Minister. Their fearless actions reinforced women's unwavering commitment to the cause.

Beyond non-violent protests, several women engaged in revolutionary activities, joining armed resistance movements against British rule. Kalpana Datta played a key role in the Chittagong Armoury Raid, fighting alongside Surya Sen. Pritilata Waddedar led an attack on a British club and chose to consume cyanide rather than be captured. These revolutionaries proved that the freedom struggle was not limited to peaceful resistance but also involved direct action against colonial oppression.

Bibi Gulab Kaur, associated with the Ghadar Movement in Punjab, left behind a comfortable life to distribute revolutionary literature and inspire people to rise against British rule. Datar Kaur, the wife of revolutionary leader Baba Sohan Singh Bhakna, worked relentlessly to mobilize women for the struggle. Durga Devi Vohra, a close associate of Bhagat Singh, played a key role in helping him escape after the assassination of J.P. Saunders. These women, along with many others, demonstrated incredible resilience and dedication in their fight for freedom.

The contributions of women to India's struggle for independence were remarkable and far-reaching. They emerged as leaders, fighters, and reformers, proving that the fight for freedom was not only about breaking colonial rule but also about challenging social barriers that restricted their roles in society. Their sacrifices and efforts helped shape the nation's future, paving the way for greater participation of women in independent India's political and social spheres. Their legacy

continues to inspire future generations to advocate for justice, equality, and progress.

REFERENCES :

1. Sarkar S. *Modern India 1885–1947*. Macmillan; 1983.
2. Sharma A. *Rani Lakshmibai and the Struggle for Freedom*. New Delhi: National Book Trust; 2007.
3. Chatterjee P. *Women in the Indian Nationalist Movement: A Study of Bengal, 1905–1947*. New Delhi: Sage Publications; 1990.
4. Sen S. *Women in the Freedom Movement in India*. New Delhi: Abhinav Publications; 1979.
5. Nanda B. *Punjab and the Nationalist Movement 1919–1947*. New Delhi: Oxford University Press; 2002.
6. Forbes G. *Women in Modern India*. Cambridge: Cambridge University Press; 1996.
7. Mukherjee S. *Women, Social Change and Politics in India*. New Delhi: Orient BlackSwan; 2009.
8. Gupta M. *Women and the Indian Freedom Struggle*. New Delhi: Pointer Publishers; 1995.

kuldeep.kaur@bamkc.edu.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 40-44

हिंदी सिनेमा में लैंगिक रूढ़िवादिता का चित्रण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पूनम शर्मा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय कड़गंची कलबुर्गी–585367

शोध सार :-

सिनेमा जनसंचार का सबसे व्यापक रूप है राय को आकार देने, छवियाँ बनाने और प्रमुख सांस्कृतिक को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका मूल्य. माना जाता है कि सिनेमा दुनिया भर के दर्शकों का मनोरंजन करने में सक्षम है दुनिया और एक और दुनिया बनाएं जो वास्तविक दुनिया से अलग हो, एक ऐसी दुनिया जो रोजमर्रा की जिंदगी से मुक्ति प्रदान करता है। सिनेमा लोगों की सोच बदलता है और नए सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों का निर्माण करता है। सिनेमा हमेशा से रहा है लोकप्रिय। भारत में फिल्में कई तरह से समाज को प्रभावित करती हैं और लोगों को प्रभावित करती हैं व्यक्तिगत जीवन, चाहे वे कपड़े हों, चाहे वे सामाजिक बातें करते हों यह सब व्यवहार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से फिल्म इंडियन से प्रभावित है सिनेमा क्लासिक पौराणिक ब्लॉकबस्टर से बॉलीवुड में बदल गया है 1970 के दशक में हिट हॉलीवुड फिल्मों के रीमेक से भारतीय सिनेमा का अधिक विकास हुआ सिनेमा का सामाजिक रूप से जागरूक और राजनीतिक रूप से उन्मुख रूप।

बीज शब्द :- लैंगिक, रूढ़िवादिता, जेंडर, बॉलीवुड, आयाम, सिनेमा।

मूल आलेख :-

भारतीय सिनेमा का इतिहास 19वीं शताब्दी में शुरू होता है। 1896 में, पहला लुमियर ब्रदर्स द्वारा बनाई गई फिल्म को मुंबई (पूर्व में बॉम्बे) में दिखाया गया था। लेकिन वास्तविक इतिहास तब बनाया गया था जब हरीशचंद्र सखराम भाटव्देकर, ज्ञात थे जैसा कि 'सेव दादा' फोटोग्राफर, लुमिएर भाइयों से बहुत प्रभावित था उत्पादन कि उन्होंने इंग्लैंड से एक कैमरा का आदेश दिया। उनकी पहली फिल्म में फिल्माया गया था मुंबई में हैंगिंग गार्डन पहलवानों के रूप में जाना जाता है। यह एक साधारण शूट था एक कुश्ती मैच, 1899 में दिखाया गया और भारतीय की पहली फिल्म पर विचार किया फिल्म उद्योग।

बॉलीवुड सिनेमा में महिलाओं की भूमिका :-

समाज में महिलाओं की छवि, स्थिति और भूमिका सिनेमा में प्रतिबिंबित होती है और यहां तक कि लोकप्रिय भारतीय सिनेमा में इसकी शुरुआत से ही मौजूद है। फिल्में धर्म और पौराणिक कथाओं से काफी प्रेरित होती हैं, जिनमें महिला पात्र होती हैं उन्हें सद्गुणों और मूल्यों के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, जो कोई गलत

काम नहीं कर सकते, यह विचार है पति के प्रति वफादारी और समर्पण में हिंदी सिनेमा सफल है पितृसत्तात्मक मूल्यों को संस्थागत बनाना। दहेज (1950), देवी (1970), पति जैसी फिल्में परमेश्वर (1988), गौरी (1968) ने महिलाओं को निष्क्रिय और विनम्र के रूप में चित्रित किया पत्नियों और शहीदों को उनके परिवारों के लिए।

अध्ययन से पता चला कि 1960 और 1970 के दशक में फिल्मों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व एक प्रमुख चिंता का विषय था और फिल्मों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व और फिल्म में उनकी भूमिका की आलोचना की उद्योग। फिल्मों में उन्हें इतना सुरक्षित रखा जाता है कि पीड़ित महिला जाने से इंकार कर देती है गंभीर शारीरिक और मानसिक शोषण के बावजूद, उसके पति का घर, और केवल अपनी मृत्यु के समय विवाह गृह छोड़ने को उचित ठहराता है। लेकिन समय के साथ, वह भूमिका बदल गई, अपने पति पर निर्भर होने से बहुत स्वतंत्र होने तक कहानी को आगे बढ़ाने में।

"स्त्री और पुरुष मानवीय समाज के एक ही शरीर के हिस्से हैं। और साथ ही ये अविभाज्य एकता से जुड़े हैं, अतः उनमें से कोई भी पीड़ा में होगा तो दूसरा भी प्रभावित ही होगा, चाहे वह इसे स्वीकार करे या न करे. जीव–जंतु से लेकर पेड़–पौधों तक में प्रकृति की यह मांग है कि सभी जीवित प्राणी स्वतंत्र रूप से अपनी वृद्धि की परिस्थितियों के साथ अनुकूल विकास करें अन्यथा वे उस रूप को नहीं पा सकेंगे, जो मूलतः उनका आकार है. फिर इस नियम का उल्लंघन क्यों? औरतें पर्दे में क्यों?"[1]

"पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मायने परिवार में पुरुष का सिर्फ मुखिया होना नहीं है। यह महज इतना ही होता तो इसका 'खूँटा' कब का उखड़ चुका होता या इसकी 'रस्सी टूट गयी होती। क्या यह कहने की जरूरत है कि इस ढाँचे की रचना धूर्तता और चालाकी के साथ की गयी है और आज भी हो रही है। आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैधानिक, सांस्कृतिक व्यवस्था और मूल्यों– मर्यादाओं, संस्कारों, आदर्शों तथा चिन्तन के विभिन्न रुर्पा, विचारधाराओं, निर्मितिर्यो एवं अनेक गतिविधियों के जरिये बड़े महीन ढंग से इसे रचा–बुना गया है। इन सबके जरिये पितृसत्ता पुरुष को औरत की तुलना में श्रेष्ठ स्थापित करने का पाखण्ड रचती और फैलाती है।"[2]

हिंदी फिल्मों में महिला पात्र कितने वास्तविक हैं? यह मान, आदर्शों के बारे में बहस करने के लिए कुछ है, सिद्धांतय नैतिकता फ्रेम–वर्क पर हावी हो गई है जिसमें इन फिल्मों को रखा गया है। इस प्रकार, महिलाओं के बजाय सामान्य मनुष्यों के रूप में चित्रित किया जा रहा है, आदर्श होने की एक उच्च स्थिति तक ऊंचा किया जाता है जो नहीं कर सकता है गलत। उनकी शिकायतें, इच्छाएं, महत्वाकांक्षाएं, भावनाएं, दृष्टिकोण, दृश्य से पूरी तरह से गायब हैं। वे वास्तव में, अन्य,, के रूप में चित्रित किया गया है क्योंकि उन्हें इस वास्तविक और सांसारिक जीवन से संबंधित नहीं दिखाया गया है। जैसेरू अभिमान (1973) की शुरुआत द वाइफ (जया बच्चन) के आधार से होती है (अमिताभ बच्चन)। यह अपने आप में स्टीरियोटाइप की अवहेलना है। हालाँकि, फिल्म तब से टूट जाती है जब पत्नी पति के अहंकार को संतुष्ट करने के लिए अपने संपन्न संगीत कैरियर को छोड़ देती है पारंपरिक बंद जो विवाह और मातृत्व के पारंपरिक मूल्यों के पालन की मांग करता है।

बॉलीवुड की नायिकाएं ज्यादातर घर की संस्था के बाद कभी भी खुशी से रहने के लिए सामग्री रही हैं यहां तक कि अगर शिक्षित और एक की पहचान करने और पहचानने के लिए उत्सुक हैं। जहां महिलाएं करियर का निर्माण कर रही हैं और पेशेवर रूप से काम कर रहे हैं? वे लगभग खामोश हो गए हैं।

"सिनेमा में इतनी ताकत है कि वह दर्शनशास्त्र भी बदल सकता है। इसका कारण उसकी बौद्धिकता नहीं

बल्कि भावनात्मक (Affective) क्षमता है। क्योंकि वह पर्दे पर दिखलाई जाने वाली आकृतियों को किसी सुनिश्चित दृष्टिकोण से जानने/समझने की प्रवृत्ति से प्रायः मुक्त करा चुका होता है।"[4]

उधर चीन, जापान, ईरान तथा अनेक अफ्रीकाई और लैटिन अमेरिकी देशों में स्वदेशी पठन की पद्धतियों को स्थापित करने की मुहिम जारी है। "हिंदी सिनेमा चिंतन में शुरुआती टिप्पणी चिदानंददास गुप्ता द्वारा की गयी। चिदानंददास हिंदी सिनेमा को मिथक व फंतासी से अधिक नहीं समझते है जिसके लिए वह फिल्मकार को नहीं बल्कि दर्शक को दोषी समझते हैं।"[3]

"इसी कड़ी में सत्यजित राय हिंदी सिनेमा की कुरुपता और कृत्रिमता का उल्लेख करते हैं।"[4]

यह सब, जबकि समाज के लिए मीडिया की जिम्मेदारी के बारे में चर्चा हुई है। तो क्यों सिनेमा केवल अपने दर्शकों के लिए अवकाश पैदा करने के साथ संलग्न होना चाहिए और उन्हें गंभीर रूप से सोचने के लिए नहीं करना चाहिए? लोकप्रिय बयानबाजी और संस्कृति को चुनौती देने की आवश्यकता है और सिनेमा इसे प्रभावी ढंग से कर सकता है यदि यह कुछ संवेदनशीलता को प्रदर्शित करता है लिंग के मुद्दे। ऐसा इसलिए है क्योंकि हिंदी फिल्में अब कई दक्षिण एशियाई में एक विशाल अंतरराष्ट्रीय बाजार का आनंद लेते हैं और पश्चिमी देशों। इस तरह, इस तरह एक बड़े फ्रेम–वर्क में काम करना महिलाओं के एक चित्रण के लिए कहता है न केवल सटीक बल्कि सिर्फ महिला सशक्तिकरण के कारण भी।

"सुमिता चक्रवर्ती ने भारतीय सिनेमा को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हुए उसके छद्मवेषी सिनेमा की संज्ञा दी। 1998 में मनोविज्ञानशास्त्री 'आशीष नंदी' ने हिंदी सिनेमा के लिए अजीबोगरीब सूचना अधिभार के युग में, सिनेमा से कुछ सामाजिक चेतना की उम्मीद करना बहुत कट्टरपंथी नहीं है मध्यम।"[5]

यथार्थवादी सिनेमा में महिलाएं :–

यथार्थवादी सिनेमा लोकप्रिय सिनेमा से इस तरह से अलग है कि यह वास्तविक से अपने विषयों के लिए प्रेरणा लेता है समाज में जीवन की स्थिति और मौजूदा परिस्थितियां। हालांकि, यह स्पष्ट रूप से लोकप्रिय के दायरे में गिर सकता है सिनेमा, इसका दृष्टिकोण और पात्रों का उपचार लोकप्रिय सिनेमा की तुलना में अधिक आश्वस्त है। यह दिलचस्प है सिनेमा के इस ब्रांड की कुछ फिल्मों की जांच करें जो दर्शकों के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं। इस प्रकार का सिनेमा लोकप्रिय अपील और महत्वपूर्ण प्रशंसा को जोड़ती है। ब्लैक फ्राइडे (2004), उडान (2010), नो वनकिल्ड जेसिका (2011), वन्स अपॉन ए टाइम इन मुंबई (2010), अकरोश (2010) आदि को इस प्रकार के तहत सूचीबद्ध किया जा सकता है सिनेमा।

भंडारकर का सिनेमा किरकिरा यथार्थवाद के साथ जुड़ा हुआ है। वह समकालीन हिंदी फिल्म–निर्माताओं की ब्रिगेड में आता है, जिन्होंने फिल्माया है वास्तविक समय के मुद्दों और उसी के लिए सराहना की गई है। वह कई राष्ट्रीय फिल्म के प्राप्तकर्ता भी रहे हैं सामाजिक मुद्दों पर उनके काम के लिए पुरस्कार। उनकी फिल्मों ने बोल्ड और अपरंपरागत विषयों से निपटा है महिलाओं का शोषण, गरीबी का चक्र, संगठित अपराध, पुलिस और सरकार। भ्रष्टाचार, सेलिब्रिटी का पंथ और पत्रकारिता, बड़े व्यवसाय और औद्योगिक जासूसी की क्रूरता। उनकी फिल्मों में महिला नायक थे। भंडारकर की फिल्मों में महिलाओं को आमतौर पर बोल्ड और सशक्त महिलाओं के रूप में दिखाया जाता है जो अपने जीवन का नेतृत्व करते हैं स्वयं की शर्तें, अपने स्वयं के निर्णय लें. विद्रोही हैं, जो सामाजिक मानदंडों के अनुरूप नहीं हैं और अपने में उत्कृष्टता प्राप्त करते हैं संबंधित व्यवसाय।

साथ ही अफसोस के साथ हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि फिल्म अध्ययन की जेंडर भेद संबंधी जो महत्वपूर्ण दृष्टि हमें पश्चिम में देखने को मिलती है वह यहाँ लगभग लुप्तप्राय है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि उपभोक्तावाद और दैहिक प्रदर्शन के दौर में, सिनेमा का अंदरुनी तथा बाह्य दृष्टि विन्यास जेंडर के आधार पर बंटा होता है। यह अलग बात है कि देह को कितना और कैसे दिखाया जाए इसे अलग अलग सेंसर मान्यताओं द्वारा निर्धारित किया जाता है। जेंडर भेद के जिस दैहिक रूप कि चर्चा हमनें ऊपर की है इसी के साथ–साथ आरतीय सामजिक संरचना में जेंडर भेद के अन्य विविध रूप भी मौजूद हैं। उदाहरणार्थ स्वरुप समाज, राजनीति, वर्ग, नस्ल, जाति, प्रेम, परिवार, भाषा आदि।

"कहानी या उपन्यास में लेखक शब्दों के द्वारा जो कहता है, पाठक अपनी समझ और कल्पना शक्ति द्वारा उसका अर्थ ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में उसके सामने यह स्वतंत्रता रहती है कि वह रचना के किसी भी अंश को दुबारा तिबारा पढ़े ताकी उसके अर्थ की पर्ते उसके सम्मुख खुल सकें। फिल्म में दर्शक के सामने यह स्वतंत्रता नहीं होती। एक के बाद दूसरा दृश्य उसके सामने से गुजरला जाता है। इन दृश्यों के माध्यम से जो कुछ दिखता है उन्हीं से दर्शक को अर्थ ग्रहण करना होता है एक क्षण में जो घटित होता है उसे रोक कर और उस क्षण को स्पेस में आवश्यकतानुसार विस्तार देकर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।"[6]

जेंडर भेद का यह आधार पितृसत्ता कब और किस रूप में हमारे जीवन का अंग बन गया व इसने इतना विकराल व हावी रूप धारण कर लिया इसका हमारे समक्ष को ऐतिहासिक दस्तावेज मौजूद ही नहीं है। हमारे साहित्य, सिनेमा व कला आदि सभी रूपों में इसे भीतर तक समाहित हुए देखा जा सकता है। सामंतवाद व पूंजीवाद जेंडर भेद के मामले में, पितृसत्ता की मौजूदगी को लेकर, एक समान है। हिंदी फिल्म अध्येताओं को सदा से ही हिंदी सिनेमा के सैद्धांतिक पक्ष की कमी खलती रही है। सिद्धांत से तात्पर्य उन सभी विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग जो फिल्म आख्यान के पठन तथा गूढार्थों के सृजन में सहायक सिद्ध हो सकें। "20वीं शताब्दी के आरंभ से ही आंग्ल–यूरोपीय सिनेमा को समझने के लिए 'जर्मन दार्शनिक ह्यूगो मॉन्स्टरवर्ग (1863–1917) ने पठन की नयी परंपराएं कायम की जिन्हें सोवियत फिल्मकार सर्गेई आइजेस्टाइन, जर्मन कला विशेषज्ञ रुडोल्फ आर्नहाइम (1904–2007), फ्रांसीसी सिद्धांतकार आंद्रे बाजां, जर्मन विद्वान सिगफ्राइड कैकुअर तथा क्रिश्चियन मेट्ज, तथा अमेरिकी नारीवादी चिंतक लॉरा मल्वी एवं फ्रांसीसी दार्शनिक ज्यां देल्यज् ने आगे बढ़ाया।

निष्कर्ष :-

महिलाओं के चित्रण पर एक समान निष्कर्ष पर आना मुश्किल है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत में महिलाएं एक समरूप समूह नहीं हैं–वे विभिन्न धर्मों, जातियों, वर्ग, सामाजिक–आर्थिक से संबंधित हैं स्थिति और विभिन्न प्रकार की महत्वाकांक्षाएं और इच्छाएं हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे अलग–अलग जीवन जीते हैं, यह है यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि भारतीय सिल्वर स्क्रीन पर महिलाओं को एक समान तरीके से चित्रित किया गया है। बेशक चित्रण को उस श्रेणी के प्रति संवेदनशील होना चाहिए जिसके लिए वे हैं। आधुनिकता की प्रक्रिया को गति देने के लिए पहचाने जाने वाले मीडिया उत्पाद के रूप में, सिनेमा को इससे चिपके नहीं रहना चाहिएय इसे महिलाओं के अधिक प्रगतिशील प्रतिनिधित्व के साथ सामने आना चाहिए। ऐसे चित्रण होंगे महिलाओं और समाज में उनकी भूमिका के प्रति न्याय करें।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. पं. रमाबाई, अनु. शंभू जोशी, हिंदू स्त्री का जीवन, संवाद प्रकाशन, पहला संस्करण, जनवरी 2006, पृ. 87
2. सं. राजीव रंजन गिरि, स्त्री मुक्ति यथार्थ और यूटोपिया, अन्जा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023. पृ. 16
3. Ed. Ashish Nandy, The Secret Politics of Our Desires, Innocence, culpability and Indian Popular Cinema, Oxford University Press, New Delhi.
4. Satyajit Ray, our Film their Films, Disha Book, Orient Longmans, 1993, pg. 91
5. Sumita S. Chakravarty, National Identity in popular Cinema, 1947-1987, Oxford University Press, New Delhi, 1966.
6. जवरीमल्ल पारख, लोकप्रिय सिनेमा में सामाजिक यथार्थ, पृ. 144
7. कुसुम अंसल, एक और पंचवटी, भूमिका से।

मो. 8851628536

poonam9871sharma@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 45-48

विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से सूर्यनमस्कार का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. महेश चन्द्र

.....

शोध आलेख सार :-

सूर्य नमस्कार अर्थात् प्राणों का संवर्द्धन, सूर्य में निहित अनुशासन एवं स्वर्णिम ऊर्जा से अपने समग्र व्यक्तित्व को प्रखर करना। इसके अभ्यास से बुद्धि, धैर्य, शौर्य एवं बल की प्राप्ति होती है तथा मानसिक एकाग्रता, आत्मविश्वास तथा मेधा भी बढ़ती है। यह संजीवनी की तरह एक दिव्य औषधि है जो मनुष्य के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती है एवं उसे दिव्यरूप प्रदान करती है। बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं युवावस्था में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न रूप दिखाई देते हैं। किशोरावस्था व्यक्तित्व विकास की सबसे जटिल अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में बालक की रूचियों में परिवर्तन आने लगता है। इस अवस्था में बालक की रूचियों में परिवर्तन आने लग जाता है। ये रूचियां स्वास्थ्य, अध्ययन, चरित्र, भोजन एवं वेशभूषा आदि से सम्बन्धित होती है। इन सब के अतिरिक्त शारीरिक स्वास्थ्य, योगा, प्राणायाम, ध्यान, संगीत एवं खेल आदि में भी रूचि देखने को मिलती है। आज के किशोर कल के भावी नागरिक है।

मूल शब्द :- अभ्यास, प्राकृतिक चिकित्सा, योग।

भूमिका :-

योगासनों के क्षेत्र में ''सूर्य नमस्कार'' एक अद्भूत अभ्यास है। इससे स्वास्थ्य शक्ति और क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त यह आत्मोत्थान में भी सहायक है। इसका संयुक्त परिणाम चेतनात्मक विकास के रूप में सामने आता है। इसमें आसन, प्राणायाम तथा ध्यान की क्रियाएं साथ–साथ चलती है अतएव यह एक पूर्ण अभ्यास हैं कम समय एवं श्रम और व्यस्त जीवन वालो के लिए यह एक आदर्श योगासन है। इससे आश्चर्यजनक लाभ हस्तगत किए जा सकते है।

सूर्य नमस्कार का एकदम सीधा और सरल अर्थ है ''सूर्य को प्रणाम''। यह नामकरण कदाचित इसलिए हुआ है कि अरूणोदय काल में इसे करने का विधान है। इसकी पहली मुद्रा प्रणाम की मुद्रा है, जिसमें सूर्य की ओर मुख करके खड़ा हुआ जाता है। इसलिए इसे ''सूर्य नमस्कार'' कहा गया है। यह वैदिक काल के ऋषियों की देन है।

प्राचीनकाल में दैनिक कर्मकांड के रूप में सूर्य की नित्य आराधना की जाती थी, क्योंकि प्राण–चेतना का

यह एक स्थूल माध्यम है और सूक्ष्म जगत् में ''सविता'' के रूप में यह प्राण–प्रवाह का प्रखर पुंज है। समस्त संसार के लिए इसे कल्याणकारी माना गया है। अतः इसकी उपासना हमारे धार्मिक कर्मकांड का अंग है। किन्तु जब 'सूर्य नमस्कार' के रूप में इसे हम अपनाते हैं, तो यही अभ्यास चेतना का उन्नायक और स्वास्थ्य, संवर्द्धक बन जाता है। यह उन तत्वज्ञों का आविष्कार है, जिन्हें यह पता था कि इससे केवल स्वास्थ्य–रक्षा ही नहीं होती वरन् मानसिक शक्तियों के संतुलन, नियमन और सुनियोजन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

इसकी विभिन्न 12 स्थितियों का साधक जब नियमित रूप से अभ्यास करता है तो उससे उसकी सूक्ष्म ऊर्जा प्रभावित होती है, उसमें एक लयबद्धता आती है और साधक की सोच संसार के प्रति सकारात्मक बनती जाती है।

'सूर्य नमस्कार' से मनुष्य का मन, मस्तिष्क शांत रहता है जिससे उसके व्यक्तित्व में निखार आता है एवं मांसपेशियों में साधारण खिचाव, आंतरिक अंगों की मालिश एवं सम्पूर्ण स्नायुओं में सुव्यवस्था आने से अभ्यास करने वाले के व्यक्तित्व में सुधार के साथ–साथ उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। असाध्य रोगों में लाभ एवं उनका पूर्ण उपचार करने में भी सूर्य नमस्कार की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। कहां जाता है ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। अर्थात् स्वास्थ्य अच्छा होगा तो किसी कार्य को अच्छी प्रकार से करने की शक्ति आयेगी तथा उसे रूचिपूर्ण ढंग से कर पायेंगे।

योग निद्रा की भांति 'सूर्य नमस्कार' भी सजगता को विकसित करने का एक सरल उपाय है। सजगता का यह विकास एक टार्च की तरह है, जिसका प्रकाश व्यक्तित्व के अंधकार को चीरता है। 'सूर्य नमस्कार' को नियमित रूप से करने से उससे शरीर के स्थूल–सूक्ष्म हर प्रकार के अंग–अवयव प्रभावित होते हैं।

भारत वर्ष की यह पावन एवं प्रांजल वसुन्धरा केवल अन्न, जल एवं सुख समृद्धि ही प्रदान करने वाली नहीं है अपितु बौद्धिक विकास की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण भूमि है, जहां सृष्टि के सृजन काल से ही तीव्र ज्ञान–पीपासा एवं मानव का उच्चतर चिंतन समष्ठि स्वरूप में दृष्टिगत होता है। जीवन में कोई बात यदि अनुशरण करने या अपनाने योग्य लगे, उन सब को जीवन की हर कड़ी के साथ जोड़ दिया जाये। जिस प्रकार एक माला में अनेक प्रकार के रंग बिरंगे मोती पिरोने से उसकी सुन्दरता में चार चांद लग जाते हैं, उसी प्रकार यदि हम अपने जीवन में योग का महत्व समझते हुए उसके हर पक्ष को जोड़ दे तो हमारे जीवन जीने की कला में चार चाँद लग जायेंगे।

सूर्य नमस्कार के नियमित अभ्यास से मनुष्य को कौशल, बुद्धि, शौर्य एवं बल की प्राप्ति होती है तथा साथ ही मानसिक एवं आध्यात्मिक शांति की प्राप्ति एवं आत्मविश्वास तथा स्वयं के अवलोकन की शक्ति बढ़ती है। यदि मनुष्य स्वयं के बारे में जान ले तो वह आसानी से अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। यदि देखा जाये तो आज के युग में व्यक्ति हर क्षेत्र में तेज होता है। कमी एक ही होती है कि उसमें निर्णय लेने की समझ नहीं होती है। उसे अपने लक्ष्य तक पहुंचने वाला हर रास्ता सही नजर आता है लेकिन सही रास्ता एक ही होता है उसे प्राप्त करने के लिए उसे स्वयं को एकाग्र, संयमित एंव निश्चयवान बनना पड़ेगा तथा इन सब की प्राप्ति हेतु नियमित रूप से सूर्य नमस्कार के अभ्यास की आवश्यकता होगी।

योगाभ्यासों के माध्यम से शरीर की नाड़ियों, ग्रंन्थियों, उपत्यिकाओं, मातृकाओं को संतुलित एवं सुव्यवस्थित कर पाना संभव है। पीनियल ग्रंथि का जब क्षय शुरू होता है, तो उससे अनेक प्रकार की भावनात्मक

समस्याएं पैदा होने लगती है। विशेषकर किशोर मन इन भावनात्मक आघातों को सह पाने में सक्षम नहीं होता है जिससे व्यक्तित्व में उलझन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे कई प्रकार के शारीरिक–मानसिक रोग पनपने लगते हैं। इस जटिलता को रोकने में सूर्य नमस्कार समर्थ है।

बालकों के लिए यह विशेष महत्व रखता है। कारण कि 8 वर्ष की आयु में ही पीनियल ग्रंथि का क्षय होने लगता है। इससे 12 से 14 वर्ष की आयु में उनका यौवन आंरम्भ होने लगता है। शारीरिक एवं भावनात्मक विकास के इस असंतुलन के कारण उनका व्यक्तित्व–गठन–सुचारू रूप से नहीं हो पाता है। इस कारण उसे हर क्षेत्र में उसकी सफलता संदिग्ध बनी रहती है। पीनियल ग्रंथ के इस क्षय को सूर्य नमस्कार द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। विशेषज्ञों का कथन है कि सूर्य नमस्कार का अभ्यास यदि 8–10 वर्ष की उम्र से ही बालकों को कराया जाये तो उसका परिणाम तब एक दम स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है, जब ऐसे बच्चों की तुलना उन सभी वयस्कों से की जाती है, जो यह अभ्यास नहीं करते। अभ्यासी बालक अपने सहपाठियों से हर क्षेत्र में श्रेष्ठ पाए गए हैं।

सूर्य नमस्कार का असर सम्पूर्ण शरीर तंत्र पर पड़ता है जिससे निष्क्रिय अंग सक्रिय हो उठते हैं और जहां अति सक्रियता होती है उसकी क्रियाशीलता नियंत्रण में आ जाती है।

महत्व :-

सूर्य नमस्कार प्रत्येक आयु–वर्ग के लोगों के लिए समान रूप से उपयुक्त है, किन्तु अधिक उम्र के लोगों को अधिक तनाव से बचना चाहिए। उच्च रक्तचाप या हृदयाघात से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। मेरूदंड की समस्या से ग्रसित आदमी को भी इससे परहेज करना ठीक है। इसे करने में एक और बात का ध्यान रखना चाहिए कि इससे अभ्यास से देह पर आवश्यकता से अधिक दबाव या खिंचाव न पड़े। सूर्य नमस्कार एक उपयोगी अभ्यास है। इससे शरीर और मन दोनों स्वस्थ–संतुलित बने रहते है और व्यक्ति शनैः–शनैः आत्मोत्कर्ष की ओर बढ़ता चलता है जिससे बालक के व्यक्तित्व में चार चांद लग जाते हैं। वर्तमान समय की शिक्षा पद्धति में योग का अपना विशिष्ट महत्व है क्योंकि छात्र एवं अध्यापक दोनों ही उज्ज्वल राष्ट्र के निर्माता है जब दोनों के विचार भावनाएं एवं कल्पनाएं उच्च कोटि की होगी तभी हम एक व्यवस्थित एवं सुसंगठित राष्ट्र की कल्पना कर सकते है और इन सब के लिए आवश्यक है छात्र एवं अध्यापक दोनों को अपने जीवन में योग को महत्व देना होगा।

भारतीय परम्परा के अनुसार ''योग'' का शाब्दिक अर्थ है– जोड़ना या संयुक्त होना। चित्त के प्रवाह को किसी एक माध्यम से जोड़ना जो विद्यार्थी जीवन के लिए उपयोगी है तथा विषय–जगत की ओर दौड़ने वाले इन्द्रिय समूह को एक उचित दिशा प्रदान करना जिससे विद्यार्थी अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सके। क्योंकि इन्द्रियों को वश में किये बिना मनुष्य की वह स्थिति है ''जैसी एक बंदर को कुछ भांग पिला दी हो और उसे कहे वो फल तोड़ के दिखाये।'' अर्थात् बिना इन्द्रियों को वंश में किये बिना बालक की स्थिति उस पागल बन्दर की तरह होती है।

सारांश :-

सूर्य नमस्कार का सम्बन्ध योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा से भी जुड़ा हुआ है। सूर्य की ऊष्मा एवं प्रकाश से स्वास्थ्य में अभूत पूर्व लाभ होता है। और बुद्धि की वृद्धि होती है। सूर्य के प्रकाश एवं सूर्य की उपासना से

कुष्ठ, नेत्र आदि रोग दूर होते हैं। सब प्रकार का लाभ प्राप्त होता है। हम जानते है कि वर्तमान कि शिक्षा पद्धति एक प्रतिस्पर्द्धात्मक पद्धति है जिसमें हर बालक के माता–पिता का एक ही सपना होता है मेरा बालक हर क्षेत्र में अव्वल रहे चाहे इसके लिए बालक पर कितना ही दबाव बनाना पड़े तथा बालक स्वयं इस क्षेत्र के लिए तैयार हो या ना हो उसे अपने माता–पिता के सपनो ंको साकार करने के लिए स्वयं को तैयार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में बालक तनाव, अनिद्रा, चिंता, आदि विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में बालक के लिये शिक्षा के साथ–साथ योग का अपना विशिष्ट महत्व है क्योंकि इन सब रोगों से छुटकारा योग के माध्यम से ही प्राप्त कर सकता है। अतः छात्र जीवन में योग विशेषकर सूर्य नमस्कार का अभ्यास अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि कहा भी गया है कि ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।

सूर्य नमस्कार कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं है। यह अपने आप में स्वतंत्र है एवं व्यायामों और आसनों की एक भावमय श्रृंखला है। यह एक ऐसी औषधि है जो कि उत्साह एवं स्फूर्ति उत्पन्न करते हुए छात्रों की कार्य क्षमताओं में वृद्धि करती है। इससे शरीर के सभी अंगों एवं उपांगों का पूरा व्यायाम हो जाता है। शरीर का पूरा शुद्धिकरण एवं सूर्य की स्वर्णिम ऊर्जा का संचार सम्पूर्ण शरीर पर होता है। सूर्य नमस्कार एक ऐसी गतिविधि है जो हमारे मानसिक एवं शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. गैनानी, टी.सी. (1984) फ्रस्टेशन. रिकेशन एज फंक्शन्स ऑफ एचीवमेंट मोटिवेशन एण्ड एंग्जाइटी एट डिफरेन्ट एज लेवल्ससाइकोलॉजिकल रिव्यू. लंदन।
2. गौतम, चन्द्र. (1991). आचार्य तुलसी जीवन विज्ञान सम्प्रत्यय का अध्ययन. देव संस्कृति विश्वविद्यालय. हरिद्वार।
3. चौबे, एस.पी. अखिलेश. (2004–05). शैक्षिक मनोविज्ञान के मूलाधार इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस. मेरठ।
4. जैन, राजीव एवं त्रिलोक. (2018). योग विद्या. मंजूला हाउस. भोपाल।
5. जैन, मुमुक्षु संतोष. (1987). शारीरिक विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान. जैन विश्वभारती. लाडनूं।
6. जेन्सन, एण्ड कैनी. (2012). योग का ध्यान एवं अधिगम कठिनाइयों पर प्रभाव का अध्ययन. हैल्थ एण्ड फिटनेस इंस्टिट्यूट. अमेरिका।
7. जबौलट, (2011). विभिन्न संकायों में पढ़ने वाले बालकों के स्पैक्टम (वर्णक्रम) विकास पर योग के प्रभाव का अध्ययन. हैल्थ एण्ड फिटनेस इंस्टिट्यूट. अमेरिका।
8. टर्नर, (2013). शारीरिक क्रियाओं का स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययनऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी. लंदन।
9. पतंजलि, (2001). पंतजलि योग सूत्र. योग हीलिंग आर्ट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. लंदन।
10. पंडित, शंभूनाथ. (2005). स्पीकिंग ऑफ योगा. स्टर्लिंग पब्लिशर्स. नई दिल्ली।
11. बिजलानी, रमेश. (2008). बैक टू हैल्थ थ्रो योगा. रेखा प्रिन्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 49-53

Indian Software Exports Industry : Challenges and Opportunities in the Age of Artificial Intelligence

Dr. Vishal Ranjan Tripathi
Asst. Prof., Deptt. Of Commerce, Bapu P.G College, Pipiganj, Gorakhpur U.P.

1. Introduction :

The Indian software exports industry has long been recognized as one of the major contributors to the country's GDP and its global economic stature. In recent years, the rapid advancement of Artificial Intelligence (AI) and automation technologies has brought significant disruption to the traditional outsourcing model that India has thrived upon for decades. This paper investigates the intersection of AI and the Indian software exports sector, exploring the challenges posed by emerging technologies and automation, as well as the opportunities AI brings to Indian firms. Through a deep dive into both the internal and external shifts resulting from AI adoption, the paper assesses how Indian firms can innovate, adapt, and maintain leadership in a rapidly changing technological landscape. Drawing on data, case studies, and expert opinions, this research provides a comprehensive look at the future of Indian software exports in the age of AI.

The Indian software exports industry, often referred to as the backbone of India's IT sector, has seen exponential growth since its emergence in the 1990s. The country's competitive advantage has traditionally been based on its low labor costs, an English-speaking workforce, and its ability to deliver high-quality, cost-effective IT services. By 2021, India's IT sector generated approximately $227 billion in revenue, with software exports contributing significantly to the national economy. However, as AI and automation technologies disrupt global business models, the Indian software exports sector is at a crossroads, facing both substantial challenges and newfound opportunities.

Objectives of the Paper : This paper aims to explore the effects of AI on India's software export industry, focusing on the challenges emerging from automation, competition, and skill gaps. It will also examine the potential opportunities AI provides for innovation, market expansion, and operational efficiency. By analysing the impact of AI on this key sector, the paper seeks to outline actionable strategies for Indian firms to remain competitive in a rapidly evolving global market.

2. Overview of the Indian Software Exports Industry :

India's IT and software services industry has undergone remarkable growth over the past three decades. The industry is a major contributor to the Indian economy, accounting for approximately 8% of the GDP in 2021. India is the largest exporter of IT services, with global firms relying on Indian companies for IT outsourcing and business process management (BPM) services. Major players in this industry include Tata Consultancy Services (TCS), Infosys, Wipro, Cognizant, and HCL Technologies, which are responsible for a significant share of the export revenues.

Key Statistics :

- **Revenue :** India's IT industry generated $227 billion in FY2021, with software exports alone accounting for $150 billion (NASSCOM, 2021).
- **Employment :** Over 4.5 million people are employed in the Indian IT-BPM sector, with a large portion of the workforce engaged in software development and outsourcing.
- **Global Share :** India accounts for approximately 55-60% of the global IT services outsourcing market.

Despite the impressive growth, there are several emerging challenges that threaten the sustainability of the Indian software exports industry, especially with the rise of AI technologies and global automation trends.

3. The Rise of AI : Impact on the Indian Software Exports Industry :

3.1. AI and Automation : Redefining Outsourcing Models

AI-powered tools and automation systems, such as robotic process automation (RPA), machine learning, and AI-based software platforms, have rapidly evolved to handle tasks traditionally outsourced to countries like India. Automation allows organizations in developed economies to handle business processes such as customer support, data entry, and IT management with minimal human intervention. For instance, a growing trend is the automation of helpdesk operations, which were previously outsourced to Indian firms.

- **Impact on Outsourcing :** As AI continues to develop, tasks traditionally outsourced to India—like customer support and data entry—are being automated. The rise of RPA allows companies to handle these tasks more efficiently in-house, reducing the need to outsource them to countries with lower labor costs.

Example : Many global companies like Accenture and IBM have already started implementing AI-driven processes to reduce dependency on offshore labor. Accenture's 'Intelligent Automation' tools utilize AI to improve service delivery in industries such as banking, telecommunications, and manufacturing.

3.2. The Challenge of Automation on Labor Demand :

AI and automation's rise threatens to disrupt the job market in India's IT sector. Traditionally, India's competitive advantage in software exports has been its vast pool of skilled software engineers and low-cost labour. However, as automation continues to reduce the reliance on manual processes, many low and mid-level jobs are at risk.

- **Job Losses :** A report from NASSCOM suggests that automation could potentially displace 6 to 7 million jobs in India's IT and BPO sectors by 2025, particularly those in repetitive tasks like customer service, testing, and data entry (NASSCOM, 2020).

Data Insight : According to a study by McKinsey (2020), AI and automation will require companies to rethink their human resource strategies, pushing India's IT firms to transition from labour-intensive models to models that prioritize creativity, problem-solving, and strategic input.

3.3. Rising Global Competition from AI-Driven Firms :

As AI technologies become more accessible, companies around the world are leveraging AI to provide faster, cheaper, and more accurate software solutions. For instance, firms based in North America and Europe are increasingly adopting AI tools and hiring AI specialists to enhance their software offerings, reducing their dependence on outsourcing.

- **Example :** Google, Microsoft, and Amazon, all AI leaders, now provide cloud-based AI services such as machine learning algorithms and AI-driven analytics, further intensifying competition in the global IT outsourcing market.

As these companies expand their offerings, Indian IT firms must adapt their business models to integrate AI technologies or risk losing ground to global competitors.

4. Opportunities for the Indian Software Exports Industry in the Age of AI :

4.1. AI as a Catalyst for Innovation

AI offers Indian software firms the opportunity to innovate by developing smarter software solutions that go beyond traditional service models. Companies can leverage AI to create new products, enhance user experiences, and develop advanced data analytics solutions.

- **Example :** Indian software firms like Infosys and Wipro are already integrating AI into their offerings to deliver predictive analytics, automation, and cognitive solutions to clients across various industries.

By harnessing AI in product development, Indian firms can diversify their revenue streams, making them less dependent on traditional outsourcing.

4.2. Expansion into New Markets with AI-driven Solutions :

As AI technologies evolve, new markets and industries are emerging. India's software firms

are well-positioned to take advantage of these shifts by offering AI-driven solutions in industries such as healthcare, agriculture, education, and manufacturing.

- **Opportunity :** In sectors like healthcare, AI can be used for predictive diagnostics and treatment recommendations, a field where India's software firms are increasingly contributing through telemedicine and healthcare software development.
- **Example :** Companies like Tata Consultancy Services (TCS) are already using AI and machine learning to develop solutions in healthcare, aiming to improve patient outcomes through AI-based diagnostics.

4.3. Strategic Collaborations with Global AI Leaders :

One of the key opportunities for Indian firms lies in forming partnerships with global AI technology providers. By collaborating with tech giants like Google, IBM, and Microsoft, Indian firms can integrate AI into their existing offerings and expand their global footprint.

- **Example :** In 2021, Infosys announced a strategic partnership with Google Cloud to deliver AI-powered digital transformation solutions to enterprises across the globe. This collaboration allows Infosys to utilize Google Cloud's AI technologies to offer enhanced data analytics and machine learning solutions.

4.4. Reskilling the Workforce for the AI Era :

The integration of AI into India's software exports industry also presents an opportunity to address skill gaps. India's IT sector can invest in reskilling and upskilling initiatives to prepare the workforce for roles that focus on innovation, machine learning, AI deployment, and data science.

- **Opportunity :** By investing in AI-specific education and training, India can position itself as a global leader not just in outsourcing, but in the creation of AI solutions.

Data Insight : According to a report by NASSCOM (2020), India's IT sector is expected to see a demand for 1.5 million new AI professionals by 2025, making it an important area for investment and talent development.

5. Challenges in the AI Transition for India's Software Exports Industry :

5.1. Technological Infrastructure and Investment

The transition to AI requires significant investment in infrastructure, research and development, and AI tools. While large Indian firms like TCS and Infosys are capable of investing in AI research, smaller firms may face challenges in adopting AI technologies due to capital constraints.

- **Challenge :** Indian software firms need substantial investments in AI infrastructure, cloud computing, and big data technologies to remain competitive in the AI space.

5.2. Data Privacy and Compliance :

As AI solutions require access to vast amounts of data, Indian firms must navigate complex regulatory environments around data privacy, security, and ethical AI practices. Compliance with global standards such as GDPR is essential for maintaining trust in AI-powered software products.

- **Challenge :** Indian firms must ensure that their AI solutions comply with international data protection regulations, which can vary across markets.

5.3. Regulatory and Policy Framework :

India's regulatory framework surrounding AI adoption is still evolving. There is a need for a clear, unified policy on AI development, data security, and ethical considerations to guide the growth of the AI-driven IT services sector.

- **Challenge :** The lack of a comprehensive national AI policy may create uncertainty for firms looking to innovate and invest in AI technologies.

6. Conclusion :

The rise of AI presents both significant challenges and opportunities for the Indian software exports industry. While automation and AI-driven tools disrupt traditional outsourcing models, they also provide the potential for growth through innovation, new market expansion, and strategic partnerships. Indian software firms must adapt to the changing landscape by investing in AI research, reskilling their workforce, and aligning their offerings with global technological trends. The future of India's software export industry will depend on how effectively the sector can leverage AI to stay competitive and continue driving global IT services growth.

References :

1. NASSCOM. (2020). *India's IT-BPM Industry: Repositioning in the AI Era*. National Association of Software and Service Companies.
2. McKinsey & Company. (2021). *Artificial Intelligence and Automation: The Future of IT Services*. McKinsey Insights.
3. KPMG. (2020). *Artificial Intelligence: The Impact on the Indian IT Sector*. KPMG Global Reports.
4. Tiwari, R., & Saini, S. (2022). *Artificial Intelligence and the Future of Indian IT Outsourcing*. Indian Journal of Technology, 14(2), 234-247.
5. Infosys. (2021). *Strategic Partnership with Google Cloud: Transforming Business with AI*. Infosys Press Release.

Mob- 9450115779, E.mail – vrt9450@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 54–60

Restructuring School Curriculum and Pedagogy under NEP 2020

Dr. Sunita Kumari
Assistant Professor of Dr. S. Radhakrishnan College of Education.

Abstract :

The National Education Policy (NEP) 2020 proposes a transformative restructuring of school curriculum and pedagogy to foster a holistic, integrated, enjoyable, and engaging learning experience for students. This reform aims to shift the focus from rote memorization to conceptual understanding, critical thinking, creativity, and real-world application.

Key to this restructuring is the introduction of the 5+3+3+4 curricular structure, replacing the traditional 10+2 system. This new model divides schooling into foundational (ages 3-8), preparatory (ages 8-11), middle (ages 11-14), and secondary (ages 14-18) stages, each with tailored pedagogical and curricular emphases. The foundational stage emphasizes play-based and activity-based learning, while the preparatory stage introduces more formal yet interactive classroom experiences. The middle stage focuses on experiential learning across subjects, and the secondary stage allows students to explore subjects in greater depth, with flexibility to choose courses based on their interests.

NEP 2020 also advocates for Emphasizing multilingualism, the policy supports the use of the mother tongue or regional language as the medium of instruction at least until Grade 5.

Furthermore, the policy underscores the importance of continuous professional development for teachers, equipping them with innovative pedagogical tools and strategies to meet diverse learning needs. Overall, the restructuring of school curriculum and pedagogy under NEP 2020 aims to develop well-rounded, creative, and critical thinkers who are prepared for the challenges and opportunities of the 21st century.

Key Words :- National Education Policy 2020 , Restructure, School Curriculum and pedagogy

Introduction :

The National Education Policy (NEP) 2020, introduced by the Government of India, marks a significant shift in the landscape of Indian education. Aiming to address the diverse needs of the 21st

century, NEP 2020 proposes comprehensive reforms in school curriculum and pedagogy. The policy emphasizes a student-centric approach that fosters holistic development, critical thinking, creativity, and lifelong learning. This article explores the key aspects of the restructuring of school curriculum and pedagogy under NEP 2020, examining its objectives, proposed changes, implementation strategies, and expected impacts.

Objectives of NEP 2020 :

Holistic Development :

One of the primary objectives of NEP 2020 is to promote the holistic development of students. This includes intellectual, physical, emotional, and social growth. The policy advocates for a curriculum that goes beyond traditional academics to include sports, arts, life skills, and ethics.

Reducing Rote Learning :

NEP 2020 aims to reduce the emphasis on rote memorization and promote conceptual understanding. The policy encourages experiential and activity-based learning that help students apply knowledge in real-world contexts.

Restructuring the School Curriculum :

Introduction of the 5+3+3+4 Structure :

One of the most significant changes proposed by NEP 2020 is the restructuring of the school curriculum into a 5+3+3+4 system, replacing the traditional 10+2 model. This new structure divides schooling into four stages:

Foundational Stage (Ages 3-8) :

The foundational stage includes five years of flexible, play-based, and activity-based learning. This stage focuses on the development of cognitive and socio-emotional skills, with an emphasis on the mother tongue or regional language as the medium of instruction.

Preparatory Stage (Ages 8-11) :

The preparatory stage covers three years of education, introducing formal classroom learning while retaining an interactive and exploratory approach. This stage emphasizes the development of foundational literacy and numeracy skills, along with exposure to a variety of subjects.

Middle Stage (Ages 11-14) :

The middle stage comprises three years of experiential learning across subjects, including arts, sciences, humanities, and vocational education. This stage focuses on critical thinking, problem-solving, and the application of knowledge in practical contexts.

Secondary Stage (Ages 14-18) :

The secondary stage spans four years of multidisciplinary study, offering greater flexibility

and choice. Students can choose subjects based on their interests and career aspirations, allowing for a deeper exploration of specific areas. This stage also emphasizes vocational education and skill development.

Multilingualism :

The policy promotes multilingualism as a key component of the school curriculum. It advocates for the use of the mother tongue or regional language as the medium of instruction at least until Grade 5, and preferably until Grade 8 and beyond. Additionally, students will be encouraged to learn multiple languages, including classical languages and foreign languages.

Focus on Foundational Literacy and Numeracy :

NEP 2020 places a strong emphasis on achieving universal foundational literacy and numeracy by Grade 3.

Assessment Reforms :

The policy proposes significant changes to the assessment system, moving away from high-stakes examinations towards more holistic and formative assessments. This includes continuous and comprehensive evaluation (CCE) methods that assess students' progress in a more nuanced and comprehensive manner.

Restructuring Pedagogy :

Student-Centric and Experiential Learning :

NEP 2020 advocates for a shift from teacher-centred to student-centric pedagogy. This approach emphasizes active learning, where students engage in hands-on activities, experiments, projects, and collaborative work. Experiential learning helps students connect theoretical knowledge with real-world applications.

Teacher Training and Professional Development :

NEP 2020 emphasizes the importance of continuous professional development for teachers. The policy outlines specific measures to provide teachers with ongoing training and support to enhance their pedagogical skills and stay updated with the latest educational practices. This includes in-service training programs, workshops, and access to online resources.

Inclusive and Equitable Pedagogy :

The policy promotes inclusive and equitable pedagogy that caters to the diverse needs of all students, including those from marginalized and disadvantaged backgrounds. This includes providing additional support and resources for students with disabilities, special educational needs, and those from socio-economically disadvantaged groups.

Implementation Strategies :

Policy Guidelines and Frameworks :

The successful implementation of NEP 2020 requires clear policy guidelines and frameworks at the national, state, and local levels. This includes developing detailed implementation plans, setting specific targets and timelines, and ensuring coordination and collaboration among various stakeholders.

Capacity Building and Infrastructure Development :

To support the restructuring of the school curriculum and pedagogy, significant investments are needed in capacity building and infrastructure development. This includes upgrading school facilities, providing access to digital tools and resources, and enhancing the capacities of teachers and administrators.

Monitoring and Evaluation :

Effective monitoring and evaluation mechanisms are essential to track the progress and impact of the reforms. This includes regular assessments of student learning outcomes, feedback from stakeholders, and periodic reviews of the implementation process. Continuous monitoring and evaluation help identify challenges and areas for improvement, ensuring that the reforms are on track to achieve their objectives.

Community and Stakeholder Engagement :

The successful implementation of NEP 2020 requires active engagement and participation from all stakeholders, including parents, teachers, students, and the community. This includes raising awareness about the policy, fostering a supportive environment, and encouraging collaboration and partnerships to support the reforms.

Expected Impacts of the Restructuring :

Enhanced Learning Outcomes :

The restructuring of the school curriculum and pedagogy under NEP 2020 is expected to lead to significant improvements in student learning outcomes. By promoting conceptual understanding, critical thinking, and problem-solving skills, the policy aims to equip students with the knowledge and skills needed for success in the 21st century.

Holistic Development :

The focus on holistic development ensures that students not only excel academically but also develop essential life skills, emotional intelligence, and social awareness. This prepares students to be well-rounded individuals who can contribute positively to society.

Reduced Dropout Rates :

By making learning more engaging, relevant, and enjoyable, NEP 2020 aims to reduce dropout

rates and improve student retention. The policy's emphasis on flexibility and choice allows students to pursue their interests and passions, making education more meaningful and motivating.

Increased Equity and Inclusion :

The policy's focus on equity and inclusion ensures that all students, regardless of their background, have access to quality education. This includes targeted interventions and support for marginalized and disadvantaged groups, helping to bridge educational disparities and promote social justice.

Greater Global Competitiveness :

By aligning the curriculum with global standards and incorporating contemporary subjects, NEP 2020 aims to enhance the global competitiveness of Indian students. This prepares them to succeed in a rapidly changing and interconnected world, contributing to India's growth and development.

Strengthened Teacher Workforce :

The emphasis on continuous professional development for teachers ensures that they are well-equipped to implement the new curriculum and pedagogical approaches. This helps create a skilled and motivated teacher workforce that can provide high-quality education and support student learning.

Bridging the Urban-Rural Divide :

Addressing Regional Disparities :

NEP 2020 recognizes the significant disparities between urban and rural education systems. The restructuring aims to bridge this gap by providing equitable access to quality education regardless of geographic location. This includes targeted investments in rural schools, infrastructure development, and deployment of qualified teachers to underserved areas.

Use of Technology in Rural Areas :

Leveraging technology is crucial in reaching remote and rural areas. NEP 2020 advocates for the establishment of digital infrastructure in these regions to provide access to online learning resources, virtual classrooms, and digital libraries. This helps to ensure that students in rural areas have the same learning opportunities as their urban counterparts.

Promotion of Arts and Humanities :

Integrating Arts into the Curriculum :

The policy emphasizes the importance of arts and humanities in developing a well-rounded education. By integrating arts into the curriculum, NEP 2020 seeks to foster creativity, cultural awareness, and emotional intelligence. This includes incorporating subjects like music, dance, theatre, and visual arts into the regular curriculum.

Encouraging Creative Expression :

Encouraging creative expression is vital for the holistic development of students. NEP 2020 promotes activities that allow students to express themselves creatively, such as art projects, performances, and literary activities. These opportunities help students develop confidence, communication skills, and emotional resilience.

Strengthening Early Childhood Education :

Importance of Early Childhood Education :

NEP 2020 places significant emphasis on the importance of early childhood education (ECE). The foundational stage (ages 3-8) is crucial for cognitive, emotional, and social development. By focusing on play-based and activity-based learning, the policy aims to provide a strong foundation for future learning.

Training Early Childhood Educators :

The policy underscores the need for specialized training for early childhood educators. This includes professional development programs that equip educators with the skills and knowledge to implement effective ECE practices. Trained educators can create a nurturing and stimulating environment that supports the overall development of young children.

Emphasis on Physical Education and Health :

Integrating Physical Education :

Physical education is an integral part of the NEP 2020 curriculum. The policy advocates for regular physical activities and sports to promote physical fitness, teamwork, and discipline. Schools are encouraged to provide adequate facilities and resources for sports and physical activities.

Health and Well-being Education :

In addition to physical education, the policy emphasizes health and well-being education. This includes topics such as nutrition, mental health, personal hygiene, and preventive health care. By incorporating health education into the curriculum, NEP 2020 aims to promote a holistic approach to student well-being.

Hands-On Environmental Activities :

The policy encourages hands-on environmental activities, such as tree planting, recycling projects, and nature excursions. These activities provide practical learning experiences that help students understand and appreciate the importance of environmental stewardship.

Strengthening Assessment and Evaluation :

Continuous and Comprehensive Evaluation (CCE) :

The policy advocates for the implementation of Continuous and Comprehensive Evaluation

(CCE) methods. This approach assesses students' progress through a variety of formative assessments, such as quizzes, projects, and presentations, rather than relying solely on high-stakes exams.

Use of Technology in Assessments :

Technology plays a crucial role in modernizing the assessment process. NEP 2020 promotes the use of digital tools for assessments, such as online tests, e-portfolios, and data analytics. Technology-enabled assessments can provide timely feedback and personalized learning insights.

Conclusion :

The restructuring of the school curriculum and pedagogy under NEP 2020 represents a significant and transformative shift in Indian education. By focusing on holistic development, conceptual understanding, flexibility, and inclusion, the policy aims to create a more engaging, relevant, and effective education system. The successful implementation of these reforms requires coordinated efforts from all stakeholders, including government agencies, educators, parents, and the community. With the right support and commitment, NEP 2020 has the potential to significantly enhance the quality of education in India, preparing students for the challenges and opportunities of the 21st century and contributing to the nation's progress and development.

The restructuring of school curriculum and pedagogy under NEP 2020 represents a bold and comprehensive effort to transform Indian education.

References :

1. Chattopadhyay, S. and Biswas, S., Pedagogical and Structural Change in Schools in Light of NEP 2020
2. Kumari, S. NEP 2020 and Teacher Education: Transforming Teacher Training Programs.

Address : Plot 41 , Chira Chas, Near city mall, Chira Chas, Pin-827013

E-mail : sunita.vsps@gmail.com, Mob. No. 7209609302

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 61-67

देवनागरी लिपि का मानकीकरण और वैज्ञानिक

डॉ. जी. पी. अहिरवार, निर्देशक
नीलेश कुमार प्रजापति, शोधार्थी

.....

लिपि से तात्पर्य लिखित चिह्नो के उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा भाषा को रूपायत किया जाता है। लिपि मनुष्य की एक महत्वपूर्ण रचना है। लिपि के माध्यम से मनुष्य अपने भाषा में विचार और भावों को स्थायित्व प्रदान किया है। 'लिपि के माध्यम से मनुष्य को अपनी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विचार, अनुभव पहुंचने में बड़ी सुविधा हुई है। चूंकि भाषा एवं लिपि का परस्पर संबंध होते हुए भी एक वस्तु नहीं है। भाषा विचार व्यक्त की व्यवस्था है, जबकि लिपि लिखित चिह्नो की संरचना है। जिस प्रकार भाषा में प्रयुक्त ध्वनि चिह्नों होने का आदर भाव अथवा धारण है इस प्रकार लिपि चिह्नो का आधार बनी होती है अतः लिपि भाषा की भाषा है।'[1] भाव एवं भाषा में सीधा संपर्क होता है किंतु लिपि और भाव में भाषा के माध्यम से ही संपर्क स्थापित होता है, भाव भाषा एवं लिपि के संबंध को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है।

भाषा ⟷ भाव ⟷ लिपि

भाषा एवं लिपि में कोई तात्विक एवं अनिवार्य संबंध नहीं है। कोई भी भाषा किसी भी लिपि का प्रयोग कर सकती है यह एक ऐतिहासिक आकस्मिकता है कि किसी एक विशेष भाषा के लिए किसी एक लिपि का प्रयोग होता है।

हमारे अध्ययन का विषय देवनागरी लिपि उसकी विशेषताएं और दोष एवं सुधार है फिर भी हमारा अध्ययन लिपि और भाषा की अवधारणा को स्पष्ट कर देना था। भाषा के संबंध में विद्वानों ने कहा है कि भाषा पहले हृदय, फिर सिर और फिर कंठ में आती है इसी क्रम में लिपि के संदर्भ में एक कदम और आगे बढ़ाना चाहता हूं, जिससे हस्त को शामिल किया जा सकता है। जिसके माध्यम से लिपि चिह्नो को प्रदर्शित किया जाता है। इसको निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

हृदय	सिर	कंठ	हस्त
भाव	विचार	भाषा	लिपि

लिपि की अवधारणा पश्चात हम अपने आलोच्य विषय देवनागरी लिपि का पर विचार कर रहे हैं।

2. देवनागरी लिपि :-

लिपि की दिशा में देवनागरी लिपि सुधार के प्रयास तो 1900 ई. के आसपास शुरू हो गए थे, किंतु इसे मानक रूप देने का प्रयास हिंदी निदेशालय ने किया। उसके 'अ बेसिक ग्रामर ऑफ हिंदी लैंग्वेज' में नागरी का

मानकीकृत रूप दिया गया है। हिन्दी निदेशालय ने राष्ट्र लिपि के रूप में नागरिक का एक परिवर्तित रूप भी निर्धारित किया है, जिसमें सभी भारतीय भाषाएं सरलता से लिखी जा सकती हैं। इसके लिए हिंदी निदेशालय ने 'परिवर्धित देवनागरी' नामक एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। इस तरह देवनागरी लिपि का भी मानकीकरण हो चुका है।'[2]

हिंदी भाषा की वर्णमाला में तिरपन मानक लिपिक चिन्ह जो इस प्रकार हैं :-

स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

व्यंजन :

क वर्ग	क, ख, ग, घ, ड.
च वर्ग	च, छ, ज, झ, ञ,
ट वर्ग	ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्ग	त, थ, द, ध, न
प वर्ग	प, फ, ब, भ, म
अंतस्थ	य, र, ल, व
संयुक्त व्यंजन	क्ष, त्र, ज्ञ, श्र,
उष्म	स, श, ष, ह
उत्क्षिप्त/द्विगुणज	ढ़, ड़
विशिष्ट वर्ण	ळ
लुंठित	ल
आयोग वाह	अं, अः
अनुस्वार	ं
विसर्ग	रू,
अर्द्ध स्वर	य, व
अंतर्राष्ट्रीय अंक	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9
उर्दू से आगत	क, फ, ज
अंग्रेजी से आगत	ऑ

कामता प्रसाद गुरु के अनुसार 'व्यंजन दो प्रकार से लिखे जाते हैं। 1. खड़ी पाई समेत और 2. बिना खड़ी पाई के जैसे ड., छ, ट, ठ, ड, द, ढ, र को छोड़ कर शेष व्यंजन पहले प्रकार के हैं। सब वर्णों के सिर पर एक–एक आड़ी रेखा रहती है, जो ध, झ और भ में कुछ तोड़ दी जाती है।'3

देवनागरी लिपि का विकास :-

देवनागरी लिपि का विकास भारत के प्राचीन लिपि ब्राह्मी से हुआ है। इसका प्रयोग पांचवी सदी ई. पूर्व से लेकर 350 ई. तक होता रहा। इसके बाद इसकी दो शैलियों का विकास हुआ। पहले उत्तरी शैली दूसरी दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली से चौथी सदी में गुप्त लिपि का विकास हुआ जो पांचवी शताब्दी तक प्रयुक्त होती रही गुप्त लिपि से छठवें सदी में कुटिल लिपि का विकास हुआ जो आठवीं सदी तक प्रयुक्त होती रही। इस

कुटिल लिपि से ही नवमी सदी के लगभग नागरी लिपि के प्राचीन रूप का विकास हुआ, जिसे प्राचीन नगरी भी कहते हैं। प्राचीन नगरी का क्षेत्र उत्तरी भारत में है किंतु दक्षिणी भारत के कुछ भागों में भी यह मिलती है दक्षिणी भारत में इसका नाम नागरी न होकर नंदनागरी है।

प्राचीन नागरी से ही आधुनिक नागरी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी, कैथी, मैथिली, असमिया, बांग्ला आदि लिपियां विकसित हुई है। कुछ लोग कुटिल से ही प्राचीन नगरी तथा शारदा के अतिरिक्त एक और प्राचीन लिपि विकसित हुई मानते हैं। जिससे आगे चलकर असमिया, बांग्ला, मणिपुरी आदि पूर्वी अंचल की लिपियां विकसित मानी जाती हैं। प्राचीन नागरी 15वीं सदी से 16 वीं सदी में आधुनिक नागरी लिपि का विकास हुआ। जिसे हम चार्ट के माध्यम से देख सकते हैं।

ब्राह्मी लिपि 5 वीं सदी ईसा पूर्व से 350 ई. तक

उत्तरी शैली — दक्षिणी शैली

गुप्त लिपि (चौथी ई. से 5वीं सदी तक) — नंदनागरी

↓

कुटिल लिपि (6वीं ई. सदी से 8वीं सदी)

↓

प्राचीन नगरी (नागरी लिपि)

↓

देवनागरी लिपि

↓

देवनागरी लिपि का नामकरण

देवनागरी लिपि का नामकरण के संबंध में निश्चित पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि देवनागरी नाम लिपि क्यों पड़ा?

लेकिन इस नाम के संबंध में अनेक अनुमान लगाया जा सकते हैं। जिसमें से कुछ इस प्रकार हैं :–

1. गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसका नाम नागरी पड़ा।
2. नगरों में प्रयुक्त होने के कारण इस लिपि को देवनागरी कहा गया।
3. देव नगरी काशी में इसका प्रयोग होने के कारण इसे देवनागरी कहा गया।

देवनागरी के नामकरण संबंधी सभी मत अनुमान पर आधारित हैं। इसका कोई तार्किक आधार नहीं है। यह हमारा उद्देश्य है कि नामकरण पर जोर न देकर, लिपि पर जोर अधिक रहे। क्योंकि पहले क्या था उसका

समय गुजर गया लेकिन अब जो लिपि के माध्यम से समझा जा रहा है इसी पर ज्यादा जोर देने की आवश्यकता है। जिसका विश्लेषण आगे किया जा रहा है।

देवनागरी लिपि की विशेषता और वैज्ञानिकता :-

देवनागरी या नागरी लिपि के पक्ष में ऐसा कहने के पीछे सबसे बड़ा कारण यह है कि वर्तमान में विभिन्न देशों के बीच आपसी संपर्क इतनी तीव्रता से बढ़ रहा है उसके चलते कालांतर में यदि संसार की समस्त भाषाओं के लिए किसी एक सर्वमान्य लिपि की आवश्यकता महसूस की जाएगी। तो निश्चित रूप से सर्वाधिक उपयुक्त देवनागरी ठहरेगी। सत प्रतिशत न सही, परंतु सबसे अधिक शुद्धता के साथ सभी भाषाओं की ध्वनियों में व्यक्त करने की क्षमता देवनागरी लिपि में है। इस अक्षारात्मक लिपि की तुलनात्मक विशेषता इसमें शब्दों को उनके उच्चारण के ही अनुरूप लिपिबद्ध करने की सामर्थ पैदा करती है। शीघ्र लिपि सोनोग्राफी के अनुसंधान करता डिजाइनर पिटमैन और मोनियर विलियम्स जैसे प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वानों को भी मानना ही पड़ा कि संसार की समस्त लिपियों में देवनागरी लिपि सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस संबंध में पिट्स मैन का कथन है कि 'संसार की कोई लिपि यदि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तो वह एकमात्र देवनागरी ही है।'[4]

इसमें कोई संदेह नहीं कि देवनागरी लिपि संसार की श्रेष्ठ लिपियों में से एक है। यह एक धनात्मक लिपि है। जिसमें अक्षरात्मक एवं वर्णनात्मक लिपियां की विशेषताएं पायी जाती हैं। इसके अलावा इस लिपि में अनेक विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं :-

1. यह एक व्यवस्थित ढंग से निर्मित लिपि है।
2. ध्वनि का क्रम वैज्ञानिक है, स्पर्श ध्वनियों में प्रथम वर्ग कंठ ध्वनियों का एवं अंतिम वर्ग ओष्ठ ध्वनियों का है।
3. प्रत्येक वर्ग में अल्प्राण ध्वनि के पश्चात महाप्राण ध्वनि सूचक चिन्ह है तथा प्रत्येक वर्ग की ध्वनियों में पहले अघोष धनिया एवं उसके पश्चात सघोष धनिया आती हैं।
4. प्रत्येक वर्ग में अल्पप्राण ध्वनि के पश्चात महाप्राण ध्वनि सूचक चिह्न है जैसे – क, ख तथा प्रत्येक वर्ग की ध्वनियों में पहले अघोष ध्वनियां एवं उसके पश्चात सघोष ध्वनियां आती हैं।
5. प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो ध्वनियां अघोष और अंतिम तीन ध्वनियां सघोष हैं। प्रत्येक वर्ग के अंत का वर्ण नासिक्य के अंतर्गत में आते हैं। जैसे न, म।
6. अल्प्राण एवं महाप्राण ध्वनियों के लिए अलग–अलग लिपि चिह्न है। जैसे क, ख, ग, घ, च, छ।
7. प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग–अलग लिपि चिह्न हैं।
8. एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न है जबकि रोमन में ऐसा नहीं होता जैसा :– क सूचक ध्वनि के लिए K - Kite एवं C - Cat, आदि।
9. एक लिपि में सदैव एक ही चिहन व्यक्त होती है किंतु रोमन में ऐसा नहीं हो जैसा C, सी के क कैट और क बोध होता है कैट और Cent –सेंट आदि।
10. केवल उच्चरित ध्वनि के लिए लिपि चिन्ह है किंतु रोमन में अनुच्चरित ध्वनियों के लिए भी लिप चिह्न है, जैसे walk आदि।
11. इसमें पर्याप्त मात्रा में लिपि चिह्न होने के कारण भिन्न भाषाओं की लिपि को अंकन करने की क्षमता है।

12. देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी वैज्ञानिकता यह है कि जो उच्चारित किया जाता है वही लिखा जाता है।
13. देवनागरी लिपि में कुल वर्णों की संख्या 53 है।
14. देवनागरी लिपि को स्वर और व्यंजन वर्णमाला में विभाजित किया गया है।
15. देवनागरी लिपि में 25 स्पर्श व्यंजन, चार अंतस्थ, पांच नासिक्य, चार संयुक्त व्यंजन आदि।

देवनागरी लिपि के दोष :–

1. कोई भी लिपि नितांत निर्दोष नहीं होती है। वास्तव में जो लिप मूलतः जिस भाषा के लिए बनती है उसे भाषा के लिए तो पर्याप्त और उपयुक्त होती है परंतु कालांतर में उसे भाषा की ध्वनियों में विकार आ जाता है और लिपि वैसी ही बनी रहती है इसी कारण से हिंदी में ऋ, त्र अथवा ष की अब कोई आवश्यकता नहीं है।
2. त्वरालेखन के लिए देवनागरी उपयुक्त नहीं है। एक शब्द लिखने के लिए कलम बार–बार आगे पीछे ऊपर नीचे उठती है।
3. बहुत से अक्षर, एक से अधिक ढंग से लिखे जाते हैं जैसे अ, श्र, घ, ध, भ, म, श, रा, स, आदि।
4. देवनागरी लिपि के मुद्रण में इतनी अधिक गति नहीं हो सकती, जितनी रोमन लिपि में होती है। क्योंकि वर्णों और संयुक्त अक्षरों, मात्राओं आदि को मिलाकर 403 टाइप रखने पड़ते हैं एवं मात्राएं आगे–पीछे, ऊपर–नीचे सब जगह लगानी पड़ती है।
5. ख को रव भी पढ़ा जा सकता है।
6. संयुक्त अक्षरों को लिखने की कई पद्धतियां हैं जैसे–क्त, च्च, क्छ, आदि।

देवनागरी लिपि में सुधार का प्रयास :–

देवनागरी लिपि में सुधार करने की और सर्वप्रथम मुंबई के विद्वान का ध्यान गयाऔर महादेव गोविंद रानाडे ने एक सुधार योजना तैयार की। तदुपरांत महाराष्ट्र साहित्य परिषद पुणे ने एक लिपि सुधार समिति का गठन किया और मराठी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार विमर्श करने का एक प्रस्ताव विपरीत किया गया। 'लोकमान्य तिलक ने 1904 में अपने 'केसरी पत्र' में इस सुधार की चर्चा की और 1926 तक उन्होंने टाइपों में छाती करते हुए 190 टाइप का एक फोंट निर्मित कराया जो 'तिलक 'फॉन्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।'[5] 'इसके उपरांत वीर सावरकर, महात्मा गांधी, विनोबा भावे तथा काका कालेलकर ने भी इस लिपि को सरल और सुगम बनाने का प्रयास किया इसके बारे में 'हरिजन' में काका कालेलकर का एक लेख छपा। सुझाव था कि 'अ' पर मात्राएं लगा करके सभी स्वरों की जानकारी कराई जा सकती है।'[6] महात्मा गांधी ने इसे पूर्ण रूप से स्वीकृत किया था। इसी कारण यह लिपि काका कालेलकर के द्वारा 'राष्ट्रभाषा परिषद' वर्धा की पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं आदमी प्रचलित हुई। इतना ही नहीं 'बिनोवा' जी ने भी अपने 'लोकनागरी' के माध्यम से इस सुधार के लिए जनमत को जागृत करने का कार्य किया था। उसे समय गुजराती में तो एक सुधार हुआ कि उसमें से वर्णों के ऊपर से जीरो रेखाएं हटा दी गई। इसका प्रभाव देवनागरी लिपि पर भी पड़ा और बहुत से लोग सिरो रेखाहीन देवनागरी लिपि लिखने लगे।'[7]

देवनागरी लिपि में प्रयुक्त त्रुटियों पर विचार करने पर यह देखा गया कि इसमें सुधार करना अनिवार्य है इस हेतु व्यक्तिगत, संस्थागत एवं प्रशासकीय स्तर पर अनेक प्रयत्न किए गए हैं जो इस प्रकार है :–

व्यक्तिगत रूप से किए गए प्रयास :-

- व्यक्तिगत रूप से किए गए प्रयासों में सुनीत कुमार चटर्जी, श्रीनिवास गोरख प्रसाद एवं सावरकर बंधुओ के नाम प्रमुख हैं।
- सुनीत कुमार चटर्जी ने रोमन लिपि में देवनागरी के वर्णों को लिखने का सुझाव दिया है।
- श्रीनिवास जी ने 'ह' (H) के लिए एक चिन्ह के प्रयोग का सुझाव दिया।
- डॉक्टर गोरख प्रसाद ने मात्राओं को शब्दों के दाहिनी ओर लिखने तथा शिरो रेखा हटाने का सुझाव दिया।
- सावरकर बंधुओ ने 'अ' बारह खड़ी उपयोग में लाने का सुझाव दिया।

संस्थागत रूप से किए गए प्रयास :-

संस्थागत रूप से किए गए प्रयासों में साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा और नागरी प्रचारिणी सभा काशी का नाम उल्लेखनीय है :–

साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से 1935 ई. में महात्मा गांधी के सभापतित्व तथा काका कालेलकर के संयोजकत्व में सभा हुई उसमें निम्न सुझाव रखे गए :–

देवनागरी लिपि राष्ट्र लिपि के रूप में :-

'एक देवनागरी लिपि रोमन की भांति बहुत विदेशी लिपि नहीं है, अपितु पूर्णता भारती है। इसकी उत्पत्ति और इसका विकास होना ही भारत भूमि में हुआ है, इस प्रकार इसकी जड़े देश के इतिहास और संस्कृत में है। भारत में जितनी भी लिपियां प्रचलित हैं। उनमें से देवनागरी लिपि को जानने वाले की संख्या सर्वाधिक है। रोमन लिपि को जानने वाले तीन चार प्रतिशत से भी कम है। बांग्ला, गुरमुखी, उड़िया, तमिल, तेलुगू अन्य लिपियां को जानने वाले भी 5% से लेकर 8% तक के बीच में है, किनतु देवनागरी लिपि जाने वालों की संख्या पचास प्रतिशत से ऊपर है।'[8]

देवनागरी लिपि उपलब्धि के प्रमुख कारण यह हैं :-

1. देवनागरी लिपि पूरे हिंदी प्रदेश में प्रयुक्त हैं और हिंदी भाषी जनता भारत में हिंदीत्तर भाषा भाषी जनता से अधिक है।
2. हिंदी की अतिरिक्त मराठी और कोंकणी भाषा की लिपि भी देवनागरी लिपि है। यहां के लोगों में भी इसी प्रकार का प्रचार है। 'असम के नेपाली लोग भी इसी लिपि का प्रयोग करते हैं।'[9]
3. ऐसे लोगों भी जो हिंदी मराठी और कोंकणी तथा नेपाली नहीं जानते ऐसे लोगों की संख्या पर्याप्त है। जो या तो धार्मिक दृष्टि से संस्कृत, पाली अर्द्धमागधी आदि से न्यूनाधिक रूप से परिचित है। तथा देवनागरी लिपि से भी अपरिचित नहीं है। क्योंकि उनके ग्रंथ परंपरा देवनागरी में ही छपी हैं या फिर अपने प्राचीन साहित्य, संस्कृति या दर्शन आदि के अध्ययन के लिए इन्होंने संस्कृत पालि, प्राकृत या अपभ्रंश आदि का अध्ययन किया है। इस प्रकार देवनागरी लिपि में पूर्णतः परिचित हैं।
4. इस प्रकार हिंदी, कोंकणी, नेपाली और मराठी जनता के अतिरिक्त अन्य शिक्षित भारतीयों का भी एक अच्छा खासा प्रतिशत धर्म, दर्शन, पुरातत्व, इतिहास,साहित्य,में देवनागरी लिपि रखने के कारण देवनागरी लिपि से पूर्णता अपरिचित नहीं कहा जा सकता।

5. 'भारत से बाहर नेपाल की लिपि भी देवनागरी है।'[10]

6. संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के अध्ययन का मूल आधार होने के कारण भारत के प्रतिनिधि या प्रमुख लिपि के रूप में विश्व के सभी कोनों में कुछ ना कुछ लोग देवनागरी को जानते हैं। प्रमुखता भाषा विज्ञान, दर्शन, प्राचीन इतिहास, भारतीय पुरातत्व एवं संस्कृति आदि के विद्वानों और अध्यताओं में यह काफी प्रचलित है।

राजभाषा हिंदी और राष्ट्र लिपि देवनागरी :-

राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्र लिपि देवनागर के प्रसंग में एक रोशनी उठाना है कि राजभाषा हिंदी का राष्ट्रीय लिपि या अखिल भारतवर्षीय लिपि से क्या संबंध है? 'वस्तुत हिंदी जब राजभाषा है, तो कभी ना कभी सभी भारतीय भाषाओं के नाम (व्यक्तिगत नाम, संस्था नाम, स्थान नाम) इसमें लिखने पड़ सकते हैं। ऐसी स्थिति में जब तक सभी भारतीय भाषाओं की ध्वनियों के लिए नागरी लिपि में लिखे चिन्ह नहीं होंगे, वह सभी नामों को नहीं लिख सकती। इसलिए नागरी का एक अखिल भारतवर्षीय रूप अनिवार्यतरू आवश्यक है, उसे चाहे हम राष्ट्र लिपि कहें या अखिल भारतवर्षीय या परिवर्तित देवनागरी लिपि या कुछ और।'[11]

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लिपि में परिवर्तन करना सरल नहीं है क्योंकि लिपि के माध्यम से ही साहित्य का संरक्षण एवं प्रसारण होता है। लिपि परिवर्तन से साहित्य की अवच्छिन्न परंपरा विछिन्न अथवा खंडित हो जाती है। इस प्रकार की साहित्य आभूषणता किसी को सरलता से स्वीकार नहीं होती। अतः बलपूर्वक अथवा हठपूर्वक देवनागरी में सुधार नहीं लाया जा सकता। ज्यों–ज्यों देवनागरी लिपि के प्रयोग की व्यापकता बढ़ेगी, त्यों–त्यों उसकी एकरूपता एवं स्थाईकरण की आवश्यकता भी बढ़ेगी। आवश्यकता केवल आविष्कार की ही नहीं बल्कि सुधार की भी जननी होती है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2001
2. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2015, पृष्ठ 82
3. कामता प्रसाद गुरु, हिंदी व्याकरण प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ 43
4. संत समीर, हिंदी की वर्तनी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 22
5. डॉ रमेश रावत, भाषा विज्ञान, पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृष्ठ 291
6. डॉ रमेश रावत, भाषा विज्ञान, पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृष्ठ 292
7. डॉ रमेश रावत, भाषा विज्ञान, पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 2005, पृष्ठ 292
8. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2015, पृष्ठ 123,
9. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2015, पृष्ठ 123,
10. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2015, पृष्ठ 124,
11. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिंदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2015, पृष्ठ 157

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 68-71

भगवतीचरण वर्मा कृत उपन्यास 'चित्रलेखा' का फिल्मांतरण : एक समीक्षा

डॉ. वंदना तुकाराम काटे
सहायक प्राध्यापिका, अनंतराव थोपटे महाविद्यालय, भोर।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही सिनेमा ने एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज की है। भगवतीचरण वर्मा जैसे साहित्यकारों ने साहित्य के साथ–साथ सिनेमा को भी संस्कारित करने का प्रयास किया है। भगवतीचरण वर्मा कृत प्रख्यात उपन्यास 'चित्रलेखा' सन् 1934 में लिखा गया है। जिसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें चंद्रगुप्त मौर्य के युग की एक कहानी है। उपन्यास के केंद्र में पाप–पूण्य की समस्या है। हिंदू धर्म में अर्थ, काम और मोक्ष का अलग महत्त्व है। उपन्यास में वर्णित पात्र लौकिक जीवन को अभिषाप मानते हैं और धर्म तथा अध्यात्म को ही मुक्ति का मार्ग समझते हैं। पाप और पूण्य कि व्याख्या को जानने के लिए उपन्यास का पात्र महाप्रभु रत्नांबर अपने दोनों षिष्यों को संसार के भोगी और योगी के पास भेजते हैं। उपन्यास में भोगी के रूप में जीवन व्यतीत करनेवाले पात्र सामंत बीजगुप्त है और योगी के रूप में जीवन व्यतीत करने वाले पात्र साधु कुमारगिरि है।

उपन्यास में महाप्रभु रत्नांबर गुरू के रूप में चित्रित पात्र है। जो अपने शिष्यों द्वारा पुछा गया प्रश्न पाप और पुण्य के व्यवहार को जानने के लिए संसार के भोगी सामंत बीजगुप्त और योगी साधु कुमारगिरि के पास अनुक्रमें श्वेतांक को तथा विशालदेव को भेजते हैं। महाप्रभु रत्नांबर का मानना है कि पाप और पूण्य का अनुभव संसार में रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

महाप्रभु रत्नांबर के मतानुसार जीवन और जगत से वैराग्य पाने वाला व्यक्ति ही पुण्य को ठिक से समझा सकता है और महाप्रभु रत्नांबर के अनुसार योगी कुमारगिरि ने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पाई है, उसे संसारिक सुखों से विरक्ति है। उसने ममत्व को वशीभूत करके यौवन और वैराग्य से अलैकिक शक्ति प्राप्त की है। किंतु जब वास्तविक तौर पर विशालदेव योगी कुमारगिरि के आश्रम में रहता है, तो उसे उसके विपरित ही दिखाई देता है। मृत्युंजय अपनी बेटी यशोधरी की शादी सामंत बीजगुप्त से कराना चाहता था। परंतु सामंत बीजगुप्त पाटलीपुत्र राज्य की राज नर्तकी चित्रलेखा से प्रेम करता था। सामंत बीजगुप्त नर्तकी चित्रलेखा को भूलकर यशोधरा से शादी के लिए राजी हो जाए, इसलिए यशोधरा के पिता मृत्युंजय योगी कुमारगिरि की मद्द लेता है और योगी कुमारगिरि चित्रलेखा को जीवन का सार या मोक्ष का महत्त्व बताता हुआ उसे सामंत बीजगुप्त से अलग करता है। योगी कुमारगिरि उसे समझाते हुए कहता है कि स्त्री अंधकार, मोह, माया और वासना का रूप

होती है और इसी के बीच सामंत बीजगुप्त फँसा होने के कारण यशोधरा से शादी करने से इंकार कर रहा है। वह तुम्हारे यौवन और सौंदर्य के पीछे इतना पागल है कि उसे खुद का और तुम्हारा कल्याण किसमें है, समझ में नहीं आता है। यदि तुम दोनों का कल्याण चाहती हो, तो मेरे साथ चलो। लेकिन चित्रलेखा योगी कुमारगिरि की बातों को न मानकर सामंत बीजगुप्त से रिश्ता बनाए रखती है। एक दिन उसे प्रेम का महत्त्व त्याग में होता है, इसकी अनुभूति यशोधरा के विचारों से होती है और उसकी दासी द्वारा उसका एक सफेद बाल उसके यौवन को चुनौति देता है, तो वह योगी कुमारगिरि की बातों को याद करती है और निर्णय लेती है कि वह योगी कुमारगिरि की शिष्या बनकर उनके आश्रम में आकर जिदंगी बिताएगी। वह सामंत बीजगुप्त से यह वचन लेकर वहाँ से निकलती है कि सामंत बीजगुप्त यशोधरा से ब्याह करके अपने वंश को आगे बढ़ाएगा।

चित्रलेखा जब योगी कुमारगिरि से शिष्या बनाने की विनंती करती है, तो योगी कुमारगिरि इंकार कर देता हैं। किंतु चित्रलेखा योगी कुमारगिरि को जगत कल्याण की बातें समझा कर उनकी शिष्या बनती है। यह सब महाप्रभु रत्नांबर के शिष्य विशालदेव के सामने घटित होता है। धीरे–धीरे योगी कुमारगिरि चित्रलेखा के सौंदर्य की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए झुठ बोलते हैं कि सामंत बीजगुप्त यशोधरा से शादी कर रहा है। यह बात चित्रलेखा से बर्दास्त नहीं होती और वह बेहोश हो जाती है। इसी का फायदा योगी कुमारगिरि उठाकर अपनी वासनापूर्ति करना चाहता है। लेकिन उसके सौभाग्य से उसके साथ कुछ विपरित घटता नहीं और विशालदेव द्वारा यशोधरा और श्वेतांक के विवाह का समाचार उसे मिल जाता है। सचाई ज्ञात होने पर चित्रलेखा योगी कुमारगिरि का आश्रम छोड़कर सामंत बीजगुप्त के पास चली जाती है और योगी कुमारगिरि अपने किए पर पछताता है और आत्महत्या करने के लिए गंगा नदी की तरफ जाते समय उसे सांप दंश करता है। इन घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि योगी किस प्रकार भोगी बन जाता है।

महाप्रभु रत्नांबर के मतानुसार सामंत बीजगुप्त भोगी है। बीजगुप्त के ह्रद्य में यौवन की उमंग है। उसकी आँखों में मादकता की लाली है। मदिरा पाना करना तथा भोगविलास में ही उसे जीवन का सुख मिलता है। बीजगुप्त में सौंदर्य है और उसके ह्रद्य में संसार और जगत की समस्त वासनाओं का निवास है। आमोद और प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है।

'चित्रलेखा' उपन्यास नायिका प्रधान है। चित्रलेखा एक अट्ठारह साल की ब्राह्मण विधवा है। उसके विधवा होने की कथा उसका प्रेम विवाह करना है। पाटलीपुत्र की ब्राह्मण कन्या क्षत्रिय पिता और शुद्र माता का पुत्र कृष्णादित्य से आंतरजातिय विवाह करती है। समाज तथा दोनों के परिवारवालों का विरोध होने के कारण उनका परिवारवालों से रिश्ता टुट जाता है। दोनों को जीवन जीते समय सहारा न होने के कारण दर–दर की ठोंकरे खानी पड़ती है। इन्हीं ठोंकरों के कारण चित्रलेखा का पति कृष्णादित्य आत्महत्या करता है। कृष्णादित्य से चित्रलेखा को संतान प्राप्ति भी हो जाती है। किंतु वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहती। कृष्णादित्य की मृत्यु के बाद विधवा चित्रलेखा को उसके माता–पिता अपनाते नहीं। वह अपना उदरनिर्वाह करने के लिए नृत्य कला का आश्रय लेती है। उसके नृत्य और सौंदर्य की चर्चा चारों ओर फैलती है। इसका पता जब सामंत बीजगुप्त को चलता है, तो वह चित्रलेखा के संपर्क में आ जाता है और दोनों में आपसी प्रेम हो जाता है। सामंत बीजगुप्त के पिता चंद्रगुप्त और यशोधरा के पिता मृत्युंजय बीजगुप्त और यशोधरा का ब्याह कराना चाहते हैं। किंतु बीजगुप्त और यशोधरा के ब्याह में चित्रलेखा बाधा बनती है। योगी कुमारगिरि की मद्द से चित्रलेखा को बीजगुप्त

से अलग किया जाता है। बीजगुप्त चित्रलेखा से दिए हुए वचन के अनुसार यशोधरा से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है।

सामंत बीजगुप्त और चित्रलेखा मदिरापान और यौन क्रीड़ाओं में अपना जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं। तब शिष्य श्वेतांक चित्रलेखा और बीजगुप्त से पाप–पूण्य के बारे में पुछता है और मदिरा पान करना पाप समझता है। परंतु जब बीजगुप्त श्वेतांक को यह समझाते हैं कि जो करके मनुष्य पछताता है, वह पाप है और हम दोनों मदिरापान करके पछताते नहीं, तो वह पाप नहीं है। धीरे–धीरे श्वेतांक भी मदिरापान तथा नारी के संपर्क में आ जाता है। श्वेतांक को यशोधरा से प्रेम होता है। वह सामंत बीजगुप्त को उसके बारे में बताता है। दोनों भी एक ही दिन शादी करने का सोचते हैं, तब श्वेतांक कहता है कि वह मृत्युंजय की बेटी से प्यार करता है और उससे ब्याह करना चाहता। तो सामंत बीजगुप्त को त्याग ही प्रेम का दूसरा नाम है, यह चित्रलेखा द्वारा बताई गई बाते याद आती है और वह चित्रलेखा के इस विचारों के अनुसार सुर्यवंषी श्वेतांक को अपनी सारी संपत्ति और पद देकर पाटलीपुत्र चला जाता है। महाप्रभु रत्नांबर द्वारा भेजा गया शिष्य और उसका व्यवहार उसे योगी से भोगी बनाता है।

सन् 1934 में लिखे इस उपन्यास पर केदार शर्मा जी ने सन् 1941 और सन् 1964 में अनुक्रमें दो बार 'चित्रलेखा' शीर्षक से फिल्म बनाई। सन् 1941 में बनाई फिल्म की पटकथा, संवाद और गीत केदार शर्मा जी ने ही लिखे थे। सिर्फ संगीत उस्ताद झांडे खान और ए. एस. ज्ञानी ने दिया था। फिल्म में योगी कुमारगिरि की भूमिका ए. एस. ज्ञानी ने निभाई और नायिका की भूमिका महताब ने निभाई। यह फिल्म अधिक लोकप्रिय तो न बन सकी किंतु उसके गीत बहुत लोकप्रिय हुए। मूल उपन्यास की कथा के अनुसार तथा केदार शर्मा के अनुभव की कमी के कारण सन् 1941 में बनी 'चित्रलेखा' फिल्म प्रसिद्ध नहीं हुई।

केदार शर्मा ने उसी उपन्यास पर फिर से सन् 1964 दूसरी बार फिल्म बनाई। जिसमें मुख्य कलाकार के रूप में चित्रलेखा की भूमिका मीना कुमारी ने और बीजगुप्त की भूमिका प्रदीप कुमार ने निभाई, तो कुमारगिरि की भूमिका अशोक कुमार ने निभाई। इनके साथ–साथ महमूद, मिन ममताज, जेब रहमान, अचला सचदेव, बेला बोस, नीता आदि दिगज कलाकार इस फिल्म के पात्र बने।

योगी कुमारगिरि अपने स्वार्थ के लिए जब चित्रलेखा से झुठ बोलकर उसे अपनी वासना का शिकार बनाता है और चित्रलेखा को विशालदेव से सचाई मालुम हो जाने पर वह योगी कुमारगिरि का आश्रम छोड़कर चली जाती है। योगी कुमारगिरि अपने किए पर पछताता है और आत्महत्या करने के लिए गंगा नदी की तरफ जाते समय गंगा मैया से प्रार्थना करता है कि उसे वह अपने में समा ले तभी सांप उसे दंश करता है। फिल्म में यह दिखाया है कि सांप के दंश करने के बाद सचमुच गंगा मैया में बाढ़ आती है और योगी कुमारगिरि उसमें समा जाता है, योगी कुमारगिरि के आत्महत्या का प्रसंग उपन्यास में वर्णित नहीं है। यहाँ तक की फिल्म में यह भी दिखाया है कि योगी कुमारगिरि को चित्रलेखा से प्रेम हो जाने पर तथा उसे चित्रलेखा का प्रेम न मिलने पर ग्लानी महसूस करता है, जो कि इसका जिक्र तक उपन्यास में नहीं है।

उपन्यास में बीजगुप्त और यशोधरा की सगाई नहीं हुई है। सिर्फ दोनों के पिता की इच्छा है कि दोनों का ब्याह हो। किंतु फिल्म में संवादों के माध्यम से बताया है कि दोनों की शादी हुई है। जब श्वेतांक चित्रगुप्त के दरबार में पाप और पुण्य का अनुभव करने के लिए आता है, तब वह वहाँ पर यशोधरा को देखता है और

नारी के संपर्क में आने से उसकी स्थिति का जिक्र गीत से फिल्म में वर्णित है। जैसे :–

''लागे मनवा के बीच कटारी,
कै मारा गया, कै मारा गया ब्रह्मचारी।
कैसे जुलमी बनाई तैन नारी,
कै मारा गया ब्रह्मचारी।''

श्वेतांक को यशोधरा से प्रेम हो जाता है। वह इसका जिक्र सामंत बीजगुप्त से करता है। बीजगुप्त श्वेतांक की इच्छा नुसार उसका विवाह उस युवती से कराने का निश्चय करता है और यहाँ तक बताता है कि दोनों एक ही दिन में ब्याह करेंगे। परंतु जब बीजगुप्त को पता चलता है कि श्वेतांक यशोधरा से प्रेम करता है, तो वह अपनी संपत्ति, वैभव और पद त्यागकर वहाँ से चला जाता है। ऐसा वर्णन उपन्यास में नहीं है। उपन्यास की कथा में एक युवा बीजगुप्त और एक सुंदर स्त्री चित्रलेखा प्रेम और त्याग के कारण भोगी से योगी बन जाते हैं, किंतु संन्यासी बनकर नहीं जीते, तो गरीबी का, सामान्य मनुष्य का जीवन जीते हैं।

उपन्यास में चित्रलेखा के विधवा हो जाने की कथा वर्णित है, यह वर्णन फिल्म में नहीं है। फिल्म में सिर्फ चित्रलेखा बीजगुप्त के सामने अपना अतीत बयान इसलिए करती है कि भविष्य में इन बातों के कारण आपसी संबंधों में घृणा पैदा न हो। उपन्यास में चित्रलेखा योगी कुमारगिरि की तरफ आकर्षित दिखाई है। बल्कि फिल्म में ऐसा नहीं है। फिल्म में वह योगी कुमारगिरि के पास बुढ़ापे के भय से तथा अपने मोहजाल से बीजगुप्त को मुक्ति देने हेतु जाती है। उपन्यास में बीजगुप्त मृत्युंजय, यषोधरा और श्वेतांक के साथ वाराणसी जाता है। फिल्म में चित्रलेखा और बीजगुप्त दोनों भी नारी प्रेम को माया का रूप समझकर संसार से विरक्ति चाहते हैं और निराश होकर अंत में पाटलीपुत्र में योगी का जीवन बिताते हैं।

सारांश में उपन्यास कि कथा पाप और पुण्य की खोज से होती है और उसका विकास पाप–पूण्य के निर्धारण से तथा अंत तठस्थता से होता हैं। क्योंकि भगवतीचरण वर्मा के मतानुसार समाज में पाप और पूण्य परिस्थितिजन्य होता है। पांखडी लोग भोगी बनकर भोली जनता को किस प्रकार ठगते हैं इसका जीवंत उदाहरण 'चित्रलेखा' उपन्यास है। फिल्म में जो संन्यासी योगी कुमारगिरि है वह भोगी बन जाता है और जो गृहस्थी सामंत बीजगुप्त है वह संसार को त्यागकर योगी बनता है। नैसर्गिक प्राकृतिक प्रेम का संदेश देने वाली तथा पाखंड का पर्दाफाश करने वाली एक सामाजिक फिल्म सन् 1964 में प्रदर्षित हुई है। जिसका सार इस गीत में है :–

''संसार से भागे फिरते हो,
भगवान को तुम क्या पाओगे।
ये पाप है क्या ?
ये पुण्य है क्या ?
रीतों पर धर्म की मुहरे हैं,
हर युग में बदलते धर्मों को,
कैसे आदर्श बनाओगे।
संसार से भागे फिरते हो।''

Email ID : vkaidrr@gmail.com, Phone No. 9860504985

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 72–75

अनिवार्य कोर पाठ्यक्रम की शिक्षा में आवश्यकता : नई शिक्षा नीति के संदर्भ में

पुनीता, शोधार्थिनी
प्रोफे. सविता श्रीवास्तव
दयालबाग एजुकेशन इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा।

सारांश :-

शोध पत्र शिक्षा जगत के लिए एक मील के पत्थर के भांति कार्य करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र भविष्य में शिक्षा के विभिन्न महत्वपूर्ण उद्देश्यों के लिए अपनी भूमिका का निर्वहन करेगा। शिक्षा बालक के वास्तविक स्वरूप का निर्माण करती है तथा उसे एक सम्पूर्ण मानव बनती है जोकि जीवन की हर परिस्थिति में स्वयं संभाल सकता है। मानव को अच्छा नागरिक बनाने के साथ–साथ जीवन यापन की कला को सिखाने में शिक्षा के अनिवार्य कोर पाठ्यक्रम की अहम भूमिका है जोकि बालकों में शिक्षा के साथ ही कौशलों से अवगत कारयते हैं और उसे कुशल नागरिक बनाने का काम करते हैं। यह शोध पत्र कोर पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों के सम्पूर्ण विकास में सहायता प्रदान करने की बात करता है।

मुख्य बिंदु :- शिक्षा, अनिवार्य कोर पाठ्यक्रम।

प्रस्तावना :-

परिवर्तन के इस युग में मानव जीवन संघर्ष का जीवन बन गया है। आज के समय में जहाँ समाज और परिवेश में प्रतिदिन निरंतर परिवर्तन हो रहा है, वहीं शिक्षा ही वह कुंजी है जो मनुष्य के इस संघर्षशील जीवन को प्रगति के पथ पर ले जा सकती है और सौभाग्य का संचार कर सकती है। शिक्षा का अर्थ वास्तव में समाज में अनुकूल परिवर्तन लाना है। शिक्षा बालक की बुराइयों को दूर कर उसके आंतरिक गुणों को उजागर करती है, जिसके प्रकाश में बालक अपने व्यक्तित्व का विकास करता है तथा समाज को भी लाभान्वित करता है।

शिक्षा :-

शिक्षा बालक के आचरण को निखारती है।यह निखार बालक और समाज दोनों के लिए उपयोगी है। जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ शिक्षा व्यक्ति को मानवता के गुणों एवं नैतिक मूल्यों से भी परिचित कराती है,यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है,किन्तु शिक्षा उन कार्यों को नया आधार प्रदान करती है।

यूनेस्को, 1972 "शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के विकास में योगदान देती है। वह विकास मन, शरीर, बुद्धि,

संवेदनशीलता, मूल्यों एवं आध्यात्मिकता से संबंधित है।"

रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार, 'उच्चतम शिक्षा वह है जो हमें केवल जानकारी ही नहीं देती बल्कि हमारे जीवन को उसके संपूर्ण अस्तित्व के साथ सामंजस्य स्थापित करने में भी मदद करती है और इसका अंतिम लक्ष्य उन लोगों की स्थिति में सुधार करना है जो हाशिए पर हैं।'

अनिवार्य कोर पाठ्यक्रम :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) वह पाठ्यक्रम जो बाल केंद्रित होता है, तथा बालक की अनुकूलतम परिस्थितिओं को देखकर तैयार किया जाता है, जिसमें कुछ अनिवार्य विषय तथा कुछ विषय ऐसे होते है जिन्हे छात्र अपनी क्षमता के आधार पर चुन सकते है, ताकि सभी छात्रों को शिक्षा देकर उनका तथा समाज का विकास किया जा सके।

कोर पाठ्यक्रम छात्रों में मौलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा नैतिक गुणों को प्रवाहित करते हैं जिनकी सहायता से बालक एक सभ्य नागरिक बनता है। शिक्षा में इनका प्रयोग बहुत ही सराहनीय है। वर्तमान समय की आवश्यकता को देखते हुए यह कहना गलत नहीं होगा कि कोर पाठ्यक्रमों द्वारा शिक्षा में मौलिकता तथा नैतिकता को पुनः जीवित किया जा रहा है।

शिक्षा के साथ–साथ संस्कृति विरासत दोनों को एक साथ लेकर आगे बढ़ाया जाता है। मूल्यों को आधार मान कर ही कोर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

कोर पाठ्यक्रम के निर्माण में निम्न बिंदुओं पर ध्यान दिया जाता है :-

1. शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा नैतिक अखंडता।
2. सच्चाई, संयम और साहस की भावना।
3. नम्रता, सादा जीवन, निस्वार्थ सेवा और त्याग।
4. वैज्ञानिक स्वभाव, व्यावहारिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रशिक्षण।
5. अपने हाथों से काम करने की इच्छा और क्षमता।
6. सभी आस्थाओं और आस्थाओं का सम्मान।
7. मनुष्य में भाईचारे की भावना का निर्माण।

अनिवार्य कोर पाठ्यक्रम के अंतर्गत बालकों को अनेक धर्मों, सभ्यताओं, मान्यताओं तथा उनमे समाहित गुणों को पढाया जाता है इसके साथ–साथ जीवन कौशलों से भी अवगत कराया जाता है। परिवर्तन के समय में जीवन जीने की कला से अवगत कराया जाता है। बालक को बताया जाता है कि वह किस तरह बिना किसी को हानि पहुंचाये अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है।

आधुनिक समय में, शिक्षा का मतलब किसी को सलाह देना नहीं माना जाता है, न ही किसी बालक को काल्पनिक दूर के भविष्य को ध्यान में रखकर शिक्षा देना है। आज शिक्षा का उद्देश्य वास्तव में बालक के वर्तमान का निर्माण करना और उसके भावी जीवन में हर स्तर पर बालक का मार्गदर्शन और समर्थन करना है।

अगर हम सामाजिक पहलू को ध्यान में रखते हुए कहें तो शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया की एक अवस्था है जिसका उद्देश्य समाज के सदस्यों को जीवनभर अपने वर्ग में रहने के योग्य बनाना है। आज शिक्षा का मतलब कड़ी मेहनत नहीं है, बल्कि शिक्षा प्राप्त करना एक आनंददायक अनुभव है, बालक को नई चीजें सीखने में मजा

आता है, वही वास्तव में शिक्षा है।

शिक्षा की प्रक्रिया में, पारंपरिक शिक्षा में बालक को एक निष्क्रिय श्रोता के रूप में जाना जाता था, वह शिक्षा प्रणाली निष्क्रिय थी, लेकिन वर्तमान समय में, बालक निष्क्रिय श्रोता के बजाय एक सक्रिय छात्र बन गया है। आज के समय में बालक कई चीजों को खुद करके सीखने में विश्वास रखता है। शिक्षक सहयोगी या मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है, वह पहले की तरह नियम बताने वाली मशीन नहीं है। बालकों के प्रति शिक्षक का व्यवहार कठोर नहीं, बल्कि मित्र की तरह मृदु और सहानुभूतिपूर्ण होता है। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बालक के सामने ऐसी समस्याएं प्रस्तुत करे, जिनका समाधान करने में बालक सक्रिय हो जाए। बालक के जीवन के हर चरण में शिक्षा का अलग महत्व होता है, चाहे वह प्राथमिक स्तर हो, माध्यमिक या उच्च शिक्षा स्तर हो, बालक को हर स्तर पर अलग–अलग क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 :–

शिक्षा मानव के विकास के साथ–साथ सामाजिक कल्याण में भी आवश्यक भूमिका निभाती है चूंकि हमारा संविधान भारत को एक लोकतांत्रिक, न्यायपूर्ण, सामाजिक रूप से जागरूक, सुसंस्कृत और मानवीय राष्ट्र के रूप में परिकल्पित करता है, जहां सभी के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना है।

उचित शिक्षा किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास और आजीविका की स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। चूंकि भारत ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था और समाज की ओर बढ़ रहा है, इसलिए अधिक से अधिक भारतीय युवा उच्च शिक्षा की ओर बढ़ेंगे। 21वीं सदी की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए, शिक्षा का आवश्यक उद्देश्य चिंतनशील बहुमुखी प्रतिभा के साथ रचनात्मक व्यक्तियों का विकास करना होना चाहिए।

शिक्षा एक से अधिक विशिष्ट क्षेत्र स्तर पर अध्ययन को सक्षम बनाती है और चरित्र और नैतिक और संवैधानिक मूल्यों, जिज्ञासा, वैज्ञानिक स्वभाव, व्यक्तिगत उपलब्धि और व्यावसायिक विषयों सहित विभिन्न विषयों में ज्ञान का उत्पादन भी करती है। शिक्षा द्वारा छात्रों को सार्थक जीवन और काम के लिए तैयार किया जाना चाहिए और अधिक स्वतंत्रताके साथ उनको सक्षम करना चाहिए।

निष्कर्ष :–

शिक्षा न केवल एक शैक्षणिक प्रक्रिया है, बल्कि सामाजिक और मानव विकास की मुख्य आधार भी है। शिक्षा न केवल ज्ञान का संचय प्रदान करती है, बल्कि मानवता, नैतिक मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारी की समझ भी प्रदान करती है। 2020 की शिक्षा नीति के क्षेत्र में राष्ट्रीय नीति और उच्च शिक्षा का संदर्भ न केवल यह है कि शिक्षा के उद्देश्य अब तकनीकी या पेशेवर प्रशिक्षण तक सीमित हैं, बल्कि व्यक्तित्व और सामाजिक सुरक्षा के विकास के लिए एक पूर्ण परिप्रेक्ष्य भी हैं। शिक्षण विधियों को अब भी बदला जा रहा है, बालकों के साथ सक्रिय और रचनात्मक छात्रों की क्षमताएं विकसित हो रही हैं। शिक्षक अब सहयोगी हैं और जीवन में बालकों को प्रशिक्षित करने में मदद करने के लिए मार्गदर्शक हैं। इसलिए, न केवल मानव सफलता के लिए, बल्कि राष्ट्र के सामान्य विकास के लिए भी शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची :–

1. सिंह, कुमार अरुण (2015) मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ।

2. गुप्ता (2016) भारतीय शिक्षा का एतिहास, विकास।
3. लाल एण्ड शर्मा 2009 भारतीय शिक्षा का एतिहास, विकास एवं समस्याएं।
4. दयालबाग शिक्षा नीति 1975
5. नई शिक्षा नीति 2020
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

- **https://www.kailasheducation.com/2020/06/samajik-mulya-arth-paribhasha.**
- **https://www.aryaexams.com/2022/04/what-is-core-curriculum.htmlhtm**
- https://hi.sainte-anastasie.org/articles/bienestar/inteligencia-espiritual-la-bsqueda-de-un-propsito-mediante-la-calma-interna.html
- https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%95

puneetachaudhary.india@gmail.com
Puneeta 7060607601, 9456009006

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 76–79

पर्यावणीय आत्मीयता वर्तमान शिक्षा की आवश्यकता

बरखा बेन्स, शोधार्थिनी
प्रोफे. सविता श्रीवास्तव
शिक्षा संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टिट्यूट दयालबाग, आगरा।

मनुष्य एक आश्रित प्राणी है जो किसी न किसी रूप में दूसरों पर निर्भर रहता है। मानव और पर्यावरण का आपस में अटूट संबंध है मानव ही पर्यावरण को स्वच्छ एवं सुंदर बना सकता है। मानव ही वह एकमात्र प्राणी है जो पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा सकता है। मानव अपनी सहूलियत को देखते हुए न जाने कितने ऐसे कार्य कर रहा है जो कि पर्यावरण को हानि पहुंचा रहे हैं। समय के परिवर्तन के साथ–साथ नई–नई बीमारियों का जन्म हो रहा है। जनसंख्या में लगातार वृद्धि द्वारा पर्यावरण को प्रदूषित करने में मानव की प्रमुख भूमिका है। जनसंख्या के बढ़ने से आवास, वस्त्र खाद्य पदार्थों आदि की आवश्यकता भी बढ़ रही है। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य अत्यधिक वनों की कटाई कर रहा है, औद्योगिक क्रांतियां हो रही हैं, दुर्घटनाएं हो रही है, कारखाने का निर्माण, नदियों में प्रदूषण की बढ़ती मात्रा, अत्यधिक रसायनों का उपयोग, औद्योगिक क्रांतियां से वायु प्रदूषण, अम्लीय वर्षा, अत्यधिक वाहनों का उपयोग, यह सब क्रियाएं प्रकृति को हानि पहुंचा रही हैं और हमारा पर्यावरण दिन–प्रतिदिन दूषित होता जा रहा है। यह कहना गलत नहीं होगा कि जितना मनुष्य पर्यावरण को स्वच्छ रखेगा वह उतना ही स्वस्थ रह सकेगा।

पर्यावरण :–

हमारे चारों ओर का वह पर्यावरण जिसमें हम, आप और अन्य सभी जीव–जन्तु जैसे पेड़–पौधे, जानवर आदि रहते हैं, वह मिट्टी जिसमें पेड़–पौधे रहते हैं, जिस जमीन पर हम रहते हैं, जिस पर हम अपना घर बनाते हैं, जिस पानी को हम प्यास लगने पर पीते हैं और जिस हवा में हम सांस लेते हैं, पेड़, पहाड़, रेगिस्तान, तालाब इत्यादि मिलकर हमारे पर्यावरण का निर्माण करते हैं। मनुष्य अपना पूरा जीवन उसी वातावरण में व्यतीत करता है तथा उसी पर्यावरण में अंत में विलीन हो जाता है। इसलिए मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह जिस पर्यावरण में निवास कर रहा है, उसकी रक्षा एवं संरक्षण करे।

विद्वानों द्वारा पर्यावरण का परिभाषिकरण :–

वुडवर्थ के अनुसार : 'पर्यावरण शब्द का अभिप्राय उन सब बाहरी शक्तियों एवं तत्वों से है, जो व्यक्ति को आजीवन प्रभावित करते हैं।'

पर्यावरण केन्द्रित आत्मीयता (Eco-centric affinity) :– पर्यावरण केंद्रित आत्मीयता से तात्पर्य है पर्यावरण के प्रति स्नेह, पर्यावरण केंद्रित स्नेह से तात्पर्य है कि कैसे मनुष्य को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनकर

एक पर्यावरण प्रेमी बनता है तथा पर्यावरण के प्रतिकर्तव्यों का पालन करना सीखता है। वास्तव में मनुष्य और पर्यावरण का संबंध अटूट है जिसके द्वारा ही पर्यावरण मनुष्य जाति के जीवन को सुलभ बनता है और मानव से यह उम्मीद की जाती है कि वह भी पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाए और अपने जीवन को सुरक्षित बनाए। मानव का पर्यावरण के साथ संबंध तथा सकारात्मक व्यवहार ही पर्यावरण के प्रति स्नेह कहलाता है।

पर्यावरण केन्द्रित आत्मीयता का परिभाषिकरण :-

बूथ के अनुसार, (1992) इको–सेंट्रिज्म समग्र रूप से जैविक समुदाय पर ध्यान केंद्रित करता है और पारिस्थितिकी तंत्र संरचना और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को बनाए रखने का प्रयास करता है। इको–केंद्रित का अर्थ है 'जन्मजात उद्देश्य जो पर्यावरण पर केंद्रित हैं।' और आत्मीयता का तात्पर्य 'एक स्नेह' से है। इस प्रकार पर्यावरण–केंद्रित आत्मीयता पर्यावरण या पारिस्थितिकी तंत्र के साथ स्नेह का प्रतिनिधित्व करती है।

पर्यावरणीय नैतिकता के संदर्भ में, एक पर्यावरण–केंद्रित दृष्टिकोण वह है जो मानता है कि पृथ्वी की पारिस्थितिकी और पारिस्थितिक तंत्र (इसके वायुमंडल, जल, भूमि और सभी जीवन रूपों सहित) में आंतरिक मूल्य हैं–अर्थात् उन्हें संरक्षित और महत्व दिया जाना चाहिए, भले ही वे ऐसा कर सकें। इसका उपयोग मानव द्वारा संसाधन के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान अध्ययन में, इको–केंद्रित आत्मीयता को प्रकृति के प्रति प्रेम या स्नेह, प्रकृति से जुड़ा हुआ महसूस करना, प्रकृति में सुरक्षा महसूस करना और प्रकृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में वर्णित करना है।

मानव और पर्यावरण का अटूट संबंध :-

मानव और पर्यावरण का संबंध तो मानव तथा प्रकृति के जन्म से ही हैद्यभारत की तो संस्कृति ही यही है –ऐतरेयोनिषत के अनुसार ब्रह्मांड का निर्माण पांच तत्वओं पृथ्वी, वायु, आकाश, जल एवं अग्नि को मिलाकर हुआ है। हमारे वेदों में भी इन्हीं पांच तत्वों को संतुलित रखने की बात की गई है कि जब–जब इन पांच तत्वों का संतुलन बिगड़ा है तब–तब पृथ्वी पर प्रलय का निर्माण हुआ है। इन तत्वों में किसी भी प्रकार का संतुलन उसके परिणाम स्वरुप सुनामी, ग्लोबल वार्मिंग प्राकृतिक आपदाएं होती है। वेदों में हमारी प्रकृति के प्रत्येक घटक को दिव्य स्वरुप प्रदान किया गया है। हमारे अनेक क्रियो में भी प्रकृति के हर पहलू को देवीय रूप दिया गया है। हम देखते हैं कि जब भी हम अपनी पौराणिक पुस्तकों को पढ़ते हैं तो पाते हैं कि उनमें अग्नि देवता, पृथ्वी मां, जल देवता, वायु देवता आदि तरीकों से इन पांच तत्वों को संबोधित किया गया है।

डॉ. टेलर के मतानुसार, "प्रकृति मानव के लिए एक प्रकार की योजना प्रस्तुत करती है। मानव उस योजना को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। यह योजनाएँ एक प्रकार से सुअवसरों के समान हैं जिन्हें मानव चाहे स्वीकार करे या ठुकरा दे, किन्तु मानव का हित इसी में है कि इन सुअवसरों से लाभ उठाए और अपना पर्यावरण से सुरक्षित संबंध बनाये"।

पर्यावरण सुरक्षा संबंधित योजनाएं :-

पर्यावरण सुरक्षा एवं पर्यावरण में सुधार करने के उद्देश्य से पर्यावरण (संरक्षण अधिनियम (Environment) Protection Act-EPA),1986 भारत सरकार द्वारा अधिनियमित किया गया था। यह अधिनियम केंद्र सरकार को पर्यावरण प्रदूषण को रोकने और देश के विभिन्न हिस्सों में विशिष्ट पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिये अधिकृत करता है।

पर्यावरण सुरक्षा संबंधित योजनाएं :-

पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा अनेक ऐसी योजनाएं चलाई जा रही है जिनसे हमारा पर्यावरण प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। अनेक परियोजनाएं ऐसी हैं जो कि वातावरण को शुद्ध करने का कार्य कर रही है। जिनके द्वारा हमारे पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है उन्हें परियोजनाओं और कानूनी अधिनियम, की सहायता से हमारे वातावरण में हो रहे प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

भारत में पर्यावरण संबंधित उपरोक्त कानूनों का निर्माण उस समय किया गया था जब पर्यावरण प्रदूषण देश में इतना व्यापक नहीं था। काननू व नियम पर्यावरण संरक्षण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इन अधिनियम के अतिरिक्त ऐसी परियोजनाएं चलाई जा रही हैं जो कि पर्यावरण के लिए अनेक रूप से लाभकारी है। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय नदी संरक्षण कार्यक्रम, प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी प्रणालियों के संरक्षण की उप–योजनाएं, राष्ट्रीय वनीकरण कार्यक्रम और हरित भारत मिशन, राष्ट्रीय तटीय प्रबंधन कार्यक्रम, जलवायु परिवर्तन के तहत हिमालयी अध्ययन पर राष्ट्रीय मिशन लागू कर रहा है। भारत सरकार के केंद्रीय क्षेत्र और केंद्र प्रायोजित योजनाओं के तहत कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। राष्ट्रीय वनीकरण कार्यक्रम और हरित भारत मिशन देश में नष्ट हुए वनों और उनके आसपास के क्षेत्रों के पुनर्जीवन में योगदान करते हैं। राष्ट्रीय नदी संरक्षण कार्यक्रम विभिन्न प्रदूषण निवारण कार्यों के माध्यम से नदियों तक पहुँचने वाले प्रदूषण भार को रोककर नदियों के प्रदूषित हिस्सों में पानी की गुणवत्ता में सुधार लाने में सुविधा प्रदान करता है। इस प्रकार यह कहा जाना गलत नहीं होगा कि समय–समय पर हमारे पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जा रहा है। सरकार द्वारा इन कार्यक्रमों को चलाए जाने से जब तक कुछ नहीं होगा तब तक भारत का हर नागरिक अपने पर्यावरण के प्रति स्नेह की भावना को जागृत नहीं करेगा। हमारा पर्यावरण सिर्फ और सिर्फ तब ही सुरक्षित एवं स्वच्छ रह सकता है तब जब भारत का हर नागरिक अपने पर्यावरण के प्रति स्नेह की भावनाओं को जागृत करें और अपने पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें। समय–समय पर अनेक योजनाएं बनाई जाती हैं किंतु वे सफल जब ही होती है तब हर व्यक्ति उन योजनाओं को पूर्ण करने में अपना योगदान देता है।

पर्यावरण केन्द्रित आत्मीयता आज की आवश्यकता है :-

वर्तमान समय में दिन प्रतिदिन हो रहे बदलाव को देखते हुए आज की आवश्यकता है कि हमारी पीढ़ी को हम इस प्रकार तैयार करें वह अपने पर्यावरण के साथ स्नेह की भावना रखें ताकि आने वाले नए युग में पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण किया जा सके। क्योंकि हम जानते हैं कि जब तक हम अपने बालकों को पर्यावरण के प्रति स्नेह की भावना विकसित नहीं करेंगे तब तक भी अपने पर्यावरण को नहीं समझेंगे तथा उसकी सुरक्षा एवं स्वच्छता का ध्यान नहीं रखेंगे। वर्तमान का समय परिवर्तन का समय है परिवर्तन के दौर में दिन प्रतिदिन हो रहे परिवर्तन में हमारे जीवन शैली भी आती है। हमारे जीवन शैली इतनी विलासता पूर्ण हो गई है कि हम अपने पर्यावरण को भूलकर अपनी सहूलियत एवं आनंद पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। हम अपने बालकों को यह बताये कि वह जिंदगी में कुछ ऐसा करें जिससे कि वे अपनी प्रकृति रूपी धरोहर को संभाल कर रख पाए कोई भी ऐसा कृत्य ना करें जिससे कि हमारे वातावरण में प्रदूषण बढ़ और प्रकृति को क्षति पहुंचे। बालकों

को समय–समय पर यह याद दिलाया जाए कि हम अपने पर्यावरण को कैसे स्वच्छ और सुरक्षित रख सकते हैं।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार पर्यावरणीय मुद्दों को उजागर कर सभी समस्याओं का पता लगाकर उनको जड़ से खत्म करना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। हम उन सभी समस्याओं को पहचाने जिनके द्वारा हमारे पर्यावरण को हानि पहुंच रही है। वास्तव में हमारा उद्देश्य भी यही है कि हम पर्यावरण के प्रतिस्नेह की भावना रख अपने पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाए। ताकि आने वाले समय में आने वाली अनेक आपदाएं तथा बीमारियां मनुष्य जाति से दूर रहे और मानव एक स्वस्थ एवं सुरक्षित जीवन यापन कर सके। हमारा उद्देश्य है कि जो कारण पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को खतरे में डाल रहे हैं, और भविष्य की पीढ़ियों के लिए हमारे पर्यावरण, स्वास्थ्य और जीवन को और अधिक नुकसान पहुंचा रहे हैं उनसे बचने के लिए हमारे सामाजिक दायित्वों पर चर्चा की जाए। पर्यावरण से प्रेम करने के लिए प्रेरित किया जाए और उन्हें इतना सक्षम बनाया जाए कि वे दूसरों को पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने से रोक सकें।

7017792936
barkha28071981@gamil.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 80-85

समाज–सुधारक कबीर की स्त्री–विषयक धारणाएं

डॉ० योजना कालिया
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, विवेकानन्द महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

कबीरदास सच्चे महात्मा, ज्ञानी, कर्मठ, समाज–सुधारक, बुराइयों का विरोध करने वाले, स्पष्टवादी, निर्भीक, तपस्वी, सदाचारी और परोपकारी संत थे। उनका जीवन बहुजन हिताय तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनं सर्वे सन्तु निरामया' के महान सिद्धान्तों की पूर्ति था। कबीर युग स्रष्टा और युग पुरूष माने जाते हैं। हिन्दू और मुसलमान उन्हें सम्मान रूप से अपना मसीहा मानते हैं। उस समय भारत में हिन्दू–मुस्लिम–धर्म संघर्ष अपने प्रचण्ड रूप में व्याप्त था। कबीर ने इन दोनों धर्मावलम्बियों के विविध विरोधों को मिटाकर मानवतावाद की स्थापना का प्रयास किया। उसके लिए उन्होनें समाज में व्याप्त जाति–भेद, बाहयाडम्बरों, संकीर्णताओं का खुलकर विरोध किया। ऐसा माना जाता है कि उन्होनें मूल तत्व को पहचान लिया था, परम तत्व की पहचान कर ली थी, सत्य को जान लिया था। उनके ईश्वर, जीव, जगत, माया और मोक्ष संबंधी तर्को को आज भी अकाट्य माना जाता है। उन्होनें एक ओर दार्शनिक चिंतन किया, वहीं भावात्मक रहस्यवाद से संबंधिघ्त उक्तियों की रचना भी की है। कबीर वास्तव में यथार्थवादी संत थे जिन्होंनें विभिन्न रूढियों से ग्रस्त पतनोन्मुखी समाज को जाग्रत करने का कार्य किया। जब हिन्दू और मुसलमान दोनों ही राम और रहीम के नाम पर झगड़ा करते थे कबीर उन्हें सीधे शब्दों में यूं समझाते थे :–

हिन्दू कहै मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमान।
कबीर लड़ि लड़ि दोनों मुये मरम न काहू जाना।।

भाषा पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होंनें जैसा चाहा भाषा को बना लिया, इसीलिए वाणी के डिक्टेटर कहलाए। वह मूलतः अद्वैतवादी थे। उनके अनुसार ब्रह्म ही सत्य है और संसार मिथ्या है। ब्रह्म और जीव एक दूसरे से भिन्न नहीं है अथवा एक ही हैं, ऐसा मानते हुए उन्होनें आत्म–साधना में लीन होने, वैराग्य धारण करने और मिथ्या संसार से दूर रहने का आग्रह किया है। निसंदेह कबीर की सामाजिक चेतना आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कबीर के समय थी, क्योंकि आज भी हिन्दू और मुसलमान समुदायों के बीच सांप्रदायिक विद्वेष बना रहे, ऐसे प्रयोजित प्रयास जारी हैं, ऐसे में कबीर की समन्वयवादी मान्यताएं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पुनः पुनः चर्चित होनी चाहिए इसमें कोई संदेह नहीं, परंतु उनकी नारी विषयक धारणाओं पर एक बार सोचना होगा। उनकी स्त्री–विषयक मान्यताओं की प्रासंगिकता आज कितनी है, यह निष्पक्ष होकर विचार करने योग्य प्रश्न है, क्या कबीरदास की महान छवि के चलते उनकी उन मान्यताओं को यथावत स्वीकार किया जा सकता है? या उनकी उन मान्यताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी संभव है? उनके समय के अनुकूल इन

धारणाओं का कारण क्या था? और आज उन्हें कहां तक मान्यता दी जा सकती है? यह प्रश्न इस लेख का प्रमुख कारण बने हैं। डॉ० मदनलाल शर्मा ने 'कबीरदास' नामक पुस्तक में 'कबीरदास की नारी भावना' शीर्षक लेख में लिखा है "कबीरदास के व्यक्तघ्त्वि में नारी–साधना के लिए तिलभर भी स्थान नहीं था। उनके लिए नारी का सम्पर्क इतना ही क्लष्टि था जितना पानी को मथकर घी निकालना या बालू से तेल निकालना"।

कबीरदास ने स्त्री के कामिनी रूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कामिनी नारी वह होती है, जो कामविमुग्धा होकर पर पुरूष को अपने जाल में फंसाने का प्रयास करती है। वह काम मुग्ध हो, स्वपति की परवाह न करके पर पुरूष को आकर्षघ्ति करती है। ऐसी स्त्री को वह नागिन और मधुमक्खी के समान घातक मानते है :–

कांमणि़ काली नागणीं तीन्यू लोक मंझारि।
राम सने ही ऊबरे विषई खाये झारि।।

कामिनी के साथ ही उन्होंने स्त्री को परनारी–वृत्ति का भी निषेध किया है। पर नारी कामिनी की भाँति स्वयं साधिका नहीं होती बल्कि पर नारी पर पुरूष मुग्ध होता है। पर यहां भी कबीर पर नारी की वृत्ति में ही दोष बताते हैं और मुग्ध पुरूष को उससे सजग रहने की सलाह देते हैं। वह पुरूष को समझाते हैं कि पर नारी तो पुरूष के विनाश का कारण है। भारतीय संस्कृति में साधारण से साधारण व्यक्ति भी इस तथ्य से अवगत है कि परस्त्री वृत्ति में पड़कर रावण भी नहीं बच पाया था :–

परनारी पैनी छुरी मति कोई लागौ अंग।
रावण से जोधा गये पर नारी के संग।।

कबीर परनारी के दूषित स्वभाव को यूं देखते है :–

परनारी राता फिरै चोरी बिढ़ता खाहि।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहि।।
पर नारी पर सुन्दरी बिरला बंचौ कोई।
खाती मीठी खाँड सी अंत काल विष होई।।
धोबी की नाँद की साखि कहा जामैं मैल कटै सबके कपड़ा कौं।

यहाँ पर स्त्री को धोबी की नाँद के समान बताया गया है, जिसमें सभी भले–बुरे लोगों के कपड़े धुलते हैं, और उनका मैल एकत्र हो जाता है।

कबीर की दृष्टि में एक योगी के लिए नारी–प्रेम महापाप है। नारी–प्रेम पुरूष के लिए अत्यंत घातक बताया है क्योंकि नारी के प्रेम–पाश में आबद्ध होने से भक्ति, मुक्ति और ज्ञान, ये तीनों ही अमूल्य रत्न नष्ट हो जाते हैं। इसलिए इन रत्नों की इच्छा रखने वाले पुरूष को नारी का आंचल पूर्णतया त्याग देना चाहिए। उनके अनुसार कनक और कामिनी दोनों ही योग–मार्ग की बाधाएं हैं। ये अग्नि की तरह हैं, जिन्हें देखने से ही शरीर जलने लगता है और यदि इनका स्पर्श किया जाये तो सर्वनाश ही हो जाता है :–

एक कनक अरू कामिनी दोऊ अग्निन की झाल।
देखें ही तन प्रजलै परस्यां हैव पैमाला।।

नारी के आचरण पर आक्षेप करते हुए कबीर कहते हैं दुराचारिणी नारी संसार की जूठन की तरह है। जो

उत्तम व्यक्ति होते हैं वे ऐसी नारी से दूर रहते हैं जबकि नीच प्रवृत्ति वाले उसके निकट रहते हैं :–

जोरू जूठणि जगत की भले बुरे का बीच।
उत्तम ते अलगे रहैं निकट रहैं तें नीच।।

कबीरदास नारी को नर्क का कुण्ड बताते हैं, जिससे कोई बिरला ही बच सकता है।

नारी कुण्ड नरक का बिरला थम्भै बाग।
कोई साधु जन ऊबरै सब जग मूवा लाग।।

वह नारी को माया मानते हैं जो कि महाठगिनी है। वह त्रिगुण का फंदा लेकर घूमती है। उसकी वाणी बड़ी मधुर है, प्रभावशालिनी है। वह मोह है, काम है, क्रोध है, लोभ है और अहंकार भी है। जिस किसी ने भी नारी को अपनाया है, वही सकाम है :–

माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिए कर डोलै, बोलै मधुरी वाणी।।

कबीर के समय में परिवार में भी स्त्री को दूसरी श्रेणी की नागरिक ही स्वीकार किया जाता था, जिसे यौन–शुचिता, पातिव्रत्य, सतीत्व जैसे हथियारों का प्रयोग कर घर की चार दीवारी में रखा जाता था। मध्यकाल के सारे कवि ईश्वर के उपासक हैं तथा उसमें उनकी अटूट आस्था है। यह सारे कवि लोक की पीड़ा को शिद्दत से महसूस करते हैं। समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों को संत कवि तोड़ते हैं तथा उसे पुर्नयारव्यायित भी करते हैं लेकिन स्त्री पराधीनता के एजेण्डे को छोड़ देते हैं। कबीर की तरह तुलसीदास के यहाँ भी हमें उनका नारी–निंदक दृष्टिकोण दिखाई देता है। उनके अनुसार :–

जप तप नेम जलाश्रय झारी।
होई ग्रीष्म सोषइ सब नारी।।

अर्थात् स्त्री जप, तप, नियमरूपी सम्पूर्ण जल को ग्रीष्म बनकर सोख लेती है। वे स्त्री को दीपशिखा के समान तथा पुरूष को पतंगे की तरह देखते हैं :–

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।

यहाँ दीपशिखा केवल पुरूष रूपी पतंगें को जलाने के लिए ही क्यों है? वह अपने सहज प्रतीक रूप 'ज्ञान का प्रकाश' या 'चेतना' के रूप में क्यों प्रयुक्त नहीं हुई। कबीर और तुलसी का नारी–निंदक वाला दृष्टिकोण लगभग एक जैसा है। यद्यपि यह भी सत्य है कि जब तुलसी स्वपीड़ा और लोक की वेदना से पीड़ित होते हैं तो मध्यकालीन स्त्री की वास्तविक दशा का चित्रण करते हैं और इसी प्रकार कबीर जब आत्म–परमात्म चिंतन की विरह वेदना से व्याकुल होते हैं तो प्रत्येक जगह स्त्री का रूप धारण कर लेते है। इस संदर्भ में पुरूषोत्तम अग्रवाल की टिप्पणी द्रष्टव्य है– "स्त्री के प्रति आकर्षण को साधक की सबसे बड़ी समस्या मानना, स्त्री के प्रति आकर्षण से साधक को विरत करने के लिए स्त्री मात्र को भयावह और तिरस्कारणीय छवि देना, उसकी छायामात्र से भुजंग के अंधे हो जाने का बयान करना और दूसरी तरफ साधना के गहनतम धरातल पर नारी की वाणी बोलने लगना, प्रेम के समूचे प्रसंग को नारी की निगाह से देखने लगना, मिलन की आतुरता और विरह की व्यथा को स्त्री की तरह महसूसना कबीर की काव्य संवेदना की यह फाँक गौर–तलब है"।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि कबीर की स्त्री–विषयक इन धारणाओं के पीछे क्या कारण हो सकते हैं। यदि

उनके व्यक्तिगत जीवन पर नजर डालें तो ज्ञात होता है इनके जीवन के विषय में अनेक दंतकथाएं प्रचलित हैं। कहते हैं कि उनका जन्म स्वामी रामानंद के आशीर्वाद के परिणामस्वरूप एक विध्वा ब्राहम्णी के गर्भ से हुआ था जिसने लोक–लाजवश पैदा होते ही इनका त्याग कर दिया। यूं मां द्वारा त्यागे जाने की घटना ने भी कबीर के हृदय में किसी विष बेल का बीज अवश्य ही डाला होग। तत्पश्चात् नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपति ने इनका पालन–पोषण किया। जिसमें उनके पिता एक बड़े गोंसाई थे और उनके प्रति कबीर के मन में बड़ा आदर था। दूसरी ओर कबीर की मां कबीर से बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं थी। जब कभी कबीर संतों का सत्संग करते थे, वे कबीर का तिरस्कार करती थीं। कबीर का घड़े में गंगा जल लाना और उसे घर में सींचना मां को जरा भी अच्छा नहीं लगता था। इसी प्रकार माला पर प्रभु राम के नाम का जाप करना उनके दुःख का करण था क्योंकि उनके कुल में किसी ने कभी राम का नाम लिया ही नहीं था। जब कबीर ने अपना व्यवसाय–तनना और बुनना छोड़ दिया तब तो उनके दुःख की सीमा ही नहीं रही।

तनैनां बुननां तज्या कबीर,
राम नाम लिखि लिया शरीर।।
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै राम सनेह।।
ठाढी रोवै कबीर की माई, ए लरिका क्यूं जीवै खुदाई।
कहे कबीर सुनहूं री माई, पूरणहास त्रिभुवन राई।।

भाव यह कि कबीर की माता को कबीर के आचार–विचार पर घोर मन–स्ताप है। माता के इसी विरोध से कबीर के मन में यह बात घर कर गई होगी कि ईश्वर प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा यदि कोई है तो वह स्त्री है। तत्पश्चात् पत्नी के रूप में लोई भी कबीर से उनके इसी स्वाभाव के कारण रूष्ट बतायीं जातीं हैं :–

तूटे तागे निखुटी पानि। द्वार ऊपर झिलिकावहि कान।
कूच विचारे फूए फाल। या मुंडिया सिर चढ़िबो काल।।
इहु मुंडिया सग लो द्रबु खोई। आवत जात ना कसर होई।
तुरी नारि की छोड़ी बात। राम नाम बाका मन राता।।

इस पद से ज्ञात होता है कि लोई कबीर की भक्ति पर बहुत अप्रसन्न है। वह कहती है कि पानी सूख जाने पर करघे का धागा टूट–टूट निकल जाता है परंतु कबीर इसकी परवाह न कर कान हिलाता हुआ सन्यासियों के स्वागत के लिए बाहर निकल जाता है। नमी में पड़े रहने के कारण कूंचा फूल गया है और उस पर फफूंदी चढ़ गई है। यह मुंडिया (सन्यासी) कबीर जीविका चलाने की चिंता नहीं करता और मालूम होता है कि इसके सिर पर काल नाच रहा है, इस मुंडिया कबीर ने सारा धन सन्यासियों के ऊपर लगा दिया और तिस पर भी उनके आने–जाने में कोई कमी नहीं आई। परिवार के लोग तो दाने–दाने को मुहताज हैं और सन्यासियों का आना–जाना अनवरत जारी है। लोई की इन कटुक्तध्यिों को सुनकर कबीर ने उसे विवेकहीन तथा निष्ठुर कहा है।

एक अन्य पद में कबीर अपने दो विवाहों का उल्लेख भी करते हैं। संभव है पहली पत्नी से पारिवारिक जीवन सुखी न होने के कारण कबीर ने दूसरा विवाह किया हो कालान्तर में पहली पत्नी ने किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह कर लिया हो। अपनी पहली पत्नी के विषय में कबीर कहते हैं :–

पहिली कुरूपि कुजाति कुलखनी, साहुरै पेईअै बुरी।
अब की सरूपि सुजाति सुलखनी, सहजै उदरि धरी।।
भली सरी मुई मेरी पहिली बरी।
जुगु जुगु जीवउ मेरी अब की घरी।।

यह ध्यातव्य है कि पहली वाली जिसकी मृत्यु से कबीर संतुष्ट दिखाई देते है एक स्त्री है और दूसरी भी जिसके जुग–जुग जीने की कामना वह कर रहे हैं वह भी स्त्री ही है। इससे स्पष्ट है कि कबीर की दृष्टि में वही स्त्री अच्छी पत्नी हो सकती है जो मृदुभाषी, सुंदर, सचरित्र और सर्वगुण सम्पन्न हो। परंतु डॉ० मदनलाल शर्मा ऊपर वर्णित कबीर की वैवाहिक स्थिति को अस्वीकार करते हैं, "हमारा स्पष्ट मत यह है कि कबीर दास का न तो विवाह ही हुआ था, न उनकी कोई 'लोई' नाम की पत्नी थी। यह सब क्षेपक हैं और विश्वसनीय नहीं हैं।" आगे वह कहते हैं कि "हम यह विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि कबीरदास ने किसी भी 'लोई' नाम की स्त्री से विवाह नहीं किया था–वह तो पति था, योगी था, संयमी और सदाचारी था। वह भली प्रकार जानता था कि एक योगी के लिए नारी विष–तुल्य है। अतरू वह स्वयं तो नारी से दूर था ही, अन्य योगियों को भी नारी के सम्पर्क से दूर रहने की शिक्षा, प्रेरणा और उपदेश देने का सतुत्य कार्य भी कबीरदास ने किया है।"

चलिए मदनलाल शर्मा जी के इस मत को भी हम मान लेते है कि कबीर दास का विवाह नहीं हुआ था, परंतु इससे उनकी स्त्री–विषयक मान्याताएं तो नहीं बदल सकती। नारी के विषय में स्थान–स्थान पर उन्होंनें जो कटु वचन कहे हैं उनका कारण क्या है? यद्यपि डॉ० सुन्दरलाल शर्मा इस तथ्य को भी अस्वीकार करते हैं कि कबीर स्त्री–विरोधी थे, "कबीर को नारी जाति से घृणा नहीं थी। उन्हें तो केवल नारी के अकाट्य और मोहक प्रभाव से अरूचि थी, जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं बच सके हैं।"

वास्तव में कबीर पर नाथ–पंक्तियों की साधना–वृति का पूर्ण प्रभाव था। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ इत्यादि अन्य योगियों का भी स्त्री के विषय में यही मत था। इन्हीं सन्तों और योगियों की भाँति ही कबीर 'सती' नारी का सर्वथा सम्मान करते हैं :–

सती जलन कूं नीकली पीव का सुमरि सनेह।
सबद सुनत जीव नीकल्या भूलि गई सब देह।।

कबीर ऐसी स्त्री को महान और सम्मान योग्य मानते हैं जो प्रेम, धर्म और आदर्श पर अपना तन और मन न्यौछावर कर देती है, जो प्रियतम के बिना एक क्षण भी अपने पार्थिव अस्तित्व को रखना हेय समझती है। जो अपने मृतक पति के साथ सहर्ष जीवित जल जाती है। ऐसी पतिव्रता धर्म परायण सती का रूप और तेज अनूप है। वह किसी भी योगी से कम नहीं होती।

कबीर पर सूफी मत का भी पर्याप्त प्रभाव था। सूफी–मत के जिन तत्वों से संत–समाज प्रभावित था वह इस प्रकार माने जाते हैं :–

आचार की पवितत्रता। सुफ (उनकी भांति) पवित्र जीवन जिस पर आध्यात्मिकता का पूर्ण रंग उभर सके।

प्रेम और उसकी मादकता जिससे प्रतीकों के माध्यम में रहस्यवाद की अवतारणा हो सके।

माया का मानवीकरण जो शैतान के समकक्ष ही है। जिस प्रकार शैतान बन्दे को रास्ते से हटाकर इन्द्रियाशक्ति की ओर ले जाता है, उसी प्रकार माया भी भक्त को ईश्वरीय प्रेम से हटाकर संसार के क्षणिक

आकर्षणों के जाल में फंसा देती है। संत–संप्रदाय में भी माया अद्वैतवाद की माया की माया की भांति भ्रमात्मक और मिथ्या तो है ही किन्तु इसके अतिरिक्त वह सक्रिय रूप से जीव को सत्पथ से हटाने वाली भी है। इस दृष्टि से सनत सम्प्रदाय में माया का मानकीकरण है। यह मानकीकरण स्त्री के रूप में, जो ठगिनी है, डाकिनी है, सबको खाने वाली है। सम्भवतः यह सूफीयत के शैतान का ही प्रतिरूप है।

यदि कबीर की इस मानसिकता के पीछे तत्कालीन समाज को भी कारण माना जाए, जिसका संकेत डॉ० के. एम. अशरफ की पुस्तक 'हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ' में यूं किया गया है – "स्त्रियों के कार्य एवं उनकी स्थिति विशेष रूप से अधीनस्थ रही है और कालांतर में पुरूष की सेवा और जीवन के प्रत्येक चरण में उस पर निर्भर रहना ही क्रमशः उसके कार्य और स्थिति माने जाने लगे। वह पुत्री के रूप में अपने पिता के संरक्षण में और विधवा के रूप में अपने ज्येष्ठ पुत्र की देख–रेख में रहती थी।" तो क्या एक समाज–सुधारक कबीर को इन मान्यताओं को जस की तस मानकर इना समर्थन करने का अधिकार मिल जाता है?

अपने समय के मार्गदर्शन के रूप में प्रसिद्ध क्यों स्त्री की इस स्थिति का विरोध नहीं कर पाए? स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में इन सब में कुछ भी अन्याय जैसा था ही नहीं। परिणामतः कहा जा सकता है कि मध्यकालीन बोध का स्त्री–विषयक प्रभाव कबीर पर बहुत था, क्योंकि यदि सूर अपनी गोपियों को प्रश्न–उत्तर का अधिकार उसी काल में दे सकते थे, मीरा खुलकर विरोध जानने की सामर्थ्य रखती थीं तो फिर कबीर क्यों नहीं? ऐसा में वर्तमान तक भी स्त्रियों को अपने अस्तित्व की जो लड़ाई जारी रखनी पड़ रही है, उसके कारण के रूप में कुछ अंश कबीर की इस दृष्टि का भी है, इस बात में मुझे तनिक भी संदेह नहीं। उन पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि उन्होनें "आधी दुनिया" को नजरअंदाज करके पुरूष–मुक्ति का ही प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रथ :–

1. लौह पुरूष कबीर – श्रीमती सुशीला सिन्हा।
2. कबीररू एक अनुशीलन – डॉ० रामकुमार वर्मा।
3. कबीर ग्रन्थावली – डॉ० श्याम सुंदर दास।
4. कबीर दास – डॉ० मदनलाल शर्मा।
5. स्त्री समय – संकल्पनापंत।
6. कबीर का सहज दर्शन – प्रो० जयबहादुर लाल।

दूरभाष 9540932431

ईमेल– yojnakalia73gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 86-91

पृथ्वीराज रासो के महत्वपूर्ण तथ्य

श्रीमती सुमित्रा
एम. ए. नेट हिन्दी

सार :-

पृथ्वीराज रासो हिंदी भाषा में हिंदी का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है जिसमें सम्राट पृथ्वीराज चौहान के जीवन एवं चरित्र का वर्णन किया गया है। इसके रचयिता चंद्रवरदाई पृथ्वीराज के बचपन के मित्र एवं उनके राजकवि के रूप में दरबार में थे। और उनकी युद्ध यात्रा के समय वीररस की कविताओं से सेना को प्रभावित किया करते थे। 1165 से 1192 के बीच पृथ्वीराज चौहान का राज्य अजमेर से दिल्ली तक फैला हुआ था। पृथ्वीराज रासो और पृथ्वीराज काव्य के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था। पृथ्वीराज रासो एक बहुत विस्तृत लगभग 2500 पृष्ठों का एक ग्रंथ है, जिसमें 69 समय (अध्याय, सर्ग) है। इसमें प्राचीन समय में प्रचलित सभी छंदों का प्रयोग व्यवहार में हुआ था। मुख्य छंद कवित्त दुहा तोमर, गोत्र त्रोटक गाहा और आर्या। पृथ्वीराज रासो के पिछले भाग का चंद के पुत्र जल्हण भट राव द्वारा पूर्ण किया गया। रसों के अनुसार जब शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया तब कुछ दिनों के बाद चंद भी वहाँ गए और जाते समय अपने पुत्र जल्हण के हाथ में रासो की पुस्तक देकर उसे पूर्ण करने का संकेत दिया। पृथ्वीराज की किसी कवि के रूप में रचना में होने में दिए हुए सवतो से मेल न होने के कारण अनेक विद्वान संदेह करते है। इस ग्रंथ की सबसे पुरानी प्रति बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में मिली हैं, जिनमें कुछ तीन प्रतियाँ है। रचना के अंत में पृथ्वीराज द्वारा शब्दवेधी बाण चलाकर गौरी को मारने के बाद कही गयी हैं।

परिचय :-

चंद्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो रासक परंपरा का एक काव्य है। दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं को लेकर लिखा गया यह एक हिंदी का ग्रंथ है। पहले यह काव्य एक ही रूप में हिंदी जगत से परिचित था। इसके ग्यारह रूपक आते हैं। इसका एक छोटा रूप मिला, जिसमें रू. 3500 रुपक थे। एक और कुछ प्रतियों में मिला, जिसमें 1200 से अधिक रूपक नहीं थे। बाद में दो प्रतियाँ और मिली, जिसमें चार सौ व साढ़े पांच सौ रुपक थे। कुछ विद्वानों ने भिन्न मत प्रकट किया। घटना का छोटा रूप भी अनैतिहासिकता से मुक्त नहीं रहता। एक विद्वान ने 1955 में पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार संबंध शीर्षक लिखकर यह बताया कि पृथ्वीराज और उनके विपक्ष के बलाबल को सूचित करने वाली जो संख्या रचना के तीन पाठों में बृहत मध्यम व छोटे में मिलती है, उसमें समानता नहीं है। यदि यह पाठ बृहद मध्यम लघुलघुतम क्रम में विकसित होते तो यह संक्षेप क्रिया के कारण बलाबल सूचक संख्या में कोई अंतर नहीं मिलता। श्रृंखलाए

लघु, मध्यम व बृहद क्रम में ही उत्तरोत्तर अधिकाधिक टूटी है और बीच बीच में इसी क्रम से अधिकाधिक छंद व प्रसंग प्रक्षेपाकर्ताओं के द्वारा लिखा गया।

पृथ्वीराज रासो के रचयिता कवि चंदबरदाई का वास्तविक नाम पृथ्वी भट्ट था। शुक्ल चंद हिंदी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं इनका पृथ्वीराज रासो हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। पंडित हरप्रसाद शास्त्री चंदरबरदाई का जन्म लाहौर में हुआ मानते हैं जबकि शुक्ल ने इनका जन्म 1168 ईस्वी में माना है। तथा लिखा है कि" रासो के अनुसार यह भट जगत गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब में थी, जिसमें लाहौर में उसका जन्म हुआ था। शुक्ल ने हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्राप्त चंद का एक वंशवृक्ष प्रस्तुत किया। वह वंशवृक्ष शास्त्री जी को नानूराम भाट से प्राप्त हुआ था, जो स्वयं को चंद का वंशज मानता था। चंद के चार पुत्र थे, जिसमें चौथा पुत्र जल्हण था, जिसने पृथ्वीराज रासो महाकाव्य को पूर्ण किया था।

पृथ्वीराज रासो के संस्करण :-

बृहद संस्करण :-

इसका प्रकाशन नागरिक प्रचारिणी काशी में हुआ था। इसकी हस्तलिखित प्रति उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। समा ने 1585 ई. लिखित प्रतियों के आधार पर संपादन करवाया, जिसमें। 69 समय (अध्याय सर्ग) तथा 16,306 छंद है।

द्वितीय संस्करण :-

द्वितीय संस्करण में 7000 छंदों थे। लेकिन इसका प्रकाशन नहीं हुआ। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अबोहर के साहित्य सदन तथा बीकानेर के जैन ज्ञान भंडार में सुरक्षित है। यह 17 वीं सदी में रचित है।

तृतीय संस्करण :-

इसमें 3500 छंद तथा 19 समय है, जिसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित है।

चौथा संस्करण :-

इसमें 1300 छंद है डॉ. दशरथ शर्मा इसे ही मूल व प्रमाणिक रासो मानते है।

पृथ्वीराज रासो के समय का विवरण :-

पृथ्वीराज रासो में 69 समय बताया गया है जिनका वर्णन सुमन राजे ने चंद्रवरदायी शीर्षक रचना में पृथ्वीराज रासो के 69 समय का विवरण निम्न प्रकार से दिया है।

* प्रथम समय :– ढूंढा दानव की कथा, पृथ्वीराज का दिल्ली में जन्म और अजमेर लाए जाने की कथा, कवि पत्नी का प्रश्न, हरिकथा वर्णन करने का वायदा।
* दूसरा समय :– दशावतार वर्णन।
* तीसरा समय :– ढिल्ली– किल्ली कथा।
* चौथा समय :– लोहाना आजानबाहु का पराक्रम।
* पांचवां समय :– आखेट में वीरों का वशीकरण।
* सातवां समय :– नाहर राय की कन्या से विवाह युद्ध।
* आठवां समय :– मेवाती मुगल कथा।

* नवां समय :– गौरी से बेर होने का कारण युद्ध।
* दसवां समय :– गौरी की द्रोहाग्नि।
* ग्यारहवां समय :– चित्ररेखा की उत्पत्ति।
* बारहवाँ समय :– भोला राय, भीम देव द्वारा शिवपुरी जलाने का वर्णन, पृथ्वीराज का युद्ध, भीम की पराजय।
* तेरहवां समय :– दूसरी तरफ से गौरी का आक्रमण पृथ्वीराज की विजय।
* चौदहवाँ समय :– इंछिनी से पृथ्वीराज का विवाह।
* पंद्रहवां समय :– विवाह के बाद लौटते हुए पृथ्वीराज पर मेवात के मुगल के युद्ध का निर्णय।
* सोलवां समय :– दंपति सुख पुंडीरी दाहिमी विवाह की चर्चा।
* सत्रहवाँ समय :– पृथ्वीराज के कुमारावस्था की मृगया का वर्णन।
* अठारहवाँ समय :– अनंगपाल के दिल्ली दान की कथा।
* उन्नीसवां समय :– गौरी के माधो भाट की कथा।
* बीसवां समय :– पद्मावती विवाह कथा।
* इक्कीसवां समय :– रावल समरसिंह से पृथा का विवाह।
* बाइसवां समय :– होली कथा।
* तेईसवां समय :– दीपावली कथा।
* चौबीसवां समय :– सट्टा वन आगे, भूमि से धन प्राप्ति।
* पच्चीसवाँ समय :– पृथ्वीराज का शशीव्रता से विवाह।
* छब्बीसवां समय :– शशीव्रता का उपसंहार।
* सताइसवां समय :– देवगिरी विजय के पश्चात आगमन।
* अट्ठाईसवां समय :– अनंगपाल का वापस लौटना युद्ध पुनः गमन।
* उनतीसवां समय :– आषेट, छघ्घर नदी युद्ध।
* तीसवां समय :– कर्नाट देश पर चढ़ाई।
* इकतीसवां समय :– देवास और धार पर चढ़ाई की मंत्रणा।
* बत्तीसवां समय :– मालवा में मृगया।
* तेतीसवां समय :– इंद्रावती से विवाह।
* चौंतीसवां समय :– खट्टू बन में मृगया।
* पैंतीसवां समय :– कांगड़ा युद्ध राजा भान की पुत्री से विवाह।
* छत्तीसवां समय :– रणथंबोर की हंसावती से विवाह।
* सैंतीसवां समय :– गौरी से युद्ध।
* अड़तीसवां समय :– चंद्र ग्रहण स्नान।
* उनतालीसवां समय :– सोमेश्वर युद्ध।
* चालीसवाँ समय :– भीम युद्ध।

* इकतालिसवां समय :– जयचंद की प्रेरणा से गौरी का आक्रमण।
* बियालिसवा समय :– चंद द्वारिका गमन।
* तेतालिसवां समय :– गौरी से युद्ध।
* चवालिसवां समय :– भीम वध।
* पैंतालीसवां समय :– देवलोक की वर्षा।
* छियालीसवां समय :– संयोगिता जन्म।
* सैंतालिसवां समय :– पृथ्वीराज से पुर्वानुराग।
* अडतालिसवां समय :– जयचंद का राजसूय यज्ञ विध्वंस।
* उनचासवाँ समय :– जयचंद की युद्ध की योजना।
* पचासवां समय :– पंग और चौहान का युद्ध वर्णन।
* इक्यावनवां समय :– हांसी युद्ध विजय।
* बावनवां समय :– गौरी का आक्रमण तथा पराजय।
* तिरपनवां समय :– महुआ युद्ध, गौरी से युद्ध।
* चोपनवां समय :– पजून से बदला लेने के लिए गौरी का आक्रमण।
* पचपनवां समय :– आषेट, जयचंद्र से युद्ध।
* छप्पनवां समय :– जयचंद और रावल समरसिंह का युद्ध।
* सतावनवां समय :– कैमासवध की कथा।
* अट्ठावनवां समय :– दुर्गा केदार से चंद का वाद विवाद, गौरी का आक्रमण और पराजय।
* उनसठवां समय :– पृथ्वीराज का दरबार एवं वैभव वर्णन।
* साठवां समय :– संयोगिता के प्रेम और पृथ्वीराज की प्रतिमा को तीन बार माला पहनाए जाने की सूचना।
* इकसठवाँ समय :– पृथ्वीराज का छद्मवेश में चंद और सौ सामंतों के साथ कन्नौज गमन, संयोगिता हरण जयचंद से युद्ध 64 सामंतो का खेत रहना, पृथ्वीराज का सकुशल संयोगिता सहित दिल्ली पहुंचना।
* बासठवां समय :– पृथ्वीराज संयोगिता संयोग वर्णन।
* तिरसठवां समय :– पृथ्वीराज को ऋषि सांप।
* चौसठवां समय :– पृथक महल में संयोगिता के साथ निवास, विश्वासपात्र द्वारपालों की नियुक्ति, पृथ्वीराज का विलास में डूबना।
* पैसंठवांई समय :– पृथ्वीराज की रानियों का वर्णन।
* छाछठवां समय :– रावल समरसिंह के स्वप्नो द्वारा दिल्ली के पतन की पूर्व सूचना।
* सरसठवां समय :– गौरी का आक्रमण, पृथ्वीराज की पराजय, बंदी बनाकर गजनी ले जाना, वहाँ अंधा करने और चंद के पहुंचने की कथा है। अंत में दोनों मित्र आत्मघात करते हैं। गौरी का वध दिखाया गया है।
* सडसठवाँ समय :– पृथ्वीराज के पुत्र रैनसी को गद्दी पर बैठाया जाना। गौरी के सेनानियों का आक्रमण।
* उनहतरवां समय :– रैनसी का साका करके वीरगति प्राप्त करना कर्मानुसार अंतिम होने पर भी इसकी

कथा पूर्व की है। इसमें महोबे के राजा परमार से युद्ध का वर्णन है। कथा ऐतिहासिक रूप से प्रमाणिक हैं, पर विद्वानों की दृष्टि से रचना संदिग्ध है।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता :-

यह आदि काल का स्वरूप श्रेष्ठ महाकाव्य है, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से यह सर्वाधिक विवादास्पद भी है। प्रामाणिकता में डॉक्टर श्याम सुंदर दास, मोहन लाल, विष्णु लाल पांडे मिश्रबंधु, कर्नल टॉड, मोतीलाल मनेरिया, शार्सा द तासी आदि प्रमुख विद्वान मानते हैं कि पृथ्वीराज रासो का संस्करण। काशीना प्रकाशित हुआ और यह प्रामाणिक है। जबकि अप्रमाणिकता में कवि राजा श्यामल दास, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा, डॉक्टर वूलर, देवी प्रसाद मुंशी शुक्ल आदि हैं। इन विद्वानों ने रासो को सर्वदा एवं अप्रामाणिक घोषित किया है। शुक्ल, श्यामल दास ओझा आदि के अनुसार प्रारंभ में यह ग्रंथ विवादास्पद नहीं था। कर्नल टॉड ने इसकी वर्ण शैली तथा काव्य सौंदर्य पर शोध करके लगभग 30,000 छंदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। अभी इसकी प्रमाणिकता को संदिग्ध नहीं माना है। किंतु 1885 में डॉक्टर वूलर ने पृथ्वीराज विजय जयानक कृत ग्रंथ की आधार पर इसे अप्रमाणिक सर्वप्रथम घोषित किया था। बाद में कवि राजा श्यामल दास मुरारीदान, ओझा ने अप्रामाणिक सिद्ध करने हेतु तर्क जुटाए किंतु इन विद्वानों के तर्को का निराधार सिद्ध करने का सर्वप्रथम प्रयत्न डॉक्टर दशरथ शर्मा ने किया था।

तीसरे वर्ग के विद्वान :- मुनि, जिनविजय, सुनीति कुमार चटर्जी, अगर चन्द नाहटा, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉक्टर दशरथ शर्मा आदि का मानना है कि चंद ने पृथ्वीराज रासो लिखा था किन्तु उनका मूल स्वरूप आज उपलब्ध नहीं है।

चौथे मत के विद्वानों के अनुसार नरोत्तम दास स्वामी जो यह मानते हैं कि चंद ने पृथ्वीराज के दरबार में रहकर मुक्तक रूप पृथ्वीराज रासो की रचना की, यह मूल के प्रबंध काव्य नहीं था।

पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वान :-

कवि राजा श्यामल दास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉक्टर वूलर, देवी प्रसाद मुंशी, रामचन्द्र शुक्ल आदि है।

* पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता के तर्क निम्नानुसार है।
* रासो में उल्लेखित घटनाओं और नाम इतिहास से मेल नहीं खाते हैं।
* इसके परमार चालुक्य चौहान क्षत्रीयों को अग्नि वंशीय माना गया है, जबकि वे सूर्यवंशी प्रमाणिक हुए हैं।
* पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना, संयोगिता स्वंयवर आदि घटनाएं काल्पनिक आश्रित हैं।
* अनंदपाल पृथ्वीराज तथा बीसलदेव के राज्यों के संदर्भ में भी अशुद्ध है।
* पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह मेवाड़ राणा समरसिंह के साथ बताया गया है जो ऐसे असत्य और निराधार हैं।
* पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूरी देवी था, जो रासो में कमला बताया गया यह तथ्य भी अप्रमाणिक है।
* रासो में पृथ्वीराज के 14 विवाह का उल्लेख है, जो पूर्णतया गलत है।
* पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीम सिंह का वध करना बताया गया है जो अप्रामाणिक है।
* पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध करना बताया गया जो कि गलत है।
* पृथ्वीराज के हाथों गौरी की मृत्यु की सूचना दी अशुद्ध व अप्रमाणिक है।

* पृथ्वीराज रासो में दी गई तिथियां भी अशुद्ध है जो इतिहास की तिथियों से लगभग 90–100 वर्षों का अंतर रखती है जो कि अप्रमाणिक है।

पृथ्वीराज रासो को प्रमाणिकता मानने वाले विद्वान :-

डॉक्टर श्याम सुंदर दास, मोहन लाल, विष्णु लाल पांडे मिश्रबंधु, कर्नल टॉड मोतीलाल मलेरिया, शार्सा द ताली प्रमुख हैं।

* प्रमाणिकता के तर्क निम्नानुसार है।
* डॉक्टर दशरथ शर्मा का मत है कि इसका लघुत्तम रूप प्रमाणिक है, उसमें इतिहास संबंधी कोई अशुद्धियां नहीं है।
* मोहन लाल, विष्णु लाल पांडेय ने आनंद संवत कल्पना की है। रसो की घटनाओं में 90–100 वर्ष का अंतर है, जो संवत की भिन्नता के कारण है।
* हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि रासो में बारहवीं सदी की भाषा की संयुक्ताक्षरमयी अनुस्वरात प्रवृत्ति मिलती है। इसमें यह बारहवीं सदी का मान्य ग्रंथ है।
* दिवेदी का भी यह मत है कि रासो की रचना शुकशुकी संवाद अर्थात दूसरों को सुनना होता है के रूप में भी सर्गों में यह शैली नहीं मिलती हैं उन्हें प्रक्षिप्त मानना चाहिए। जो अंश अप्रक्षिपत है उसी में इतिहास विरोध तथ्य पाए गए हैं।
* कुछ लोगों ने रासों में अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग है इसे देखकर इसे जाली ग्रंथ माना। किंतु इसका रचियता चंद लाहौर का निवासी था। अतः मुसलमानों के प्रमुख प्रभाव के कारण उसकी भाषा में अरबी फारसी शब्दों का मिश्रण होना स्वाभाविक है।
* रासो एक काव्य ग्रंथ है इतिहास ग्रंथ नहीं है। इसमें इतिहास का सत्य खोजना और उसके न मिलने पर उसे अप्रमाणिक घोषित करना सर्वदा अनुचित है।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 92-98

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और भारतीय संविधान के अनुसार मानवाधिकार

Surendra Kumar Pareek
Assistant Professor, Department of Education
Institute of Advanced Studies in Education, (Deemed to be University), Sardarshahar, Rajasthan

परिचय :-

मानवाधिकार किसी भी ऐसे समाज के लिए आधार के रूप में कार्य करता है जो निष्पक्षता, न्याय और समावेशिता की आकांक्षा रखता है। वे प्रत्येक व्यक्ति की अंतर्निहित गरिमा और मूल्य की मान्यता में निहित हैं, सभी के लिए समान अवसर और स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं, चाहे उनकी उत्पत्ति, पहचान या परिस्थिति कुछ भी हो। ये अधिकार प्रकृति में सार्वभौमिक हैं, राष्ट्रीय सीमाओं, सांस्कृतिक भेदों और ऐतिहासिक असमानताओं से परे हैं, और ये सभी लोगों के लिए उपलब्धि का एक सामान्य मानक बनाते हैं। वे अविभाज्य भी हैं, अर्थात कोई भी उन्हें मनमाने ढंग से छीन नहीं सकता है, क्योंकि वे मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए आवश्यक हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं ने, अपने चार्टर और उसके बाद के ढांचे के माध्यम से, और भारत जैसे संप्रभु राष्ट्रों ने, अपने संविधान के माध्यम से, इन अधिकारों को अपने कानूनी और नैतिक ढांचे में शामिल करने के महत्त्व को पहचाना है। ऐसा करके, वे ऐसे समाज को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध हैं जहां न्याय, समानता और स्वतंत्रता केवल आदर्श नहीं बल्कि सभी नागरिकों के लिए मूर्त वास्तविकताएं हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर में मानवाधिकार :-

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ, मानवाधिकारों को बनाए रखने और उनकी रक्षा करने के वैश्विक प्रयास में आधारशिला रहा है। युद्ध और अन्याय के विनाशकारी प्रभाव को पहचानते हुए, राष्ट्रों के बीच शांति, सुरक्षा और सहयोग को बढ़ावा देने के लिए यह संगठन बनाया गया था। इसके मिशन का केंद्र मानव अधिकारों पर बल देना है, जैसा कि इसके संस्थापक दस्तावेज, संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में दर्शाया गया है। यह चार्टर संयुक्त राष्ट्र संघ के मार्गदर्शक सिद्धांतों और उद्देश्यों, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा, समानता को बढ़ावा देने और सभी लोगों की गरिमा सुनिश्चित करने के महत्त्व को रेखांकित करता है। यह न केवल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए एक रूपरेखा के रूप में कार्य करता है, बल्कि एक न्यायसंगत वैश्विक समाज के लिए मानवता की सामूहिक प्रतिबद्धता की घोषणा के रूप में भी कार्य करता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर की प्रस्तावना :-

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की प्रस्तावना सभी व्यक्तियों के मौलिक मानवाधिकारों में विश्वास की पुष्टि करके इसके उद्देश्यों और मूल्यों के लिए स्वर निर्धारित करती है। इस प्रतिबद्धता को शामिल करके, संयुक्त राष्ट्र संघ एक ऐसे वातावरण को बढ़ावा देने के प्रति अपने समर्पण को रेखांकित करता है जहां समानता, न्याय और स्वतंत्रता केवल आकांक्षाएं नहीं बल्कि मूलभूत सिद्धांत हैं। ये प्रस्तावना यह सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रों के सामूहिक संकल्प को दर्शाती है कि ये मूल्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और नीति–निर्माण का मार्गदर्शन करते हैं, इस विश्वास को मजबूत करते हैं कि स्थायी शांति और सामाजिक प्रगति प्राप्त करने के लिए मानवाधिकार आवश्यक हैं। यह एक नैतिक दिशासूचक के रूप में कार्य करता है, जो सदस्य देशों को दुनिया भर में लोगों की गरिमा और मानवता को बनाए रखने और उनकी रक्षा करने की उनकी साझा जिम्मेदारी की याद दिलाता है।

अनुच्छेद 1(3) :-

अनुच्छेद 1(3) वैश्विक स्तर पर शांति, सुरक्षा और विकास को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के मूलभूत मिशन को रेखांकित करता है। यह आर्थिक असमानता, सामाजिक अन्याय, सांस्कृतिक तनाव और मानवीय संकटों सहित वैश्विक चुनौतियों की एक विस्तृत श्रृंखला से निपटने के लिए राष्ट्रों के बीच सामूहिक कार्रवाई के महत्त्व पर प्रकाश डालता है। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर ध्यान केंद्रित करके, संयुक्त राष्ट्र संघ का लक्ष्य एक ऐसी दुनिया बनाना है जहां देश न्यायसंगत और टिकाऊ समाधान खोजने के लिए मिलकर काम करें।

इसके अलावा, अनुच्छेद 1(3) एक न्यायपूर्ण दुनिया को आकार देने में मानवाधिकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर बल देता है। यह आदेश देता है कि सभी व्यक्तियों को, जाति, लिंग, भाषा या धर्म की परवाह किए बिना, वह गरिमा और स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए जिसका हर इंसान हकदार है। यह सिद्धांत मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का को सुनिश्चित करता है, जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा तक पहुंच और निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार, यह सुनिश्चित करते हुए कि कोई भी हाशिए पर नहीं है या इन आवश्यक स्वतंत्रता से वंचित नहीं है।

अनुच्छेद 55 :-

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर का अनुच्छेद 55 मानव अधिकारों के लिए सार्वभौमिक सम्मान को बढ़ावा देने और लिंग की परवाह किए बिना सभी व्यक्तियों के लिए समानता सुनिश्चित करने को महत्त्व प्रदान करता है। यह सामाजिक और आर्थिक प्रगति, स्थिरता और सतत विकास को सक्षम करने वाली स्थितियाँ बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की जिम्मेदारी पर प्रकाश डालता है, जो सभी आंतरिक रूप से मौलिक अधिकारों के सम्मान से जुड़े हुए हैं। पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अधिकारों को सबसे आगे रखते हुए, व्यापक वैश्विक लक्ष्यों को प्राप्त करने में लैंगिक समानता की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करता है। यह अपने सदस्य राज्यों (राष्ट्रों) के लिए भेदभाव को खत्म करने और सभी व्यक्तियों की रक्षा और सशक्त बनाने वाले ढांचे स्थापित करने के निर्देश के रूप में कार्य करता है। अनुच्छेद 55 के माध्यम से, चार्टर इन सिद्धांतों को बनाए रखने और एक ऐसा वातावरण बनाने के लिए राष्ट्रों के बीच सहयोग को महत्त्व देता है जहां मानवाधिकारों के लिए समानता और सम्मान सार्वभौमिक रूप से पनपे।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) :-

सन् 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनाया गया मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR)

मानव अधिकारों के इतिहास में एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। यह उन अधिकारों और स्वतंत्रता की व्यापक अभिव्यक्ति की पेशकश करता है जिनके सभी लोग स्वाभाविक रूप से हकदार हैं। यह घोषणा–पत्र नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है, मानव गरिमा और समानता के लिए समग्र दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है। हालांकि यह कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है, UDHR राष्ट्रों के लिए एक नैतिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है, जो दुनिया भर में संविधानों, कानूनों और संधियों के प्रारूपण को प्रभावित करता है। अधिकारों की परस्पर निर्भरता और अविभाज्यता पर जोर देकर, यूडीएचआर न्याय की वकालत करने, असमानताओं को दूर करने और सभी के लिए मानवाधिकारों की खोज में वैश्विक एकजुटता को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बना हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR) मिलकर सार्वभौमिकता की अवधारणा को सुदृढ़ करते हैं। वे इस सिद्धांत पर प्रकाश डालते हैं कि ये अधिकार सरकारों द्वारा दिए गए विशेषाधिकार नहीं हैं बल्कि मौलिक अधिकार हैं जो व्यक्तिगत परिस्थितियों, सांस्कृतिक मतभेदों और राजनीतिक सीमाओं से परे हैं। चार्टर मूलभूत ढांचा प्रदान करता है, जबकि UDHR इन सिद्धांतों पर विस्तार से बताता है, जो मानव अधिकारों का सम्मान और सुरक्षा करने की स्पष्ट दृष्टि प्रदान करता है।

भारतीय संविधान में मानव अधिकार :-

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक गौरवान्वित संस्थापक सदस्य के रूप में भारत ने मानवाधिकारों के आदर्शों को अपने संविधान के मूल में दृढ़ता से एकीकृत किया है। भारतीय संविधान का मसौदा वैश्विक मानवाधिकार आंदोलनों और मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) से काफी प्रेरित था, जिसे भारत की स्वतंत्रता से कुछ समय पहले अपनाया गया था। संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता को पहचाना कि गरिमा, समानता और स्वतंत्रता के मूल्य देश के शासन की नींव बनें। उन्होंने भारत के घरेलू ढांचे को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के अनुरूप बनाने की मांग की, जो एक न्यायपूर्ण समाज बनाने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है जहां प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्निहित अधिकारों का सम्मान और सुरक्षा की जाती है। यह प्रभाव मौलिक अधिकारों के व्यापक प्रावधानों में स्पष्ट है, जो समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, भेदभाव के विरुद्ध सुरक्षा और न्याय तक पहुंच को सुनिश्चित करता है।

संविधान न केवल इन अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि उल्लंघनों को संबोधित करने के लिए तंत्र भी स्थापित करता है, जो अपने लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में मानवाधिकारों को बनाए रखने के लिए भारत के समर्पण को प्रदर्शित करता है। भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है –

मौलिक अधिकार (भाग III) :-

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18) :-

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 में निहित समानता का अधिकार यह गारंटी देता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान की परवाह किए बिना, कानून के समक्ष समान व्यवहार का हकदार है। ये प्रावधान सुनिश्चित करते हैं कि किसी भी व्यक्ति के साथ राज्य द्वारा भेदभाव या असमान व्यवहार नहीं किया जाएगा, इस प्रकार एक अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज को बढ़ावा मिलेगा। इसके अतिरिक्त,

अस्पृश्यता जैसी प्रथाओं का उन्मूलन, जो ऐतिहासिक रूप से समाज के कुछ वर्गों को हाशिए पर रखता है, इस अधिकार का एक प्रमुख तत्त्व है, जो सभी नागरिकों के लिए सम्मान और समानता को बढ़ावा देता है।

स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22) :–

स्वतंत्रता का अधिकार, जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 में उल्लिखित है, आवश्यक स्वतंत्रताओं की एक विस्तृत श्रृंखला को शामिल करता है जो एक लोकतांत्रिक समाज के कामकाज के लिए मौलिक हैं। इन अधिकारों में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता शामिल है, जो व्यक्तियों भय के बिना अपनी राय और विचारों को व्यक्त करने की अनुमति देती है। शांतिपूर्वक एकत्रित होने और संघ बनाने की स्वतंत्रता, भ्रमण की स्वतंत्रता, नागरिकों को देश के भीतर कहीं भी यात्रा करने और निवास करने में सक्षम बनाना और मनमानी गिरफ्तारी या हिरासत से सुरक्षा। ये प्रावधान सुनिश्चित करते हैं कि व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रयोग कर सकते हैं और साथ ही राज्य के किसी भी अन्यायपूर्ण कार्यों से उनकी रक्षा भी कर सकते हैं जो उनके मूल अधिकारों का उल्लंघन कर सकते हैं।

शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24) :–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 द्वारा शोषण के विरुद्ध अधिकार, व्यक्तियों को मानव तस्करी और जबरन श्रम जैसी अमानवीय प्रथाओं के अधीन होने से बचाता है। अनुच्छेद 23 विशेष रूप से किसी भी प्रकार के जबरन श्रम को प्रतिबंधित करता है, जिससे व्यक्तियों को धमकी या दबाव के तहत काम करने के लिए मजबूर किया जाना अवैध हो जाता है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 24 खतरनाक कार्य वातावरण में नाबालिगों के रोजगार पर रोक लगाकर बच्चों की सुरक्षा करता है, यह सुनिश्चित करता है कि उनका ऐसे श्रम के लिए शोषण नहीं किया जाता है जो उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा या कल्याण को हानि पहुंचा सकता है। साथ में, इन प्रावधानों का उद्देश्य कमजोर आबादी को शोषण से बचाना और मानवीय गरिमा और समानता को बढ़ावा देना है।

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29–30) :–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में निहित सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार, अल्पसंख्यक समुदायों के हितों की रक्षा के लिए तैयार किए गए हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उन्हें अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने, बढ़ावा देने की स्वतंत्रता है। अनुच्छेद 29 व्यक्तियों और समुदायों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार देता है, अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को राज्य के किसी भी हस्तक्षेप के बिना, उनकी इच्छा के शैक्षणिक संस्थानों को स्थापित करने और प्रशासित करने का अधिकार प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाता है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32) :–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 द्वारा गारंटीकृत संवैधानिक उपचार का अधिकार, नागरिकों को उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर न्यायिक निवारण प्राप्त करने का अधिकार देता है। यह अनुच्छेद व्यक्तियों को अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सीधे भारत के सर्वोच्च न्यायालय से संपर्क करने की अनुमति देता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि इन अधिकारों के किसी भी उल्लंघन को अदालत में चुनौती दी जा सकती है। अनुच्छेद 32 एक महत्त्वपूर्ण सुरक्षा के रूप में कार्य करता है, जो नागरिकों को उनकी स्वतंत्रता की

रक्षा करने और किसी भी गैरकानूनी कार्यों के लिए राज्य को जवाबदेह ठहराने का साधन प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, यह संविधान के रक्षक के रूप में न्यायपालिका की भूमिका की पुष्टि करता है, यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को न्याय और उपचार तक पहुंच हो जब उनके मौलिक अधिकार खतरे में हों।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (भाग IV) :-

भारतीय संविधान के भाग IV में उल्लिखित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, दिशानिर्देशों का एक समूह है जिसका उद्देश्य राज्य को सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने वाली नीतियां बनाने में निर्देशित करना है। हालाँकि ये सिद्धांत किसी अदालत में कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं, फिर भी ये मूलभूत आदर्शों के रूप में काम करते हैं जो एक न्यायसंगत समाज की स्थापना के प्रयासों में सरकार का मार्गदर्शन करते हैं। अनुच्छेद 38, 39, और 41 सभी नागरिकों के लिए पर्याप्त आजीविका का प्रावधान सुनिश्चित करके, शिक्षा तक पहुंच की सुविधा प्रदान करके और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करके सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

अन्य संवैधानिक प्रावधान :-

अनुच्छेद 21 -

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार की गारंटी देता है, जिसकी न्यायपालिका द्वारा गरिमापूर्ण जीवन के लिए आवश्यक अधिकारों के व्यापक रूप से शामिल करने के लिए विस्तृत तरीके से व्याख्या की गई है। भौतिक अस्तित्त्व की सुरक्षा से परे, इस अधिकार में गोपनीयता का अधिकार भी शामिल है, जो यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्ति राज्य या अन्य लोगों के अनुचित हस्तक्षेप के बिना व्यक्तिगत निर्णय ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त, न्यायपालिका ने नागरिकों की भलाई के लिए पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व को पहचानते हुए, स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 21 की व्याख्या की है।यह सुनिश्चित करता है कि राज्य न केवल व्यक्तियों की शारीरिक सुरक्षा बल्कि उनके व्यापक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को भी कायम रखता है, मानव गरिमा के लिए समग्र दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है।

अनुच्छेद 51 -

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51 राज्य को अंतर्राष्ट्रीय कानून और उसके संधि दायित्त्वों का सम्मान और पालन करने के लिए प्रोत्साहित करके अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देने के महत्त्व पर जोर देता है। यह प्रावधान मानवाधिकारों, कूटनीति और राष्ट्रों के बीच सहयोग के वैश्विक ढांचे के प्रति भारत की मजबूत प्रतिबद्धता को दर्शाता है। ऐसे सिद्धांतों को संविधान में शामिल करके, भारत संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अंतर्राष्ट्रीय के व्यापक लक्ष्यों के अनुरूप, वैश्विक शांति, सुरक्षा और न्याय, समानता और गैर–भेदभाव जैसे सार्वभौमिक मूल्यों को बढ़ावा देने में योगदान देने के लिए अपने समर्पण की पुष्टि करता है।

UNO चार्टर और भारतीय संविधान के बीच तालमेल :-

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और भारतीय संविधान दोनों में उल्लिखित मानवाधिकार के सिद्धांत, प्रत्येक व्यक्ति के लिए समानता, स्वतंत्रता और सम्मान के मौलिक मूल्यों के प्रति साझा और स्थायी प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं, चाहे उनकी पृष्ठभूमि या परिस्थिति कुछ भी हो। ये मार्गदर्शक सिद्धांत इस बात पर जोर देते हैं कि प्रत्येक

व्यक्ति, अपनी मानवता के आधार पर, अपने बुनियादी अधिकारों की सुरक्षा का हकदार है, जो एक न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण समाज की नींव बनाते हैं। UNO चार्टर, अपने वैश्विक ढांचे के माध्यम से, इन अधिकारों को बनाए रखने के लिए राष्ट्रों के बीच अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और पारस्परिक सम्मान की वकालत करता है, जबकि भारतीय संविधान इन आदर्शों को अपने कानूनी और सामाजिक ढांचे में शामिल करता है, जिससे देश की सीमाओं के भीतर उनकी सुरक्षा सुनिश्चित होती है। साथ में, वे एक ऐसी दुनिया बनाने की सार्वभौमिक आकांक्षा को उजागर करते हैं जहां मानव गरिमा का सम्मान किया जाता है, और प्रत्येक व्यक्ति एक सुरक्षित और सहायक वातावरण में अपनी आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता के साथ रह सकता है।

चुनौतियाँ और भविष्य का मार्ग :-

सशक्त कानूनी ढाँचे की मौजूदगी के बावजूद, भारत और विश्व स्तर पर, मानवाधिकारों को पूरी तरह से साकार करने में महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं। भारत में, लैंगिक असमानता, गरीबी, जाति–आधारित भेदभाव और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सीमाएं जैसे मुद्दे कई नागरिकों के अधिकारों में बाधा बने हुए हैं। ये सामाजिक और आर्थिक बाधाएँ हाशिए पर रहने वाले समूहों को असंगत रूप से प्रभावित करती हैं, जिससे उन्हें बुनियादी अवसरों और सेवाओं तक पहुँचने से रोका जाता है। विश्व स्तर पर, मानवाधिकारों को चल रहे संघर्षों, सत्तावादी शासनों के उदय और गहरी प्रणालीगत असमानताओं से और अधिक खतरा है, जो बड़ी आबादी को शोषण, उत्पीड़न और हिंसा के प्रति संवेदनशील बनाती है। ऐसे वातावरण में, मौलिक स्वतंत्रता की सुरक्षा तेजी से कठिन हो जाती है, जो सुधार की तत्काल आवश्यकता को उजागर करती है।

इन चुनौतियों पर प्रभावी ढंग से काबू पाने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर सहयोगात्मक प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं। सरकारों को मानवाधिकारों की रक्षा करने वाली संस्थाओं को मजबूत करने के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि वे उल्लंघनकर्ताओं को जवाबदेह ठहराने के लिए सशक्त और पर्याप्त रूप से संसाधनयुक्त हैं। एक न्यायपूर्ण समाज को बढ़ावा देने के लिए पारदर्शिता, जवाबदेही और कानून के शासन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जन जागरूकता अभियान भी महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे नागरिकों को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करते हैं और उन्हें न्याय के लिए खड़े होने के लिए सशक्त बनाते हैं।

निष्कर्ष :-

मानव अधिकार मानव गरिमा के संरक्षण और न्याय की स्थापना के लिए मौलिक हैं, जो उस नींव के रूप में कार्य करते हैं जिस पर समतापूर्ण समाज का निर्माण होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर और भारतीय संविधान दोनों समानता, स्वतंत्रता और जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा पर जोर देते हुए प्रत्येक व्यक्ति के अपरिहार्य अधिकारों को बनाए रखने और उनकी रक्षा करने के लिए एक साझा दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। ये दस्तावेज सरकारों और संस्थानों को सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और कमजोर और हाशिए पर रहने वाले समूहों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं। विशेष रूप से असमानता, भेदभाव, पर्यावरणीय गिरावट और तकनीकी दुरुपयोग और संघर्ष जैसे उभरते खतरों जैसे मुद्दों के साथ। इन उभरती चुनौतियों से निपटने के लिए निरंतर सतर्कता और सक्रिय उपाय आवश्यक हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि मानवाधिकार केवल महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि सभी व्यक्तियों के लिए मूर्त वास्तविकताएं हैं, चाहे उनकी पृष्ठभूमि या परिस्थिति कुछ भी हो।

संदर्भ सूची :-

1. खरे, एस. आर. मानवाधिकार और भारतीय संविधान, साहित्य भवन, लखनऊ 1985, 110–120.
2. चौधरी, हरीश, संयुक्त राष्ट्र और मानवाधिकार संरक्षण. भारतीय प्रकाशन गृह, वाराणसी 1995, 85–95.
3. यूनिसेफ, बाल अधिकार और संविधान. नई दिल्ली, यूनिसेफ इंडिया 1998, 50–55.
4. मिश्रा, प्रवीण कुमार. भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय और मानवाधिकार, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली 2005, 60–70.
5. सिंह, अजय कुमार. मानवाधिकार और अंतर्राष्ट्रीय कानून, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर 2010, 90–100.
6. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (UNHRC). मानवाधिकार संरक्षण और चुनौतियां, यूएनएचआरसी, जेनेवा 2012, 30–40.
7. शर्मा, रंजना, महिला अधिकार और संविधानिक प्रावधान, नवनीत प्रकाशन, मुंबई 2014, 120–125.
8. तिवारी, डी.के., संविधान में मौलिक अधिकार और मानवाधिकार. पाटलिपुत्रा पब्लिकेशन, पटना 2016, 95–100.
9. सिंह, अनुराग, आधुनिक मानवाधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ, भारती पब्लिकेशन, लखनऊ 2017, 135–140.
10. वर्मा, पी.एन., मानवाधिकारः विकास और चुनौती, भारतीय समाजशास्त्र प्रकाशन, भोपाल 2018, 75–80.
11. जैन, एम.पी., भारतीय संविधान का परिचय., लेक्सिसनेक्सिस, नई दिल्ली 2020, 225–230.

Contact No. 7357193356

E-mail: pareeksurendra67@gmail.com

.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 99-106

बीसवीं सदी की नई अवधारणा : नव–वामपंथ विमर्श

डॉ. षैजू के
सहायक आचार्य, सरकारी लॉ कॉलेज एर्णाकुलम, केरल –६८२०११

सार :–

नव वामपंथ का विकास फ्रांस के प्रमुख संरचनावादी विचारक लुई आल्थूजर, निको पॉलेन्जाम, मोरिस गोडेलियर, जीन पायगेट आदि ने किया। नव–वामपंथ संरचनावाद का मिश्रित रूप है। परम्परागत संरचनावाद सामाजिक जीवन की अमर्त एवं मूल संरचनाओं को जानने में रुचि रखता है, जबकि मार्क्सवाद पूँजीवाद में व्याप्त बुराइयों को प्रकट करता है। नव वामपंथ का जन्म इन्हीं दोनों के संयोग से होता है। नव मार्क्सवाद में पूंजीवादी समाज की मूल संरचनाओं का अध्ययन लिया जाता है। यह मानसिक प्रक्रियाओं एवं उनसे पैदा होने वाली संरचनाओं को अध्ययन का केन्द्र मानकर मार्क्स के विचारों का विवेचन करता है।

बीज शब्द :– नव वामपंथ, पूंजीवादी तिरस्कार, प्रतिरोधी दृष्टि, संघर्ष और अहिसा।

मार्क्सवादी सिद्धांत कार्ल मार्क्स (1818–83) और उनके करीबी सहयोगी फ्रेडरिक एंगेल्स (1820–95) के विचारों से निकला है। इसका उद्देश्य पूंजीवादी समाज और वास्तव में, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संगठन के पहले के तरीकों की एक कट्टरपंथी आलोचना प्रदान करना है, मुख्य रूप से वर्ग संबंधों के विश्लेषण के माध्यम से। सत्ता, विचारधारा और आधिपत्य के विषय और विशेष रूप से जिस तरह से शासक वर्ग नियंत्रण बनाए रखते हैं और पूंजीवाद की वैधता को बढ़ावा देते हैं, मार्क्सवादी विचार के लिए केंद्रीय हैं। मार्क्सवादी विचारों का घरेलू और वैश्विक दोनों क्षेत्रों में राजनीति के लगभग सभी पहलुओं के लिए आलोचनात्मक दृष्टिकोणों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इस अध्याय में हम वैश्विक राजनीति से सीधे संबंधित मार्क्सवादी–प्रभावित सिद्धांत के कई प्रमुख पहलुओं की जांच करते हैं, जिसमें ग्राम्सियन सिद्धांत (इसके संस्थापक सिद्धांतकार एंटोनियो ग्राम्स्की के बाद) और फ्रैंकफर्ट स्कूल सिद्धांत (जर्मनी में इसके मूल आधार के बाद) शामिल हैं जो समकालीन आलोचनात्मक सिद्धांत (सीटी) के लिए विशिष्ट दृष्टिकोण बनाते हैं।

यहाँ जिन धाराओं की चर्चा की गई है, वे सभी 'पश्चिमी मार्क्सवाद' के भिन्न रूप हैं या उससे ली गई हैं। यह मार्क्स और एंगेल्स की विरासत को उस तरीके से अलग करता है जिस तरह से उनके विचारों को सत्तावादी साम्यवादी शासनों में सिद्धांतित किया गया है, खासकर चीन और पूर्व यूएसएसआर में जहाँ इसने विशिष्ट क्रांतिकारी परंपराओं को रेखांकित किया (देखें चैन, 2003, मैरिक, 2008)। हालाँकि, दोनों मामलों में, इसे सत्तावाद के एक संस्करण में भी बदल दिया गया था, हालाँकि यह कभी भी अपरिहार्य नहीं था कि मार्क्सवादी विचारों को व्यवहार में लागू करने के लिए एक सत्तावादी राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता होगी। जैसा कि

एक टिप्पणीकार ने उल्लेख किया है, मार्क्स को हमेशा उनके अनुयायियों द्वारा अच्छी तरह से सेवा नहीं दी गई है (रॉकमोर, 2018 : पृष्ठ 2)। निर्भरता और विश्व–प्रणाली सिद्धांत भी मार्क्सवादी परंपरा से संबंधित हैं जबकि ऐतिहासिक समाजशास्त्र, हालाँकि जरूरी नहीं कि मार्क्सवादी हो, कम से कम उस परंपरा के साथ समय के साथ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के बड़े पैमाने के पैटर्न के लिए एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण साझा करता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार, मार्क्सवाद को परमपरागत समाजशास्त्र की श्रेणी में रखने पर विचार–वैमनस्य उत्पन्न हो सता है, क्योंकि मार्क्स के अधिकांश विचार आन्दोलनकारी है और वे दुनिया भर के मजदूरों को संगठित होने का आह्वान करते है। स्वयं कार्ल मार्क्स के क्रिया–कलाप, गतिविधियाँ, विचार तथा उनका योगदान भी परम्परागत नहीं है। इसके बाद भी उनका सामाजिक–परिवर्तन और वर्ग–संघर्ष का सिद्धान्त भी परम्परागत विचारों का ही एक अंग है। उनका निर्णयवादी सिद्धान्त भी बहुत कुछ परम्परागत है। अतः आमूल परिवर्तनवादी समाजशास्त्रीय ज्ञान के क्षितिज पर नव–वामपंथी विचारधारा उदित होना स्वाभाविक था। इस नव–वामपंथ के फलतः वर्तमान युग में नव–समाजशास्त्र का जन्म हुआ। नव–वामपंथ को आमूल परिवर्तनवादी समाजशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है।

नव-वामपंथ की विशेषतायें :-

1. यह आर्थिक कारणों के साथ–साथ, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कारकों को भी कारक भी अध्ययन में स्थान देता हैं, क्योंकि ये कारक भी सामाजिक संरचना में प्रमुख स्थान रखते हैं।
2. नव वामपंथ द्वन्द्वात्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण करता है, जबकि संरचनावाद विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक विवेचन करता है। नव वामपंथ इन दोनों विचारधाराओं का सम्मिश्रण है।
3. नव वामपंथ ऐतिहासिक एवं आनुभाविक अध्ययन पद्धति के साथ–साथ अन्य अध्ययन को भी प्रयोग में लाता है।
4. नव वामपंथ पूँजीवाद की वास्तविक संरचना को जानने एवं समझने की कोशिश करता है। पूँजीवाद ने राज्य, विचारधारा एवं अर्थव्यवस्था तीन घटक होते हैं। मार्क्सवादी इन घटकों पर ध्यान नहीं देते हैं। नव वामपंथ इन्हीं घटकों का अध्ययन करता है।

नव-वामपंथ के उदय के कारण :-

जार्ज रिटजर नव वामपंथ के जन्म का कारण निम्नांकित कारकों को बताते हैं :-

(1) मार्क्सवादी आर्थिक निवारण को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे अर्थव्यवस्था को मौलिक व्यवस्था मानते हैं, जिसमें परिवर्तन होने पर ही समस्त समाज में परिवर्तन आता है। यह उचित नहीं है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन में जैविकीय, वैचारिक एवं अन्य कारक भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(2) मार्क्सवाद पूँजीवादी व्यवस्था के पार्श्व की मूल संरचनाओं का अध्ययन नहीं करता है, जबकि वही वास्तविक संरचनायें हैं।

(3) मार्क्सवादी इतिहास पर अत्यधिक जोर देते हैं, इसके विपरीत संरचनावादी समाज के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। संरचनावादी वर्तमान अध्ययनों के द्वारा अतीत की जानकारी करना चाहते हैं।

फ्रैंकफर्ट स्कूल :-

फ्रैंकफर्ट स्कूल, मार्क्सवादी–प्रभावित सिद्धांतकारों का एक समूह है, जो सामाजिक अनुसंधान संस्थान में काम करता था, जिसकी स्थापना 1923 में फ्रैंकफर्ट में हुई थी, 1930 के दशक में यूएसए में स्थानांतरित हो गया, और 1950 के दशक की शुरुआत में फ्रैंकफर्ट में फिर से स्थापित किया गया (संस्थान 1969 में भंग कर दिया गया)। आलोचनात्मक सिद्धांत का परिभाषित विषय दर्शन के साथ ठोस सामाजिक शोध को जोड़कर सभी सामाजिक प्रथाओं पर आलोचना की धारणा को विस्तारित करने का प्रयास है। अग्रणी 'पहली पीढ़ी' के फ्रैंकफर्ट विचारकों में थियोडोर एडोर्नो (1903–69), मैक्स होर्केइमर (1895–1973) और हर्बर्ट मार्क्यूज (1989–1979) शामिल थेय फ्रैंकफर्ट स्कूल की 'दूसरी पीढ़ी' के प्रमुख प्रतिपादक जुर्गन हेबरमास (जन्म 1929) थे। जबकि शुरुआती फ्रैंकफर्ट विचारक मुख्य रूप से असतत समाजों के विश्लेषण से चिंतित थे, बाद के सिद्धांतकारों, जैसे कि कॉक्स (1981, 1987) और एंड्रयू लिंकलेटर (1990, 1998), ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए आलोचनात्मक सिद्धांत को कम से कम तीन तरीकों से लागू किया है। सबसे पहले, आलोचनात्मक सिद्धांत ज्ञान और राजनीति के बीच संबंध को रेखांकित करता है, इस बात पर जोर देता है कि सिद्धांत और समझ किस हद तक मूल्यों और हितों के ढांचे में अंतर्निहित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि, चूंकि सभी सिद्धांत मानक हैं, इसलिए जो लोग दुनिया को समझना चाहते हैं, उन्हें अधिक सैद्धांतिक सजगता अपनानी चाहिए। दूसरा, आलोचनात्मक सिद्धांतकारों ने मुक्तिदायी राजनीति के लिए एक स्पष्ट प्रतिबद्धता अपनाई है : वे व्यक्तिगत या सामूहिक स्वतंत्रता के कारण को आगे बढ़ाने के लिए वैश्विक राजनीति में उत्पीड़न और अन्याय की संरचनाओं को उजागर करने के लिए चिंतित हैं। तीसरा, आलोचनात्मक सिद्धांतकारों ने अंतरराष्ट्रीय सिद्धांत के भीतर राजनीतिक समुदाय और राज्य के बीच पारंपरिक संबंध पर सवाल उठाया है, ऐसा करने से राजनीतिक पहचान की अधिक समावेशी और शायद महानगरीय धारणा की संभावना खुल गई है।

फ्रैंकफर्ट स्कूल में थियोडोर एडोर्नो, हर्बर्ट मार्क्यूज और मैक्स होर्केइमर जैसे व्यक्ति शामिल थे, जो ग्राम्स्की के साथ सांस्कृतिक और सामाजिक कारकों के लिए चिंता साझा करते थे, इसलिए अर्थशास्त्र पर कम जोर देते थे। एक और हालिया व्यक्ति, जुर्गन हेबरमास ने सामाजिक सिद्धांत के नए रूपों के माध्यम से आलोचनात्मक जांच की फ्रैंकफर्ट स्कूल की परंपरा को जारी रखा है। हेबरमास के संचारात्मक कार्रवाई के सिद्धांत का मानना है कि, सही परिस्थितियों में, श्सत्यश के बारे में आम सहमति बनाई जा सकती है। यह एक ज्ञानमीमांसा पर निर्भर करता है जो निरंतर संवाद की प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक दुनिया के बारे में ज्ञान को उभरता हुआ देखता है। क्योंकि सामाजिक विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों की तरह आगे नहीं बढ़ सकते हैं, इसलिए उन्हें सभी क्रियाओं को शामिल अभिनेताओं के परिप्रेक्ष्य से देखना चाहिए (देखें स्मिथ, 1996 : पृष्ठ 27–8)। हेबरमास वस्तुनिष्ठ नैतिक सत्य की धारणा को अस्वीकार करते हैं जो किसी भी सामाजिक दुनिया से स्वतंत्र रूप से मौजूद हैं। वे एक सामाजिक दुनिया के भीतर बने हैं, लेकिन यह सभी को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक है। यह सार्वभौमिक रूप से मान्य नैतिकता के लिए आधार प्रदान करता है और इसलिए हैबरमास का मानक सिद्धांत स्पष्ट रूप से विश्वव्यापी है।

नव-वामपंथ के विकास में फ्रैन्कफर्ट स्कूल का योगदान/भूमिका :-

सन् 1923 में जर्मनी में फ्रैंकफर्ट शहर में 'फ्रैंकफुर्ट इंस्टीट्यूट फार सोशल रिसर्च' की स्थापना की गयी।

यह संस्था फ्रैंकफुर्ट विश्वविद्यालय का ही एक विभाग थी। यहाँ पर मार्क्स की परम्परा में संघर्ष सिद्धान्तीकरण के संशोधन पर शोध किये गये। मैक्स होरखीमेर के यहां का निदेशक बनने के पश्चात् 1932 से 1941 की अवधि में यहां कि शोधकर्ताओं ने विवेचनात्मक सिद्धान्तीकरण को विकसित किया। किन्तु यह काल विवेचनात्मक सिद्धान्तीकरण के अनुकूल नहीं था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सभी जर्मनी फांसीवाद में उलझ गया तथा 1930 के दशक में रूप की क्रान्ति कमजोर पड़ने लगी। इससे विद्वानों को आभास हुआ कि यूरोपीय समाज का बेवर का विश्लेषण ठीक है, जिसके कारण सिद्धान्तीकरण का विकास कमजोर हो गया है। ये परिस्थितियां फ्रैन्कफर्ट स्कूल के समाज विज्ञानियों के लिए एक चुनौती थी। वे चाहते थे कि विवेचनात्मक सिद्धान्त शोषण और दमन का सामना करें, किन्तु तत्कालीन राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों के कारण उन्होंने अपने आपको असहाय पाया।

विवेचनात्मक सिद्धान्तीकरण का विकास यूरोप एवं अमेरिका में दो चरणों में सन 1932 से 1941 की अवधि तथा सन् 1960 के बाद हुआ। इसके प्रथम चरण के व्याख्याकार लुकाक्स थे। तथा दूसरे चरण के होरखीमेर एवं ऐडोना थे। फ्रैंकफर्ट स्कूल ने हीगल एवं मार्क्स की परम्परा में ही आलोचनात्मक सिद्धान्त का विकास किया। इस सम्प्रदाय के व्याख्याकारों ने मार्क्स एवं इस स्कूल के व्याख्याकार सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की भमिका को स्वीकार करते हैं एवं प्रत्यक्षवाद को अस्वीकार करते हैं तथा तथ्यों को मूल्यों से पृथक रखते है।

रूथ वेलेस एवं एलिसन बोल्फ का कथन है कि इस सम्प्रदाय ने जिस आलोचनात्मक सिद्धान्त की व्याख्या की है कि लोगों के विचार समाज से पैदा तथा वे इसी समाज के सदस्य हैं। दूसरा तथ्य यह है कि बौद्धिको को कभी भी नहीं होना चाहिए। वे वस्तनिष्ट हो भी नहीं सकते है क्योंकि उनके विचारों का निर्माण समाज के द्वारा होता है। ऐसी दशा में वे जिस समाज का अध्ययन करते हैं उसके प्रति उन्हे आलोचनात्मक दृष्टि रखनी चाहिए। बद्धि जीवियों को स्वयं की गतिविधियों के प्रति भी आलोचनात्मक दृष्टि रखनी चाहिए। ज्ञान समाज द्वारा निर्मित होता है।

समाज का विश्लेषण ज्ञान द्वारा होना चाहिए। आलोचनात्मक सिद्धान्त के प्रवर्तक लुकाक्स है। यही वह व्यक्ति है जो एक छोर पर मार्क्स तथा दूसरे छोर पर होरखीमर एवं ऐडोनो को जोड़ते है। आलोचनात्मक सिद्धान्त में लुकाक्स के बाद हेमरमास का नाम आता है। लुकाक्स होंगल मार्क्स एवं बेवर को विवेचनात्मक सिद्धान्त से जोड़ने की कोशिश की। होरखीमेर एवं ऐडोनो ने अपनी कृतियों में लुकाक्स की पुस्तकों के विश्लेषण का कार्य किया। दोनों चरणों के विवेचनात्मक सिद्धान्तवेत्ताओं में हेबरमास का नाम प्रमुख है।

मार्क्सवाद का मूल इतिहास का दर्शन है जो बताता है कि पूंजीवाद क्यों बर्बाद हो गया है और क्यों समाजवाद और अंततः साम्यवाद को इसकी जगह लेनी है। यह दर्शन 'इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा' पर आधारित है, यह विश्वास कि आर्थिक कारक मानव इतिहास में अंततः निर्णायक शक्ति हैं। मार्क्स के विचार में, इतिहास एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ता है जिसमें प्रत्येक 'उत्पादन के तरीके' के भीतर आंतरिक विरोधाभास, वर्ग संघर्ष में परिलक्षित होते हैं, सामाजिक क्रांति और उत्पादन के एक नए और उच्चतर तरीके के निर्माण की ओर ले जाते हैं। इस प्रक्रिया की विशेषता ऐतिहासिक चरणों (दासता, सामंतवाद, पूंजीवाद और इसी तरह) की एक श्रृंखला थी और यह केवल एक वर्गहीन साम्यवादी समाज की स्थापना के साथ समाप्त होगी। मार्क्स के लिए, पूंजीवादी विकास में हमेशा एक स्पष्ट अंतरराष्ट्रीय चरित्र था, जिसके कारण कुछ लोग उन्हें

शुरुआती 'हाइपरग्लोबलिस्ट' सिद्धांतकार मानते थे। लाभ की इच्छा पूंजीवाद को 'संभोग के लिए हर बाधा को तोड़ने' और 'अपने बाजार के लिए पूरी पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने' के लिए प्रेरित करेगी (मार्क्स 1973)। हालाँकि, पूंजीवाद को एक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के रूप में देखने के निहितार्थों को VI लेनिन के साम्राज्यवाद : पूंजीवाद का उच्चतम चरण (1916, 1970) तक पूरी तरह से नहीं समझा गया था। लेनिन ने साम्राज्यवाद को एक अनिवार्य रूप से आर्थिक घटना के रूप में चित्रित किया, जो अधिशेष पूंजी के निर्यात के माध्यम से लाभ के स्तर को बनाए रखने के लिए घरेलू पूंजीवाद की खोज को दर्शाता है। यह बदले में, प्रमुख पूंजीवादी शक्तियों को एक दूसरे के साथ संघर्ष में लाएगा, जिसके परिणामस्वरूप युद्ध (WWI) अनिवार्य रूप से एक साम्राज्यवादी युद्ध था, इस अर्थ में कि यह अफ्रीका, एशिया और अन्य जगहों पर उपनिवेशों के नियंत्रण के लिए लड़ा गया था। इस तरह की सोच को बाद के मार्क्सवादियों ने और विकसित किया, जिन्होंने वैश्विक पूंजीवाद के 'असमान विकास' पर ध्यान केंद्रित किया। वैश्विक गरीबी और असमानता के पैटर्न को समझाने के लिए नव–मार्क्सवादी सिद्धांतों के उपयोग के माध्यम से 1970 के दशक के दौरान मार्क्सवाद में रुचि पुनर्जीवित हुई। उदाहरण के लिए, निर्भरता सिद्धांत ने इस बात पर प्रकाश डाला कि 1945 के बाद की अवधि में, पारंपरिक साम्राज्यवाद ने किस हद तक नव–उपनिवेशवाद को रास्ता दिया था, जिसे कभी–कभी 'आर्थिक साम्राज्यवाद' या अधिक विशेष रूप से 'डॉलर साम्राज्यवाद' के रूप में देखा जाता है। विश्व–प्रणाली सिद्धांत (पृष्ठ 367 देखें) ने सुझाव दिया कि विश्व अर्थव्यवस्था को एक अंतर्संबंधित पूंजीवादी प्रणाली के रूप में सबसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय पूंजीवाद की विशेषताओं में से कई विशेषताओं का उदाहरण प्रस्तुत करती है, अर्थात, शोषण पर आधारित संरचनात्मक असमानताएं और आर्थिक विरोधाभासों में निहित अस्थिरता और संकट की ओर झुकाव। विश्व–प्रणाली में 'कोर', 'परिधि' और 'अर्ध–परिधि' के बीच अंतर्संबंध शामिल हैं। विकसित उत्तर जैसे कोर क्षेत्र पूंजी की एकाग्रता, उच्च मजदूरी और उच्च–कुशल विनिर्माण उत्पादन द्वारा प्रतिष्ठित हैं, इसलिए वे तकनीकी नवाचार और निवेश के उच्च और निरंतर स्तरों से लाभान्वित होते हैं। कम विकसित दक्षिण जैसे परिधीय क्षेत्रों का कच्चे माल के निर्यात पर निर्भरता के माध्यम से कोर द्वारा शोषण किया जाता है, निर्वाह मजदूरी और राज्य संरक्षण के कमजोर ढांचे। अर्ध–परिधीय क्षेत्र आर्थिक रूप से कोर के अधीन हैं, लेकिन बदले में परिधि का लाभ उठाते हैं, जिससे कोर और परिधि के बीच एक बफर का निर्माण होता है। वैश्विक पूंजीवाद की अंतर्निहित असमानताओं और अन्याय के बारे में ऐसी सोच 1990 के दशक के उत्तरार्ध से उभरे वैश्वीकरण विरोधी या 'पूंजीवाद विरोधी' आंदोलन पर प्रभावों में से एक थी।

मार्क्सवादी परंपरा में एक प्रमुख हस्ती रोजा लक्जमबर्ग (1871–1919) हैं, जो एक कार्यकर्ता और दार्शनिक दोनों थीं। अन्य बातों के अलावा, वह उन साथी समाजवादियों की तीखी आलोचना के लिए उल्लेखनीय थीं, जिन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बाधित करने वाले पदों को अपनाया था। उन्होंने राजनीतिक सिद्धांत, सामाजिक इतिहास, समाजशास्त्र, सांस्कृतिक सिद्धांत और नृवंशविज्ञान पर व्यापक रूप से लिखा, जिसमें नारीवाद से लेकर राष्ट्रवाद और आत्मनिर्णय के विचार तक कई मुद्दों पर योगदान दिया (नेटल, 2019 : पृष्ठ ix & xi)। उत्तरार्द्ध के संबंध में, लक्जमबर्ग ने तर्क दिया कि 'राष्ट्रों के अधिकार का सूत्र' एक रूढ़ि है जो 'प्रत्येक दिए गए मामले में मौजूद ऐतिहासिक स्थितियों (स्थान और समय) की विस्तृत श्रृंखला' के साथ–साथ 'वैश्विक स्थितियों के विकास की सामान्य धारा' को ध्यान में रखने में विफल रहा। इसके अलावा, उन्होंने कहा, यह सूत्र

'राष्ट्रों' को समरूप सामाजिक–राजनीतिक इकाई मानता है, जबकि वे स्पष्ट रूप से ऐसी कोई चीज नहीं हैं। अधिकांश 'राष्ट्रों' की अत्यधिक विविध जातीय विरासत से अलग, लक्जमबर्ग ने तर्क दिया कि प्रत्येक राष्ट्र के भीतर, 'विरोधी हितों और 'अधिकारों' वाले वर्ग' मौजूद हैं, जो उन्हें 'एकीकृत 'राष्ट्रीय' इकाई' के रूप में कल्पना करने के किसी भी मामले को कमजोर करता है।

ग्राम्सियन क्रिटिकल थ्योरी :–

इतालवी बुद्धिजीवी एंटोनियो ग्राम्स्की (1891–1937) को अक्सर बीसवीं सदी के अग्रणी यूरोपीय मार्क्सवादी विचारक के रूप में वर्णित किया जाता है। वह एक कार्यकर्ता और एक बुद्धिजीवी दोनों थे जो प्रैक्सिस में दृढ़ता से विश्वास करते थे, जो 'सोच' को 'करने' से जोड़ता है (बॉक्स 4.2 देखें)। ग्राम्स्की के सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक योगदानों में से एक अभिजात वर्ग द्वारा आधिपत्य के निर्माण में सत्ता के स्वाभाविकीकरण की घटना को उजागर करना था। उन्होंने तर्क दिया कि शासक वर्ग निरंतर बल प्रयोग की अनुपस्थिति में भी सत्ता और नियंत्रण बनाए रखते हैं, क्योंकि वे प्रचलित असमानताओं को स्वाभाविक, अपरिहार्य और यहां तक कि सही भी बनाते हैं। 'आलोचनात्मक सिद्धांत' (जिसे अक्सर 'फ्रैंकफर्ट स्कूल आलोचनात्मक सिद्धांत' कहा जाता है, ताकि इसे आलोचनात्मक सिद्धांतों या दृष्टिकोणों की व्यापक श्रेणी से अलग किया जा सके) मार्क्सवादी–प्रेरित अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत की सबसे प्रभावशाली धाराओं में से एक के रूप में विकसित हुआ है। आलोचनात्मक सिद्धांत पर एक बड़ा प्रभाव एंटोनियो ग्राम्स्की के विचारों का रहा है। ग्राम्स्की (1970) ने तर्क दिया कि पूंजीवादी वर्ग व्यवस्था को न केवल असमान आर्थिक और राजनीतिक शक्ति द्वारा कायम रखा जाता है, बल्कि बुर्जुआ विचारों और सिद्धांतों के 'आधिपत्य' के द्वारा भी कायम रखा जाता है। आधिपत्य का अर्थ है नेतृत्व या प्रभुत्व और वैचारिक आधिपत्य के अर्थ में, यह बुर्जुआ विचारों की प्रतिद्वंद्वी विचारों को विस्थापित करने और वास्तव में, युग का 'सामान्य ज्ञान' बनने की क्षमता को संदर्भित करता है। ग्राम्स्की के विचारों ने विश्व या वैश्विक आधिपत्य की प्रकृति के बारे में आधुनिक सोच को प्रभावित किया है। पारंपरिक शब्दों में आधिपत्य को एक सैन्य शक्ति द्वारा दूसरे पर प्रभुत्व के रूप में देखने के बजाय, आधुनिक नव–ग्राम्सियन ने इस बात पर जोर दिया है कि किस हद तक आधिपत्य दबाव और सहमति के मिश्रण के माध्यम से संचालित होता है, आर्थिक, राजनीतिक, सैन्य और वैचारिक ताकतों के बीच परस्पर क्रिया के साथ–साथ राज्यों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के बीच बातचीत पर प्रकाश डाला गया है। रॉबर्ट कॉक्स (पृष्ठ 120 देखें) ने इस प्रकार यूएसए की आधिपत्य शक्ति का विश्लेषण न केवल इसके सैन्य वर्चस्व के संदर्भ में किया, बल्कि इसके द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले 'विश्व व्यवस्था' के लिए व्यापक सहमति उत्पन्न करने की इसकी क्षमता के संदर्भ में भी किया।

ग्राम्शी का जन्म 1891 में इटली के सार्डिनिया द्वीप पर हुआ था, जहाँ वे गरीबी की स्थिति में पले–बढ़े थे। उन्होंने ट्यूरिन विश्वविद्यालय में छात्रवृत्ति प्राप्त की, जहाँ उन्होंने साहित्य और भाषा विज्ञान का अध्ययन किया और इतिहास और दर्शन से परिचित हुए। वे इतालवी कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य बने, इसके सचिव के रूप में कार्य किया और 1924 में संसद के सदस्य चुने गए। अभियोजन से संसदीय प्रतिरक्षा होने के बावजूद, ग्राम्शी को 1926 में बेनिटो मुसोलिनी के फासीवादी शासन के तहत कैद कर लिया गया, जिसने कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया था। ग्राम्शी की प्रभावशाली बुद्धि ने उनके अभियोक्ता को 'बीस साल तक उनके मस्तिष्क को काम करने से रोकने के लिए' पर्याप्त जेल की सजा का तर्क देने के लिए प्रेरित

किया था। 1937 में जेल में उनकी मृत्यु हो गई। बहुत खराब स्वास्थ्य और प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद, ग्राम्शी ने मरणोपरांत प्रिजन नोटबुक्स शीर्षक से प्रकाशित लेखों का एक खंडित लेकिन फिर भी प्रभावशाली संग्रह तैयार किया (ग्राम्शी, 1971 देखें)। उन्हें व्यापक रूप से शक्ति, अर्थशास्त्र और संस्कृति के बीच संबंधों के संस्थापक सिद्धांतकार के रूप में माना जाता है, जिसमें मास मीडिया जैसे सांस्कृतिक संस्थानों की शक्ति भी शामिल है।

हालांकि, 'प्राकृतिक' होने से बहुत दूर, ग्राम्शी ने बताया कि असमानताएँ विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम हैं। उन्हें उन लोगों द्वारा स्वाभाविक बना दिया जाता है जिनके पास 'दिल और दिमाग' को नियंत्रित करने की सांस्कृतिक शक्ति होती है। ये अंतर्दृष्टि विचारधारा की मार्क्सवादी अवधारणा के साथ झूठी चेतना के रूप में प्रतिध्वनित होती है, लेकिन ग्राम्शी का दृष्टिकोण आधिपत्य के समर्थन की सहमतिपूर्ण प्रकृति पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है। यदि लोग किसी विशेष सामाजिक व्यवस्था को प्राकृतिक मानते हैं, तो वे इसका विरोध करने के लिए बहुत कम इच्छुक होते हैं और प्रभावी रूप से इसके लिए सहमति भी देते हैं। हालाँकि ग्राम्शी ने मुख्य रूप से घरेलू राजनीति के बारे में लिखा था, लेकिन उन्होंने माना कि आधिपत्य की गतिशीलता 'राष्ट्रीय और महाद्वीपीय सभ्यताओं के परिसरों के बीच' वैश्विक क्षेत्र तक फैली हुई है।

बाद के व्यक्ति, जैसे कि कनाडाई सिद्धांतकार रॉबर्ट डब्ल्यू कॉक्स (1926–2018), ने वैश्विक क्षेत्र में सिद्धांतों और विचारों के आधिपत्य को समझाने में ग्राम्स्की की अंतर्दृष्टि को अत्यधिक प्रासंगिक पाया। यह आधिपत्य की उन अवधारणाओं से भिन्न है जो केवल भौतिक (मुख्य रूप से आर्थिक और सैन्य) क्षमताओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं। कॉक्स (1981 : पृष्ठ 128) यह घोषणा करने के लिए जाने जाते हैं कि 'सिद्धांत हमेशा किसी के लिए, और किसी उद्देश्य के लिए होता है'। दूसरे शब्दों में कहें तो, तथ्यों के चयन और व्याख्या में सिद्धांत कभी भी तटस्थ नहीं होते हैं – वे उन लोगों के व्यक्तिपरक मूल्यों और हितों का प्रतिबिंब होते हैं जो उन्हें तैयार करते हैं और इसलिए, उन मूल्यों और हितों का दृढ़ता से समर्थन करते हैं। इसका अर्थ यह है कि तथ्य और मूल्य एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से मौजूद नहीं हैं।

कॉक्स ने तर्क दिया कि यथार्थवाद यथास्थिति की विचारधारा है, जो मौजूदा वैश्विक व्यवस्था का समर्थन करती है और इसलिए इसके तहत समृद्ध होने वालों के हितों का समर्थन करती है। इसके अलावा, इसे स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करके, मौजूदा व्यवस्था को अपरिहार्य और अपने मूल तत्वों में अपरिवर्तनीय माना जाता है। व्यवस्था के भीतर आने वाली किसी भी कठिनाई को उस व्यवस्था के मापदंडों के भीतर हल की जाने वाली समस्याओं के रूप में देखा जाता है। व्यवस्था को कभी चुनौती नहीं दी जाती। बल्कि, हमें इसे इस आधार पर स्वीकार करने के लिए कहा जाता है (समकालीन कैचफ्रेज का उपयोग करने के लिए) कि यह वही है जो यह है।

कॉक्स और अन्य आलोचनात्मक सिद्धांतकारों ने जोर देकर कहा है कि कोई भी व्यवस्था 'प्राकृतिक' या परिवर्तन से अछूती नहीं है। सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ, सबसे छोटे समुदाय से लेकर पूरी दुनिया तक, मानवीय रूप से निर्मित हैं और सिद्धांत रूप में उन्हें अधिक न्यायसंगत और समतापूर्ण तरीके से पुनर्निर्मित किया जा सकता है। सीटी का उद्देश्य अनुचित और अन्यायपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं से मुक्ति के लिए बौद्धिक ढांचा प्रदान करना है जो बहुतों की कीमत पर कुछ लोगों को लाभ पहुँचाती हैं। जिस हद तक

उदारवाद अन्याय को कायम रखने में भाग लेता है, खासकर पूंजीवाद के माध्यम से, यह एक समान आलोचना के अधीन है। कॉक्स वैश्वीकरण के एक प्रमुख आलोचक बन गए, उन्होंने तर्क दिया कि यह घटना केवल प्रमुख, चल रही तकनीकी प्रगति का अपरिहार्य परिणाम नहीं है, बल्कि पूंजी और श्रम दोनों के विनियमन को बढ़ावा देने वाली एक आधिपत्यवादी विचारधारा द्वारा समर्थित है, जो बाद के लिए काफी नुकसानदेह है (ग्रिफिथ्स, रोच और सुलिवन देखें।

एंड्रयू लिंकलेटर जैसे समकालीन लेखकों ने हैबरमास की मुक्ति संबंधी चिंताओं को वैश्विक क्षेत्र तक बढ़ाया है, खासतौर पर इस संबंध में कि राज्य की सीमाएं नैतिक चिंताओं की सीमाओं को कैसे दर्शाती हैं। सबसे रचनात्मक आलोचनात्मक सिद्धांतकार मौजूदा सिद्धांतों और प्रथाओं की मात्र आलोचना से आगे बढ़कर वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं कि दुनिया कैसी हो सकती है (और होनी चाहिए)। उदाहरण के लिए, राजनीतिक समुदायों की अवधारणा और संरचना के तरीके के लिए परिवर्तनकारी संभावनाओं के बारे में लिंकलेटर के विचार, इस तरह के दृष्टिकोण को स्थापित करते हैं। हालाँकि आधुनिकता का एक स्याह पक्ष है, लेकिन उनका तर्क है कि यह अभी भी अपने भीतर ज्ञानोदय के मूल उद्देश्यों के बीज रखता है जो अंतिम विश्लेषण में, लोगों को कई तरह की बाधाओं, पूर्वाग्रहों और शोषणकारी प्रथाओं से मुक्ति दिलाने के बारे में हैं। और जबकि आधुनिकता ने हमें वेस्टफेलियन राज्य प्रणाली दी, 'आधुनिकता की अधूरी परियोजना' एक उत्तर–वेस्टफेलियन दुनिया की परिकल्पना करती है जिसमें राजनीतिक समुदायों के रूप में राज्य अब समावेश और बहिष्कार की सेवा में काम नहीं करते हैं। उनका सुझाव है कि यह परिवर्तन सबसे अधिक संभावना उसी क्षेत्र में होने की है जिसने सबसे पहले उस प्रणाली को जन्म दिया और जिसने तब से यूरोपीय संघ को जन्म दिया है, जो खुद काफी मानक क्षमता वाली परियोजना है (लिंकलेटर, 1998 देखें)। हेबरमास भी यूरोपीय परियोजना में बहुत ही समान संभावनाएँ देखते हैं (बॉक्स 4.3 देखें)। हालाँकि, ब्रेक्सिट और पूरे महाद्वीप में दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी लोकलुभावनवाद के उदय के साथ हाल के घटनाक्रमों के मद्देनजर, ऐसा लगता है कि इस परियोजना को अभी बहुत लंबा रास्ता तय करना है, और यह काफी समय तक रुकी रह सकती है (आमतौर पर, मार्टिल और स्टैगर, संपादक, 2018 देखें)।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अलथुसर, लुइस। 1965. 'सिद्धांत, सैद्धांतिक अभ्यास और सैद्धांतिक गठन' अनुवादक : जेम्स कैवनौघ, ग्रेगरी इलियट एड. 'दर्शन और वैज्ञानिकों का सहज दर्शन।' लंदन : वर्सो।
2. अलथुसर, लुइस. 1969. 'मार्क्स के लिए'। अनुवादक : बी. ब्रूस्टर. लंदन और न्यूयॉर्क : वर्सो।
3. अलथुसर, लुइस. 1971. 'लेनिन और दर्शन, और अन्य निबंध, अनुवादक : बी. ब्रूस्टर. लंदन : न्यू लेफ्ट बुक्स, और न्यूयॉर्क : मंथली रिव्यू प्रेस।
4. अलथुसर, लुइस. 1974. "आत्म–आलोचना के तत्व''. पेरिस : हेचेट।

shyjukas@gmail.com

9656398746

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 107-109

युवा भागीदारी के मार्ग में आने वाली बाधाएं व चुनौतियां

डॉ. अल्का
टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

व्यवस्थाओं में युवाओं की तय पूर्ण भागीदारी होती है। इन्ही के बल पर समाज को गति प्रदान की जाती है। भारत के सदर्भ में देख जाएतो यहीं सबसे ज्यादा युवा है। न्छक्च की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के दुवाओं की आबादी पच्चीस करोड़ के लगभग है। वहीं चीन की युवा आबादी सत्रह करोड़ है। जिस पर तेजी से भारत की जनसंख्या बढ़ रही है। ऐसा लगता है कि भारत चीन को पीछे छोड़ कर दुनियां का पहला देश बन जाएगा जनसंख्या की दृष्टि से। सरकार ने स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस 12 जनवरी को राष्ट्रीय युवा दिवस मनाने की घोषणा की। स्वामी विवेकानन्द एक महान समाज सुधारक एवं दार्शनिक थे। उनके पदचिन्हों पर चलकर युवा आज भी अपने सपनों को साकार कर सकता है। उनका विचार था कि जब तक युवा अपनी जन्मभूमि को नहीं समझेंगे, तब तक हम विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकते। पश्चिमीवाद की भौतिकतावाद से हमें दूरी बना कर भारत की परम्परा, धर्म–अध्यात्मक और वेदों की ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा।

हमें अपने अतीत को ध्यान में रखते हुए विकास के रास्ते पर बढ़ाना होगा। जहाँ ''युवा शक्ति'' ने भारत के लिए अनेक अवसर प्रदान किए है वही कई चुनौतियां व बाधाओं ने युवाओं के मार्ग में अनेक समस्याएं पैदा की है। इन युवाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा व अनेक कौशल की जरूरत है। जिससे ये देश की अर्थव्यवस्था में पूरी–पूरी भागीदारी निभा सके। आज के युवाओं के लिए सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी की समस्या है। गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की कमी के कारण युवाओं के सामने पूरे नहीं हो पा रहे है। कहीं न कहीं युवा वर्ग अपने आप को सहाय महसूस कर रहा है। नैतिक शिक्षा की कमी के कारण वह खुदखुशी जैसे मार्ग चुन रहा है। एक सभ्य समाज के लिए यह अच्छा संकेत नहीं है। आने वाले समय में भारत की युवा पीढ़ी को व्यवसायिक व तकनीकी शिक्षा प्रदान करके उन्हें अन्य देशों के मुकाबले खड़ा किया जा सकता है। युवा वर्ग भारत के अतीत के गौरव है। उन्हीं सही मार्ग दर्शन देकर प्रतिभा पलायन को रोका जाए और उनके सीखे हुए मूल्यों को भारत के महत्वपूर्ण विकास के लिए लगाया जाए। युवाओं को स्वामी विवेकानन्द की तरह खुद अपनी समस्याओं से लड़ना होगा।

चुनौतियां और बाधाएं :-

युवा एजेंडा तय करने का विचार इस बात से आया कि इक्कीसवीं सदी में देश के विकास में युवाओं की भूमिका को लेकर एक नीतिगत पहल की आवश्यकता है वे इसीलिए भी आवश्यक है क्योंकि भारत के पास जनसांख्यिकीय लाभांश के अनुकूलतम दोहर का स्वर्णिम अवसर है। साथ ही नई तकनीकों द्वारा प्रदत्त संचार सुविधा एवं सामाजिक गतिशीलता युवा विकास के लिए अधिक प्रेरित करती है। इन विचारों ने एशिया प्रदान

किया जिससे भारत के विकास में युवाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जा सवाईएलटीटी ने जनसांख्यिकीय लाभांश को एक महत्वपूर्ण आर्थिक योगदान से जारी कर एक समय दृष्टिकोण से देखने का भी प्रयास किया है।

जहां एक ओर पिछले कुछ दशकों की नीतियां से कई युवा समूहों को विकास प्रक्रिया उसके है वही इसका एक बड़ा हिस्सा इस पूरी प्रक्रिया से बहिष्कृत महसूस कर रहा है। हिंडा तय करने के लिए जब हमने इन विविध युवा समूहों से संपर्क किया तो ये बात और रूप से सामने आई। ये पूरी प्रक्रिया अग्रलिखित कारणों से अनेक कठिन और सुनातील रहीं। बहिष्कृत युवा समूहों से संवाद स्थापित करना, उपयुक्त विशेषज्ञों की समान भूलि (Expathy) सुनिश्चित करना। एजेंडा तय करने की पूरी पद्धति में कई संशोधन किए गए। इमने परिदृश्य रचना (Scenario Building) का प्रयास किया ताकि विशेषज्ञों की राय को उपयुक्त महत्व दिया जा सके और इसे अन्य विशेषज्ञों के संदर्भ में परिमाणित (Quantify) किया जा सके।

आंकड़ा एकत्रण :-

विशेषज्ञों की पहचान करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था लेकिन वाईएलटीटी द्वारा तैयार की गई प्रश्नावली पर उनके उत्तर लेना और भी कठिन था। विशेषज्ञों को युवा एजेंडा की जरूरत और इसके लिए एकत्रित आंकड़ों के महत्व के बारे में पूरी जानकारी दी गई थी। विशेषज्ञों की प्रतिक्रिया कुछ हद तक संतोषजनक थी लेकिन इसमें बहुत समय लगा और यह प्रक्रिया विशेषज्ञों के लिए काफी नवीन भरी भी थी और कुछ अवसरों पर हमें प्रक्रिया के कुछ हिस्से को छोड़ना पड़ा। लेकिन इससे हमारा विश्लेषण प्रभावित नहीं हुआ। क्योंकि विश्लेषण की इकाई विशेषज्ञ ना होकर विषय विशेष और समूह विशेष थी। हालांकि विशेषज्ञों से संपर्क करने और उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए इंटरनेट और संबंधित तकनीकों का बड़े स्तर पर इस्तेमाल करना प्रस्तावित था लेकिन अंततः टेलीफोन पर बातचीत और वैयक्तिक मेलजोल से ये सब संभव हो सका। कुछ साक्षात्कारकर्ताओं के काम में मुद्दों और आंकड़े एकत्रित करने की पद्धति को पूरी तरह ना समझ पाने के कारण भी बाधा आई। इस प्रकार की शोध प्रक्रियाओं में आंकड़ा एकत्रण से संबंधित समस्याओं से निपटने के लिए हमने विशेषज्ञ चयन के मापदंडों को शिथिल किया और मुद्दों की बेहतर व्याख्या की।

आंकड़ा विश्लेषण :-

हमारे बेहतर प्रयासों के बावजूद हम अपनी परिकल्पनाओं (Hypothess) के सत्यापन हेतु आवश्यक सांख्यिकीय परीक्षणों के लिए पर्याप्त आंकड़े एकत्रित नहीं कर सके। आंकड़ों के विश्लेषण के पहले स्तर पर हमने परिणामों को निम्नलिखित तीन प्रकार के परिदृश्यों के संदर्भ में सारणीबद्ध तरीके से प्रस्तुत किया।

मुद्दे के समाधान की दिशा में ईमानदार और सच्चे प्रयास किए जाए।

1. मुद्दे के संदर्भ में प्रयासों की वर्तमान स्थिति बनी रहे।
2. मुद्दे की पूर्ण रूप से उपेक्षा की जाए।
3. इन परिदृश्यों के अंतर्गत अगले पांच से दस वर्षों में इन मुद्दों के भावी स्वरूप के पूर्वानुमान का प्रयास किया गया।

अगले चरण में हमने इन मुद्दों पर विशेषज्ञों के साथ चर्चा की और ये देखा कि क्या हमने सभी प्रासंगिक और महत्वपूर्ण मुद्दों को पहचान लिया है और क्या कोई अति महत्त्वपूर्ण मुद्दा छूट तो नहीं गया है। हमने ये भी

जानने की कोशिश की कि इन चिंताओं का समाधान कैसे किया जाए। यहां ये बात ध्यान में रखना जरूरी है कि हमारा विश्लेषण विशेषज्ञों की राय और उनके द्वारा दी गई रेटिंग्स पर आधारित है और हमारी धारणा है कि ये विशेषज्ञ विभिन्न क्षेत्रों, आयु वर्गों और समाज के अलग–अलग तबकों के युवाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह मान्यता दोषपूर्ण हो सकती है। जिससे कि आंकड़ों और उनके विश्लेषण की वस्तुनिष्ठता सीमित हो जाती है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों और कई विधियों से प्राप्त निष्कर्षों के सत्यापन के द्वारा इस समस्या को न्यूनीकृत करने का प्रयत्न किया गया।

जनसांख्यिकीय लाभांश की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि देश के सामने खड़ी चुनौतियों को युवाओं के दृष्टिकोण से देखा और समझा जाए से महत्वपूर्ण है कि मुद्दों को उनकी गंभीरता, उनसे प्रभावित जनसंख्या और संभावित परिदृश्य के आधार पर प्राथमिकता दी जाए क्योंकि संसाधनों की सीमितता के कारण सभी समस्याओं को एक साथ नहीं सुलझाया जा सकता। साथ ही चूंकि कई मुद्दे अंतर्संबंधित हैं और समान कारणों से उपजते हैं, अतः उच्च प्राथमिकता के एक मुद्दे के समाधान से उससे जुड़े कई अन्य वैसे मुद्दे सभी जो सतही तौर पर असंबद्ध लग सकते हैं. स्वतः ही हल हो जाएंगे। इसके साथ ही ये भी बेहद जरूरी है कि नीति निर्धारकों को इन मुद्दों के संभावित समाधान हेतु समुचित 2 सुझाव और सिफारिशें दी जाएं। इसीलिए वाईएलटीटी का विश्वास है कि युवा एजेंडा, मुद्दों को प्राथमिकता के आधार पर पहचानने, भविष्य में उनके संभावित परिदृश्य को सामने लाने और उनके समाधान के लिए संमावित समाधान ढूंढने में सफल होना चाहिए। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, वाईएलटीटी ने भारत के लिए युवा एजेंडा तैयार करने का प्रयास किया है। देश की अंतर्निहित विविधताओं को ध्यान में रखते हुए हमने अधिकतम संभावित स्रोतों से संकेन्द्रित और विकेचित (Top Down और Bottom up) तरीकों द्वारा सूचनाओं और विचारों को एकत्रित करते हुए मुद्दा के विश्लेषण का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मिश्रा. एस.एन. एवं अन्य न्यू पंचायती राज इन एक्शन मित्तल पटि वर्ष 20151
2. मिश्रा, आर.वी. लोकल लेवल प्लानिंग एण्ड डेवलपमेन्ट हेरिटेज नई दिल्ली वर्ष 2016 एमजेड, रोजाल्डो, तुमेन कल्चर एण्ड सोसाइटी, ए ध्योरिकल और स्टेनको।
3. बुनिवर्सिटी प्रेस कैलीफोर्निया प्रेस वर्ष 20161 आर. डब्लू, कैनल, जेन्डर एण्ड पॉवर पॉजिटी प्रेस, कैम्ब्रिज यूकेलार वर्ष 2017।
4 पंचायती राज संस्थाओं का सशक्तिकरण (संकलन) इन्दिरा गाँधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर, जून जुलाई वर्ष 2018।
5. सिंह, अवतार लीडरशिप पैटनर्स एण्ड विलेज स्ट्रक्चर : स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि. जालंधर, वर्ष 2018।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 110–116

स्वतंत्र भारत में भारतीय शिक्षा व्यवस्था का परिदृश्य

Surendra Kumar Pareek
Assistant Professor, Department of Education
Institute of Advanced Studies in Education, (Deemed to be University), Sardarshahar, Rajasthan.

परिचय :-

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, और भारत में यह स्वतंत्रता के बाद से परिवर्तन का एक प्रमुख कारक रही है। वर्षों से, देश ने व्यापक शैक्षिक सुधारों का अनुभव किया है, जो 1947 में एक बड़े पैमाने पर निरक्षर समाज से एक प्रमुख वैश्विक शैक्षिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ है। साक्षरता दर बढ़ाने, उच्च शिक्षा के विस्तार और समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सरकारी पहल और नीतियाँ लागू की गई हैं। स्कूलों, विश्वविद्यालयों और तकनीकी संस्थानों की स्थापना ने भारत की सामाजिक–आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिससे शोध, नवाचार और कौशल विकास को बढ़ावा मिला है। इन सकारात्मक प्रगति के बावजूद, शिक्षा प्रणाली अब भी कई चुनौतियों का सामना कर रही है, जो इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक असमान पहुँच, पारंपरिक शिक्षण विधियाँ, उद्योग से संबंधित कौशल की कमी और रटने पर अत्यधिक निर्भरता जैसी समस्याएँ प्रमुख चिंताओं में शामिल हैं। इसके अलावा, शहरी और ग्रामीण शिक्षा के बीच असमानता, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा और डिजिटल विभाजन ने सीखने की खाई को और अधिक गहरा कर दिया है। आज के गतिशील युग में, एक अधिक छात्र–केंद्रित, तकनीकी–एकीकृत और कौशल–आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक स्पष्ट हो गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की शुरुआत ने भारत की शिक्षा प्रणाली में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। यह नीति लचीलापन, बहु–विषयक शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षण पर जोर देकर शिक्षा को अधिक व्यावहारिक और उद्योग–उन्मुख बनाने का लक्ष्य रखती है। डिजिटल टूल्स, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शोध–आधारित शिक्षण पद्धतियों के उपयोग से छात्रों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करने की उम्मीद की जाती है। इसके अलावा, ऑनलाइन शिक्षा, एडटेक समाधान और डिजिटल इंडिया जैसी पहलों की बढ़ती उपस्थिति विशेष रूप से दूरदराज और वंचित क्षेत्रों के छात्रों के लिए शिक्षा की पहुँच में सुधार करने की क्षमता रखती है। भारत यदि एक वैश्विक ज्ञान शक्ति के रूप में उभरना चाहता है, तो सतत नवाचार को बढ़ावा देना, शिक्षकों के प्रशिक्षण में सुधार करना और दूरदर्शी शैक्षिक नीतियों को लागू करना आवश्यक होगा। भारतीय शिक्षा प्रणाली का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि वह बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप कितनी तेजी से अनुकूलन कर सकती है, प्रौद्योगिकी का लाभ उठा सकती है और एक समावेशी एवं गतिशील शिक्षण वातावरण को बढ़ावा दे

सकती है। यह लेख भारत के शिक्षा क्षेत्र की ऐतिहासिक प्रगति, उपलब्धियों और मौजूदा चुनौतियों की चर्चा करता है और एक अधिक प्रभावी और समान शैक्षिक ढाँचा विकसित करने के संभावित उपायों की पड़ताल करता है।

ऐतिहासि पृष्ठभूमि :-

स्वतंत्रता से पहले, भारत की शिक्षा व्यवस्था ब्रिटिश साम्राज्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिजाइन की गई थी, न कि भारतीय जनता के लिए। ब्रिटिश शासन के तहत, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ऐसे कर्मचारियों, प्रशासनिक अधिकारियों और निम्न–स्तरीय सरकारी अधिकारियों का निर्माण करना था जो उपनिवेशी शासन में सहायता कर सकें। इसके परिणामस्वरूप, अधिकांश जनसंख्या, विशेष रूप से महिलाएं, ग्रामीण इलाकों के लोग और दलितों और आदिवासियों जैसी हाशिये पर रहने वाली जातियां शिक्षा से वंचित थीं। 1947 में भारत की साक्षरता दर केवल 12 प्रतिशत थी, जो व्यापक अशिक्षा और समाज के बड़े हिस्से के औपचारिक शिक्षा से बाहर होने को दर्शाता है। औपनिवेशिक काल की शिक्षा व्यवस्था अभिजात्यवादी थी, जहां अधिकांश विद्यालय शहरी क्षेत्रों में स्थित थे और शासक वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिजाइन किए गए थे। पाठ्यक्रम मुख्य रूप से ब्रिटिश हितों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था, और इसमें भारत के इतिहास, संस्कृति या स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों का बहुत कम ध्यान रखा गया था। विशेष रूप से महिलाएं, शिक्षा तक पहुंच में गंभीर प्रतिबंधों का सामना करती थीं, जिससे देश में लिंग असमानता और भी बढ़ गई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारत के नेताओं ने एक समावेशी और प्रगतिशील शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता को पहचाना, जो देश को ऊंचाइयों तक पहुंचा सके और जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके। सरकार ने साक्षरता को बढ़ाने और शिक्षा तक पहुंच को फैलाने के लिए कई पहलों की शुरुआत की। एक महत्वपूर्ण कदम 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना थी, जिसका उद्देश्य देशभर में उच्च शिक्षा संस्थानों को बढ़ावा देना और उनकी गुणवत्ता और सुलभता सुनिश्चित करना था। स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में प्राथमिक शिक्षा को बढ़ाने और देशभर में नए शैक्षिक संस्थान स्थापित करने के लिए भी महत्वपूर्ण प्रयास किए गए। विभिन्न नीतियां बनाई गईं ताकि नामांकन दर में वृद्धि हो, विशेष रूप से लड़कियों के लिए, और शिक्षा तक पहुंच में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर किया जा सके। मध्यान्तर भोजन योजना और वयस्क साक्षरता कार्यक्रम जैसी पहलों ने हाशिये पर रहने वाली जातियों के लिए शिक्षा की बाधाओं को समाप्त करने के लिए कदम उठाए और समाज के सभी वर्गों से भागीदारी को प्रोत्साहित किया।

1960 और 1970 के दशकों में, भारत ने औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण पर ध्यान केंद्रित किया। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान और भारतीय प्रबंधन संस्थान जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य एक कुशल कार्यबल तैयार करना था जो विभिन्न क्षेत्रों में देश की प्रगति को बढ़ावा दे सके।

प्रयास केवल शैक्षिक संस्थानों की संख्या बढ़ाने के नहीं थे, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए भी किए गए थे। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को मजबूत करने, पाठ्यक्रम विकल्पों का विस्तार करने और शिक्षण विधियों में नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए नीतियां बनाई गईं। हालांकि, अवसंरचना की कमी, योग्य शिक्षकों की कमी और शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं के बीच असमानताएं जैसे चुनौतियां बनी रहीं और एक सच्ची समावेशी शिक्षा प्रणाली के विकास में रुकावट डालती रहीं।

इन प्रारंभिक प्रयासों के बावजूद, भारत की शिक्षा व्यवस्था ने यह सुनिश्चित करने में चुनौती का सामना किया कि सभी नागरिकों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध हो। 21वीं सदी में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जाने लगे, विशेष रूप से 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के लागू होने के बाद, जिसने प्राथमिक शिक्षा को प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया। इसके अलावा, माध्यमिक और उच्च शिक्षा को मजबूत करने, शिक्षा में डिजिटल उपकरणों को शामिल करने और वैश्विक अर्थव्यवस्था की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए कौशल विकास पर ध्यान केंद्रित करने के लिए सुधारों की शुरुआत की गई।

अंत में, स्वतंत्रता के बाद भारत ने शिक्षा सुधार और विस्तार की लंबी यात्रा की, जिसका उद्देश्य औपनिवेशिक युग से विरासत में मिली असमानताओं को समाप्त करना था। जबकि देश ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, पहुंच, गुणवत्ता और समावेशिता से संबंधित चुनौतियां बनी हुई हैं। फिर भी, एक समतामूलक, प्रगतिशील और वैश्विक प्रतिस्पर्धी शिक्षा प्रणाली का दृष्टिकोण भारत के प्रयासों को आकार देता है, यह सुनिश्चित करता है कि शिक्षा देश की भविष्य की वृद्धि और विकास के लिए एक मजबूत आधार बने।

भारतीय शिक्षा में विकास के प्रमुख चरण :

1. स्वतंत्रता के बाद के सुधार (1947-1986)

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) और माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) ने स्वतंत्र भारत में उच्च और माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए एक व्यापक ढांचा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन आयोगों ने शिक्षा में एक मजबूत नींव की आवश्यकता पर जोर दिया, ताकि बौद्धिक विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा मिल सके। इनके सुझावों ने महत्वपूर्ण सुधारों को जन्म दिया, जैसे विश्वविद्यालयों का विस्तार और भारत की विविध सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों का परिचय। 1968 की शिक्षा नीति, जो कोठारी आयोग (1964–66) की सिफारिशों से प्रेरित थी, एक ऐतिहासिक पहल थी जो शिक्षा को और अधिक समावेशी और सुलभ बनाने का प्रयास करती थी। इस नीति ने सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के महत्व को पहचाना और विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा तक पहुँच में असमानताओं को दूर करने का लक्ष्य रखा। विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को बढ़ावा देकर, इस नीति ने भाषाई विभाजन को पाटने और सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देने की कोशिश की, जिससे शिक्षा छात्रों के विभिन्न पृष्ठभूमियों से संबंधित और सुलभ हो सके।

1976 का संवैधानिक संशोधन, जिसने शिक्षा को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया, भारत में एक एकीकृत शिक्षा प्रणाली बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस बदलाव ने केंद्रीय और राज्य सरकारों के बीच शिक्षा नीतियों के निर्माण में अधिक सहयोग को संभव बनाया, जिससे एक अधिक समन्वित और संगठित दृष्टिकोण अपनाया जा सका। इसने राष्ट्रीय शैक्षिक मानकों के कार्यान्वयन को सुविधाजनक बनाया, जबकि क्षेत्रीय मुद्दों का भी समाधान किया। यह बदलाव कई आगामी शैक्षिक सुधारों की नींव रखी, जिनमें 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का परिचय शामिल था, जिसने सभी नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य को आगे बढ़ाया। इन पहलों के संयुक्त प्रयासों ने भारत में एक अधिक समावेशी, सुलभ, और गुणवत्ता–प्रधान शिक्षा प्रणाली के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया, जो देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और 1992

1986 की शिक्षा नीति भारत के शैक्षिक परिदृश्य को बदलने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी, जिसमें

शिक्षा को सभी के लिए सुलभ और समावेशी बनाने पर जोर दिया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिककरण था, ताकि प्रत्येक बच्चा, चाहे उसका सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि कोई भी हो, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सके। इस लक्ष्य का उद्देश्य निरक्षरता को समाप्त करना और भविष्य की पीढ़ियों के लिए मजबूत शिक्षा की नींव स्थापित करना था। नीति ने उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने का भी प्रयास किया, जिसके लिए विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को मजबूत करने, उनकी स्वायत्तता बढ़ाने और यह सुनिश्चित करने के उपाय किए गए कि वे समाज की बदलती जरूरतों के अनुसार प्रासंगिक और अद्यतन पाठ्यक्रम प्रदान करें।

इसके अतिरिक्त, नीति ने व्यावसायिक शिक्षा के महत्व को भी पहचाना, जो छात्रों को नौकरी के बाजार के लिए तैयार करती है। व्यावहारिक कौशल और तकनीकी प्रशिक्षण पर ध्यान केंद्रित करके, इस नीति का उद्देश्य शिक्षा और रोजगार के बीच की खाई को पाटना था, ताकि स्नातक विभिन्न उद्योगों में सफल होने के लिए आवश्यक कौशल प्राप्त कर सकें। इस समर्थन के लिए, नीति ने तकनीकी संस्थानों के विकास और विस्तार को बढ़ावा दिया, जिसमें पॉलिटेक्निक और इंजीनियरिंग कॉलेज शामिल हैं, जो इंजीनियरिंग, चिकित्सा और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में कुशल पेशेवरों की बढ़ती मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस नीति द्वारा पेश की गई एक महत्वपूर्ण पहल थी भारत में ओपन यूनिवर्सिटी प्रणाली की स्थापना। इस प्रणाली का उद्देश्य उन लोगों के लिए लचीली अध्ययन विकल्प प्रदान करना था, जो भौगोलिक कारणों, काम की प्रतिबद्धताओं या वित्तीय प्रतिबंधों के कारण नियमित, पारंपरिक शैक्षिक संस्थानों में भाग नहीं ले सकते थे। इसके परिणामस्वरूप 1985 में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जो भारत के शैक्षिक इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुआ। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने दूरस्थ शिक्षा में एक अग्रणी के रूप में कार्य किया, जो पत्राचार पाठ्यक्रमों के माध्यम से विभिन्न स्नातक, स्नातकोत्तर और डिप्लोमा कार्यक्रमों की पेशकश करता था। इस पहल ने उच्च शिक्षा तक पहुंच का विस्तार किया, विशेष रूप से गैर–परंपरागत छात्रों के लिए, जिनमें कार्यरत पेशेवर, ग्रामीण क्षेत्र के लोग और हाशिए पर रहने वाले समूह शामिल थे। सस्ती और लचीली अध्ययन के अवसर प्रदान करके, ओपन यूनिवर्सिटी प्रणाली ने शिक्षा को लोकतांत्रिक बनाने में मदद की और यह सुनिश्चित किया कि शिक्षा एक व्यापक जनसंख्या तक पहुंच सके, जो समग्र राष्ट्रीय विकास में योगदान करती है।

3. शिक्षा का अधिकार (आरटीई) और अन्य सुधार (2000–वर्तमान)

2009 का शिक्षा का अधिकार अधिनियम भारत में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर था, जिसने 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया। इस आयु वर्ग के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करके, आरटीई ने देशभर में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच में महत्वपूर्ण सुधार किया। इसने एक समान शैक्षिक माहौल की स्थापना की और लंबे समय से चले आ रहे असमानताओं को दूर करने में मदद की। 2020 में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने कई सुधारों के साथ शिक्षा प्रणाली को और अधिक परिवर्तित किया। सबसे महत्वपूर्ण बदलावों में से एक था 5+3+3+4 स्कूल संरचना की शुरुआत, जो पुराने 10+2 प्रणाली की जगह आई, और इसे बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के चरणों के साथ बेहतर तरीके से मेल खाने के लिए डिजाइन किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने कौशल विकास को भी प्राथमिकता दी, जिससे कोडिंग और अनुभवात्मक सीखने को प्रारंभिक स्तर पर ही स्कूलों में जोड़ा गया, ताकि छात्र वास्तविक दुनिया की चुनौतियों के लिए बेहतर तरीके से

तैयार हो सकें। नीति ने उच्च शिक्षा में लचीलापन और बहुविषयक दृष्टिकोण को भी बढ़ावा दिया, जिससे छात्रों को अपनी रुचियों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करने की स्वतंत्रता मिली, इस प्रकार एक समग्र और संतुलित शैक्षिक अनुभव को बढ़ावा दिया। इसके अलावा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा में प्रौद्योगिकी के उपयोग पर जोर दिया, और SWAYAM और DIKSHA जैसी पहलों के माध्यम से डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म प्रदान किए, जिससे शिक्षा के अंतर को पाटने में मदद मिली, विशेष रूप से दूरदराज और underserved क्षेत्रों में। कुल मिलाकर, ये सुधार एक समावेशी, अभिनव और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने का उद्देश्य रखते हैं, जो 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुसार बेहतर ढंग से अनुकूलित है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के समक्ष चुनौतियाँ :-

भारत ने शिक्षा तक पहुँच को विस्तारित करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन कई चुनौतियाँ प्रणाली की प्रभावशीलता में रुकावट डाल रही हैं। एक प्रमुख समस्या शिक्षा की गुणवत्ता है, विशेष रूप से सरकारी स्कूलों में, जहाँ उच्च नामांकन दरों के बावजूद, शिक्षण मानकों या शैक्षिक परिणामों में सुधार नहीं हुआ है। पाठ्यक्रम अक्सर तेजी से बदलती और तकनीक–प्रेरित दुनिया की आवश्यकताओं के अनुसार अद्यतन नहीं होता, जिससे छात्र आधुनिक जीवन की जटिलताओं के लिए तैयार नहीं होते। इसके अतिरिक्त, एक बड़ी संख्या में स्नातक रोजगार प्राप्त करने में असफल रहते हैं, क्योंकि शिक्षा प्रणाली और उद्योग की आवश्यकताओं के बीच अंतर है। कई छात्र अपनी पढ़ाई समाप्त करने के बाद व्यावहारिक कौशल या उद्योग–प्रासंगिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते, जो उन्हें कार्यबल में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है, जिससे उनकी रोजगार अवसरों में सीमितता होती है।

क्षेत्रीय विषमताएँ इस समस्या को और बढ़ाती हैं, क्योंकि ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में अभी भी उचित शैक्षिक ढाँचा की कमी है। इन क्षेत्रों में स्कूलों के पास बुनियादी सुविधाओं की कमी होती है जैसे कार्यशील कक्षाएँ, डिजिटल संसाधन और शिक्षण सामग्री, जिससे छात्रों को विशेष रूप से नुकसान होता है। शिक्षा प्रणाली का अत्यधिक निर्भरता परीक्षा और रटने की प्रक्रिया पर भी छात्रों में आलोचनात्मक सोच और रचनात्मकता के विकास को सीमित करती है। परीक्षा पर ध्यान केंद्रित करने से छात्रों में शॉर्ट–टर्म लर्निंग स्ट्रेटेजी की प्रवृत्ति होती है, बजाय इसके कि वे विषयों की गहरी समझ और नवाचार की सोच विकसित करें, जो आज के तेजी से बदलते समय में महत्वपूर्ण है।

इसके अलावा, शिक्षकों की कमी, विशेष रूप से ग्रामीण स्कूलों में, एक लगातार चुनौती है। इन क्षेत्रों में कई स्कूलों में योग्य शिक्षक नहीं होते या कम शिक्षक होते हैं, जिससे बड़ी कक्षाओं के लिए छात्रों की जरूरतों को पूरा करना कठिन हो जाता है। यह कमी छात्रों को उचित ध्यान न देने, पाठ योजना की अपर्याप्तता और समग्र शिक्षा गुणवत्ता में गिरावट का कारण बनती है। संसाधनों और योग्य शिक्षकों की कमी शहरी और ग्रामीण शिक्षा के बीच की खाई को और गहरा करती है, जिससे कम विकसित क्षेत्रों के छात्रों के लिए अवसरों की कमी होती है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक है कि समग्र सुधार किए जाएं, ताकि एक समान और प्रभावी शिक्षा प्रणाली बनाई जा सके। इन सुधारों को व्यावहारिक कौशल विकास, शिक्षक प्रशिक्षण में निवेश, क्षेत्रीय विषमताओं को संबोधित करने, और एक अधिक समग्र शैक्षिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने पर केंद्रित होना चाहिए, जो आलोचनात्मक सोच और नवाचार को प्रोत्साहित करें। इन मुद्दों को हल करके, भारत यह

सुनिश्चित कर सकता है कि इसकी शिक्षा प्रणाली छात्रों को वैश्विक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार करती है और आने वाली पीढ़ियों को सशक्त बनाती है।

सारांश :–

भारत का शिक्षा तंत्र स्वतंत्रता के बाद से गहरे परिवर्तन से गुजरा है, जो एक विखंडित और सीमित संरचना से बदलकर सार्वभौमिक पहुँच और समावेशी विकास की ओर अग्रसर हुआ है। समय के साथ, देश ने साक्षरता दर बढ़ाने, उच्च शिक्षा का विस्तार करने और शिक्षा में प्रौद्योगिकी का समावेश करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है। शिक्षा के अधिकार और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जैसे कानूनी उपायों ने इन प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, यह सुनिश्चित करते हुए कि हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त हो।

हालाँकि, अभी भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं। शिक्षा की गुणवत्ता, क्षेत्रीय असमानताएँ, और शिक्षा परिणामों और रोजगार योग्यताओं के बीच अंतर जैसी समस्याएँ जारी हैं। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में आज भी पुराना पाठ्यक्रम, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा, और योग्य शिक्षकों की कमी जैसी समस्याएँ हैं। हालांकि शिक्षा तक पहुँच में सुधार हुआ है, लेकिन प्रणाली अभी भी उन स्नातकों को तैयार करने में असमर्थ है जिनके पास आज के प्रतिस्पर्धात्मक नौकरी बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशल नहीं हैं। रटने और परीक्षा–केन्द्रित शिक्षा पर जोर देना छात्रों की आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता, और वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने की क्षमता को भी सीमित करता है।

आगे बढ़ते हुए, भारत का शिक्षा तंत्र एक महत्वपूर्ण मोड़ पर है, जो आगे के सुधारों और नवाचार के लिए तैयार है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, जो कौशल विकास, व्यावहारिक शिक्षा और प्रौद्योगिकी के समावेश पर जोर देती है, शिक्षा और रोजगार के बीच के अंतर को पाटने का प्रयास करती है। लचीले अध्ययन मॉडल और एक अंतरविभागीय दृष्टिकोण को पेश करना विभिन्न रुचियों और प्रतिभाओं को समायोजित करने का प्रयास करता है, जिससे समग्र विकास को बढ़ावा मिलता है। SWAYAM और DIKSHA जैसे डिजिटल प्लेटफार्मों ने विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की बाधाओं को समाप्त कर दिया है, जिससे ऑनलाइन शिक्षा की पहुंच अधिक से अधिक छात्रों तक हो रही है। इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक शिक्षा, कोडिंग, उद्यमिता और जीवन कौशल पर ध्यान केंद्रित करना छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान और विशेषज्ञता प्रदान कर रहा है, जो उन्हें एक जटिल और आपस में जुड़े हुए दुनिया में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

अंततः, भारत के शिक्षा तंत्र का भविष्य इस पर निर्भर करेगा कि वह छात्रों और समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार नवाचार और अनुकूलन में कैसे सक्षम होता है। शिक्षा को केवल शैक्षिक सफलता तक सीमित नहीं रखना चाहिए, बल्कि जीवन कौशल, रचनात्मकता और नेतृत्व क्षमताओं को भी पोषित करना चाहिए, ताकि छात्र 21वीं सदी की चुनौतियों और अवसरों का सामना कर सकें। समावेशिता, कौशल विकास और वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता को प्राथमिकता देते हुए, भारत एक मजबूत और गतिशील शिक्षा तंत्र का निर्माण कर सकता है, जो युवा शक्ति को सशक्त बनाता है और राष्ट्रीय विकास और समृद्धि की दिशा में प्रेरित करता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. अग्निहोत्री, ए. ''भारत में शिक्षा : चुनौतियाँ और अवसर'' जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, खंड 58, संख्या 3, 2019, पृ. 45–61

2. भटनागर, आर. ''स्वतंत्रता के बाद भारत में शैक्षिक सुधार'' एजुकेशनल रिव्यू ऑफ इंडिया, खंड 12, संख्या 2, 2016, पृ. 123–137
3. चौधरी, एस. ''स्वतंत्रता के बाद भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास'' इंडियन एजुकेशनल रिसर्च जर्नल, खंड 45, संख्या 1, 2020, पृ. 11–25
4. देसाई, ए. ''स्वतंत्र भारत में उच्च शिक्षा की भूमिका'' इंडियन जर्नल ऑफ हायर एजुकेशन स्टडीज, खंड 9, संख्या 4, 2018, पृ. 89–102
5. गुप्ता, पी. ''भारत में समावेशी शिक्षा के लिए संघर्ष'' सोशल साइंस रिव्यू, खंड 25, संख्या 2, 2017, पृ. 158–171
6. खान, एस. ''भारत में ब्रिटिश विरासत का शैक्षिक प्रणाली पर प्रभाव'' हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन क्वार्टरली, खंड 23, संख्या 1, 2015, पृ. 34–56
7. कुमार, ए. ''स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा : एक आलोचनात्मक विश्लेषण'' जर्नल ऑफ एजुकेशनल डेवलपमेंट, खंड 30, संख्या 3, 2020, पृ. 65–78
8. मिश्रा, आर. ''स्वतंत्र भारत में शिक्षा और समाज'' इंडियन एजुकेशन रिव्यू, खंड 16, संख्या 1, 2017, पृ. 120–132
9. नायर, एस. ''भारत में शिक्षा की गुणवत्ता और समानता : एक अवलोकन'' एजुकेशनल पॉलिसी एनालिसिस, खंड 19, संख्या 2, 2021, पृ. 56–74
10. पाठक, आर. ''स्वतंत्रता के बाद भारत में तकनीकी शिक्षा का विकास'' इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड टेक्नोलॉजी, खंड 5, संख्या 3, 2019, पृ. 145–160
11. राजपूत, एम. ''भारत में शिक्षा सुधारः स्वतंत्रता के बाद की चुनौतियाँ'' इंडियन एजुकेशन जर्नल, खंड 21, संख्या 2, 2018, पृ. 99–112
12. शर्मा, पी. ''भारत में ग्रामीण शिक्षा का पहुंच : एक उभरता हुआ मुद्दा'' इंडियन रूरल डेवलपमेंट जर्नल, खंड 4, संख्या 3, 2020, पृ. 47–59
13. सिंह, के. ''भारत में निजी संस्थाओं की शिक्षा प्रणाली में भूमिका'' जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन पॉलिसी, खंड 24, संख्या 1, 2016, पृ. 102–115
14. वर्मा, एस. ''शिक्षा सबके लिए : स्वतंत्रता के बाद भारत में सरकारी पहल'' पॉलिसी रिव्यू जर्नल, खंड 18, संख्या 2, 2019, पृ. 90–104
15. यादव, जे. ''भारत में सार्वभौमिक शिक्षा को लागू करने में चुनौतियाँ'' इंडियन एजुकेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च, खंड 22, संख्या 4, 2021, पृ. 34–46

Contact No. 7357193356
E-mail: pareeksurendra67@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 117–121

भारतीय समाज में परम्परागत सामाजिक संबंध एवं डिजिटल सामाजिक संबंध

डॉ. योगेश कुमार त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि), समाज शास्त्र विभाग,
महाराजा सुहेलदेव राज्य विश्वविद्यालय, आजमगढ़ (उ0प्र0)
डॉ. कमल कश्यप भास्कर
रामनगर, शंकरगंज, जौनपुर (उ0 प्र0)

सार :–

यह शोध पत्र ''परंपरागत सामाजिक संबंधों'' एवं ''डिजिटल युग में विकसित सामाजिक संबंधों'' का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। सामाजिक संबंध, 'मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं', जोकि समाज में 'भावनात्मक', 'मनोवैज्ञानिक' एवं 'सांस्कृतिक' जुड़ाव को बढ़ावा देते हैं। परंपरागत सामाजिक संबंध, आमने–सामने बातचीत व शारीरिक उपस्थिति पर आधारित होते हैं; जिनमें गहन भावनात्मक जुड़ाव, विश्वास एवं सामाजिक समर्थन की भूमिका होती है। यह संबंध 'पारिवारिक, सामुदायिक व सांस्कृतिक' मानदंडों के अंतर्गत विकसित होते हैं, तथा समाज में एकता–सहयोग को प्रोत्साहित करते हैं। यद्यपि, भौगोलिक दूरी व समय की बाधाएं इन संबंधों में सीमाएं उत्पन्न कर सकती हैं। डिजिटल युग में, सोशल मीडिया, मैसेजिंग एप्स एवं वीडियो कॉलिंग जैसे प्लेटफार्मों ने सामाजिक संबंधों की नई परिभाषा दी है। डिजिटल सामाजिक संबंधों में, 'वैश्विक जुड़ाव' व 'त्वरित संवाद' की सुविधा होती है, जोकि समय एवं स्थान की बाधाओं को समाप्त करती है। यह ऑनलाइन संबंध, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है एवं नए समुदायों के निर्माण का अवसर प्रदान करता है; तथापि डिजिटल संबंधों में, 'गोपनीयता उल्लंघन', 'सतही जुड़ाव', व 'साइबरबुलिंग' जैसी चुनौतियां भी सामने आती हैं; जोकि मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं। इस शोध में परंपरागत एवं डिजिटल संबंधों के विभिन्न पहलुओं की तुलना की गई है, जिसमें 'संचार माध्यम', 'भावनात्मक जुड़ाव', विश्वास निर्माण', एवं 'सामाजिक समर्थन' शामिल हैं। यह पाया गया कि ''परंपरागत संबंधों में भावनात्मक गहराई अधिक है, जबकि डिजिटल संबंध अधिक लचीले होते हैं''।

मुख्य शब्द :– संचार माध्यम, सामाजिक संबंध, डिजिटल सामाजिक संबंध, परम्परागत सामाजिक संबंध।

परिचय :–

''सामाजिक संबंध'', मानव अस्तित्व का एक अभिन्न हिस्सा हैं, जोकि व्यक्ति को समाज से 'जोड़ने',

'भावनात्मक समर्थन देने' एवं उसकी सामाजिक पहचान को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम जानते हैं कि 'पारंपरिक समाजों में', यह संबंध 'सांस्कृतिक', 'धार्मिक' एवं 'नैतिक मूल्यों' के आधार पर विकसित होते थे। व्यक्तियों के आपसी 'संवाद', 'सहयोग' एवं 'सामूहिक भागीदारी' के माध्यम से परंपरागत सामाजिक संबंधों का निर्माण होता था। ऐसे संबंधों में 'परिवार', 'मित्रता', 'पड़ोसी' एवं 'समुदाय के अन्य सदस्य' प्रमुख भूमिका निभाते थे। इनमें 'विश्वास', 'प्रतिबद्धता' एवं 'गहरी भावनात्मक निकटता' का विशेष महत्व होता था। हालांकि, 21वीं सदी में 'डिजिटल क्रांति' एवं 'प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास' के कारण सामाजिक संबंधों का स्वरूप तेजी से बदल गया है। इंटरनेट व सोशल मीडिया के आगमन ने एक नई प्रकार की सामाजिकता को जन्म दिया है; जिसे हम ''डिजिटल सामाजिक संबंध'' कहते हैं। देखा जाए तो पता चलता है कि इन संबंधों में व्यक्ति 'टेक्स्ट', 'ऑडियों' एवं 'वीडियों' के माध्यम से संवाद करता है। यह नए प्रकार का सामाजिक जुड़ाव 'स्थान एवं समय' की सीमाओं को समाप्त करता है, जिससे वैश्विक स्तर पर सामाजिक नेटवर्क का विस्तार संभव हो गया है। डिजिटल सामाजिक संबंधों में कई सकारात्मक पहलू भी हैं; जैसे कि 'त्वरित संवाद', 'नए लोगों से जुड़ाव', तथा 'व्यापक नेटवर्किंग'। इसके बावजूद, इन संबंधों में कुछ गंभीर चुनौतियां भी हैं; जिनमें 'सतही जुड़ाव', 'गोपनीयता उल्लंघन', 'साइबरबुलिंग' एवं 'डिजिटल लत' शामिल हैं। प्रस्तुत शोध पत्र छवि यह है कि यह ''परंपरागत–डिजिटल सामाजिक संबंधों की प्रकृति, विशेषताओं एवं सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करता है''।

परंपरागत सामाजिक संबंध :-

''परंपरागत सामाजिक संबंध'', मानव सभ्यता के आरंभ से ही सामाजिक संरचना का मूल आधार रहा है। इसके विषय में जब भी ध्यान जाता है तो 'सार्वभौमिक रूप' से ज्ञात होता है कि यह संबंध 'आध्यात्मिक', 'सांस्कृतिक' एवं 'नैतिक मूल्यों' से गहराई से जुड़े होते हैं; जोकि हमे न केवल सामाजिक रूप से बल्कि 'भावनात्मक' व 'आत्मिक' रूप से भी संबल प्रदान करते हैं; जैसा कि हम समझते हैं कि परंपरागत सामाजिक संबंधों की विशेषता यह है कि सदियों से चल रहे 'सामाजिक', 'सांस्कृतिक' एवं 'पारिवारिक' रीति–रिवाजों के आधार पर निर्मित होते हैं। 'परिवार' (जोकि सामाजिक संबंधों की पहली इकाई है) व्यक्ति को 'सुरक्षा', 'प्रेम' एवं 'नैतिक' शिक्षा प्रदान करता है। 'माता–पिता', 'भाई–बहन', 'दादा–दादी' व अन्य पारिवारिक सदस्य व्यक्ति के सामाजिक–आध्यात्मिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संबंधों में 'सह–अस्तित्व', 'दायित्व' एवं 'सहयोग' के सिद्धांत निहित होते हैं; जोकि व्यक्ति को जीवन के हर पहलू में मार्गदर्शन करते हैं; यद्यपि, परंपरागत सामाजिक संबंधों की कुछ अपनी सीमाएं भी प्रतीत होती हैं, देखा जाए तो इन संबंधों में कभी–कभी 'सामाजिक दबाव', 'रूढ़िवादिता' एवं 'पारिवारिक कलह' के कारण तनाव उत्पन्न हो सकता है। किन्तु बावजूद इसके, ऐसे संबंधों की मूल प्रकृति व्यक्ति को ''आत्मिक शांति, स्थायित्व और सुरक्षा प्रदान करना है''। वस्तुतः, परंपरागत सामाजिक संबंध ''केवल एक सामाजिक बंधन नहीं, अपितु एक आध्यात्मिक यात्रा भी हैं; जोकि व्यक्ति को मानवीय मूल्यों, सह–अस्तित्व व करुणा के पथ पर अग्रसर करते हैं''। इसीलिए यह संबंध सामाजिक एकता एवं जीवन के गहन अर्थ को समझने का माध्यम है, जोकि मनुष्य के अंतर्मन को स्थिरता एवं शांति प्रदान करते हैं।

डिजिटल सामाजिक संबंध :-

डिजिटल सामाजिक संबंधों का उदय ''डिजिटल युग'' में सामाजिक संबंधों का स्वरूप तीव्रता से बदला है। निश्चित रूप से डिजिटल संबंधों में व्यक्ति ''टेक्स्ट–वॉयस–वीडियो कॉल'' के माध्यम से संवाद करता है,

जिससे समय–स्थान की सीमाएं समाप्त हो जाती हैं। 'त्वरित संवाद क्षमता', 'भावनात्मक जुड़ाव' एवं 'नए समुदायों का निर्माण' डिजिटल संबंधों की सबसे प्रमुख विशेषता है। यदि हम चुनौतियों और सीमाओं पर ध्यान दे तो पता चलता है कि डिजिटल संबंधों की सबसे बड़ी चुनौती 'सतही जुड़ाव' है। यह संबंध अक्सर 'गहरे भावनात्मक स्तर' पर नहीं होते तथा केवल बाहरी जुड़ाव का आभास कराते हैं। 'गोपनीयता की समस्या' भी एक बड़ी चुनौती है; क्योंकि डेटा चोरी एवं साइबरबुलिंग जैसी समस्याएं मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं। विश्वास निर्माण की समस्या, 'डिजिटल संबंधों में पारदर्शिता की कमी भी एक महत्वपूर्ण समस्या है'। लोग अपनी असली पहचान छिपा सकते हैं या भ्रामक जानकारी प्रस्तुत कर सकते हैं, जिससे विश्वास का निर्माण कठिन हो जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से डिजिटल संबंध सीमित आत्मिकता प्रदान करते हैं। यह संबंध भले ही तात्कालिक आत्मिकता प्रदान करें, किंतु गहरे आत्मिकता के लिए परंपरागत संबंधों का महत्व बना रहता है। वास्तव में, 'डिजिटल सामाजिक संबंध' आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण देन हैं, जोकि वैश्विक स्तर पर जुड़ाव व संवाद को आसान बनाते हैं; फिर भी, इनके नकारात्मक पहलुओं को समझते हुए 'संतुलन' बनाए रखना आवश्यक है, जिससे कि व्यक्ति इनके लाभों का अधिकतम उपयोग कर सके।

परंपरागत एवं डिजिटल सामाजिक संबंधों की तुलना :-

परंपरागत एवं डिजिटल सामाजिक संबंधों को इस रूप में हम व्यक्त कर सकते हैं– (1) संवाद का माध्यम, परंपरागत सामाजिक संबंध आमने–सामने की बातचीत पर आधारित होते हैं, जिसमें व्यक्ति की शारीरिक उपस्थिति अनिवार्य होती है। इसके विपरीत, डिजिटल संबंध टेक्स्ट, ऑडियो एवं वीडियो माध्यमों पर निर्भर करते हैं। डिजिटल माध्यम त्वरित संवाद की सुविधा प्रदान करते हैं, लेकिन इसमें संवाद की गहराई अक्सर कम हो जाती है। (2) भावनात्मक जुड़ाव, परंपरागत संबंधों में भावनात्मक जुड़ाव गहरा होता है, क्योंकि इसमें व्यक्तियों के बीच लंबे समय तक की गई बातचीत एवं अनुभवों का आधार होता है। डिजिटल संबंधों में भावनात्मक गहराई अक्सर सतही होती है, क्योंकि यह आभासी दुनिया तक सीमित रह जाती है। (3) विश्वास निर्माण, विश्वास निर्माण परंपरागत संबंधों में धीरे–धीरे होता है और इसे समय और अनुभव से मजबूत किया जाता है। डिजिटल संबंधों में गोपनीयता की समस्या और झूठी पहचान की संभावना के कारण विश्वास कायम करना कठिन हो सकता है। (4) सामाजिक समर्थन, परंपरागत संबंधों में संकट के समय परिवार, मित्र और समुदाय से तत्काल समर्थन मिलता है। डिजिटल संबंधों में समर्थन उपलब्ध होता है, लेकिन यह आमतौर पर भावनात्मक से अधिक सूचनात्मक होता है। (5) समय–स्थान की बाधा, परंपरागत संबंध समय एवं स्थान की बाधाओं से सीमित हो सकते हैं। दूसरी ओर, डिजिटल संबंध भौगोलिक दूरी को समाप्त कर प्रत्येक क्षण जुड़ाव की सुविधा प्रदान करते हैं। (6) गोपनीयता व सुरक्षा, परंपरागत संबंधों में बातचीत अधिक सुरक्षित होती है, क्योंकि यह व्यक्तिगत स्तर पर होती है। डिजिटल संबंधों में डेटा चोरी, साइबर अपराध एवं निजी जानकारी के दुरुपयोग का खतरा हमेशा बना रहता है। उक्त आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि दोनों प्रकार के सामाजिक संबंधों में अपनी–अपनी विशेषताएं एवं सीमाएं हैं। जिसमें परंपरागत संबंध गहराई एवं स्थिरता प्रदान करते हैं; जबकि डिजिटल संबंध लचीलापन एवं त्वरित जुड़ाव की सुविधा देते हैं।

डिजिटल संबंधों का समाज पर प्रभाव :-

यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं है कि डिजिटल युग में सामाजिक संबंधों का समाज पर बहुआयामी

प्रभाव पड़ा है। इसने 'व्यक्ति' एवं 'समाज' के बीच 'संवाद' तथा 'सामाजिक जुड़ाव' के नए तरीके विकसित किए हैं। इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं; सकारात्मक प्रभाव, (1) वैश्विक जुड़ाव, डिजिटल माध्यमों ने लोगों को वैश्विक स्तर पर जोड़ा है, जिससे विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के बीच संवाद का आदान–प्रदान बढ़ा है। (2) सूचना का प्रसार, डिजिटल संबंधों ने सूचनाओं के त्वरित प्रसार को संभव बनाया है। (3) मानसिक समर्थन, डिजिटल समुदायों के माध्यम से लोग मानसिक समर्थन प्राप्त कर सकते हैं। अवसाद, चिंता या अन्य समस्याओं से पीड़ित व्यक्ति ऑनलाइन सहायता समूहों का लाभ उठा सकते हैं। (4) सामाजिक जागरूकता, डिजिटल माध्यमों का उपयोग सामाजिक अभियानों एवं जन–जागरूकता कार्यक्रमों के लिए किया जा सकता है। नकारात्मक प्रभाव, (1) सतही जुड़ाव, डिजिटल संबंध अक्सर सतही होते हैं, जिनमें गहरी भावनात्मक निकटता का अभाव होता है। यह व्यक्ति में अकेलापन व सामाजिक अलगाव की भावना पैदा कर सकता है। (2) साइबरबुलिंग एवं उत्पीड़न, साइबरबुलिंग एवं ऑनलाइन उत्पीड़न जैसी समस्याएं बढ़ी हैं, जोकि मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। (3) डिजिटल लत, डिजिटल संबंधों की बढ़ती लत ने लोगों को वास्तविक जीवन के सामाजिक संबंधों से दूर कर दिया है। यह पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में दूरी का कारण बन सकता है। (4) गोपनीयता का उल्लंघन, डिजिटल संबंधों में डेटा चोरी, हैकिंग एवं निजी जानकारी के दुरुपयोग का खतरा हमेशा बना रहता है। उपरोक्त के आधार पर हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि डिजिटल संबंधों ने समाज को एक नई दिशा दी है, जोकि संवाद एवं जुड़ाव को आसान बनाती है। हालांकि, इसके नकारात्मक प्रभावों को पहचानकर एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिससे कि समाज डिजिटल युग में सकारात्मक रूप से विकसित हो सके।

परंपरागत एवं डिजिटल सामाजिक संबंधों के बीच संतुलन :–

हम, यह कह सकते हैं कि डिजिटल युग में जहां इंटरनेट एवं सोशल मीडिया ने सामाजिक संबंधों का स्वरूप बदल दिया है, वहीं परंपरागत सामाजिक संबंधों का महत्व भी बना हुआ है। संतुलन बनाए रखने के लिए व्यक्ति को इन दोनों प्रकार के संबंधों के गुणों को समझना व अपनाना आवश्यक है। परंपरागत संबंध ''गहरे भावनात्मक जुड़ाव'', ''स्थिरता'' एवं ''व्यक्तिगत समर्थन'' प्रदान करते हैं। परिवार–दोस्तों के साथ बिताया गया समय 'मानसिक शांति' एवं 'आत्मिक संतुष्टि' प्रदान करता है। इसके विपरीत, डिजिटल संबंध 'लचीलापन', 'त्वरित संवाद' एवं 'नए अवसरों तक पहुंच' प्रदान करते हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि डिजिटल प्लेटफार्मों पर पारदर्शिता एवं विश्वास को बढ़ावा दिया जाए, जिससे कि डिजिटल संबंध भी गहराई एवं स्थायित्व प्राप्त कर सकें; क्योंकि संतुलन बनाकर ही व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन को 'संतुलित', 'संतुष्ट' एवं 'समृद्ध' बना सकता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :–

वर्तमान शोध पत्र के निष्कर्ष इस प्रकार से हैं, (1) परंपरागत एवं डिजिटल सामाजिक संबंध दोनों के अपने–अपने महत्व हैं; (2) परंपरागत संबंध गहराई एवं आत्मिक संतुष्टि प्रदान करते हैं; (3) डिजिटल संबंध त्वरित संवाद एवं वैश्विक जुड़ाव की सुविधा देते हैं; तथा (4) दोनों प्रकार के संबंधों के बीच संतुलन बनाए रखना सामाजिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। सुझाव, वर्तमान अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कुछ मुख्य सुझाव भी दिए जा सकते हैं, (1) संतुलित समय वितरण, परंपरागत व डिजिटल दोनों प्रकार के संबंधों

के लिए समय निर्धारित करना चाहिए; (2) डिजिटल प्लेटफार्मों का विवेकपूर्ण उपयोग, सोशल मीडिया का उपयोग सीमित रखना चाहिए व केवल आवश्यक संवादों पर ही ध्यान देना चहिये; (3) भावनात्मक जुड़ाव को प्राथमिकता देना चाहिए, व्यक्तिगत मुलाकातों और आमने–सामने की बातचीत के अवसर बढ़ाना चाहिए; (4) विश्वास एवं पारदर्शिता, डिजिटल संबंधों में भी विश्वास व पारदर्शिता को बढ़ावा देना चाहिए; तथा (5) डिजिटल डिटॉक्स का पालन, नियमित अंतराल पर डिजिटल उपकरणों से ब्रेक लेना चाहिए तथा परिवार व दोस्तों के साथ अधिक समय व्यतीत करना चाहिए। उक्त सुझावों को अपनाकर व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन को निश्चित रूप से अधिक समृद्ध और संतुलित बना सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. Calcagni, F., Amorim Maia, A. T., Connolly, J. J. T., & Langemeyer, J. (2019). Digital co-construction of relational values: Understanding the role of social media for sustainability. Sustainability Science, 14(5), 1309-1321.
2. Dolan, R., Conduit, J., Fahy, J., & Goodman, S. (2016). Social media engagement behaviour: a uses and gratifications perspective. Journal of strategic marketing, 24(3-4), 261-277.
3. Erstad, O., Hegna, K., Livingstone, S., Negru-Subtirica, O., & Stoilova, M. (2024). How digital technologies become embedded in family life across generations: scoping the agenda for researching 'platformised relationality'. Families, Relationships and Societies, 13(2), 164-180.
4. Gheorghe, I. R., Purcarea, V. L., & Gheorghe, C. M. (2018). Consumer eWOM communication: The missing link between relational capital and sustainable bioeconomy in health care services. Amfiteatru Economic, 20(49), 684-699.
5. Graham, S. L. (2015). Relationality, friendship, and identity in digital communication. In The Routledge handbook of language and digital communication (pp. 305-320). Routledge.
6. Spartin, Lark, and John Desnoyers-Stewart. "Digital Relationality: Relational aesthetics in contemporary interactive art." In Proceedings of EVA London 2022, pp. 150-157. BCS Learning & Development, 2022.
7. Vasileiadou, E. M., Missler-Ber, M., & Ullrich, S. (2011, April). Relational capital management of new ventures through virtual embeddedness and social media. In Proceedings of the European conference on intellectual capital.–2011.–? (pp. 447-461).
8. Whimster, S. (2018). Pure relationality as a sociological theory of communication. Frontiers in Sociology, 3, 304153
9. Wilding, R., Worrell, S., & Baldassar, L. (2025). DIGITAL EMPOWERMENT AND RELATIONALITY. Digital Empowerment for Refugee and Migrant Learners: Applying Strengths-Based Practice to Adult Education.

tripathiyogesh683@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 122–125

"मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी" : तृतीय लिंगी समुदाय के संघर्ष और स्वीकृति की यात्रा

डॉ. वी. गोविंद
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय कड़गंची।

शोध सार :–

भारतीय समाज में हिजड़ा समुदाय को लंबे समय से हाशिए पर रखा गया है। उन्हें तिरस्कार, भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। लेकिन समय–समय पर कुछ व्यक्तित्व ऐसे उभरते हैं, जो अपने साहस और संकल्प से न केवल अपनी पहचान स्थापित करते हैं, बल्कि पूरे समुदाय के लिए आवाज बन जाते हैं। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ऐसी ही एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपनी आत्मकथा "मैं हिजड़ा, मैं लक्ष्मी" के माध्यम से हिजड़ा समुदाय के संघर्ष, उनके अधिकारों और सामाजिक स्वीकृति की आवश्यकता को उजागर किया है।

यह शोध आलेख लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा के संदर्भ में हिजड़ा समुदाय के सामाजिक, सांस्कृतिक और कानूनी पहलुओं का विश्लेषण करेगा। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि कैसे लक्ष्मी ने अपने व्यक्तिगत संघर्षों को एक सामूहिक आंदोलन में परिवर्तित किया और ट्रांसजेंडर अधिकारों की लड़ाई में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बीज शब्द :– किन्नर, हिजड़ा, लैंगिक, एल जी बी टी क्यू, मुख्यधारा, असमानता, भेदभाव।

मूल आलेख :–

यह लेख लिखने का उद्देश्य आपके साथ संवाद स्थापित करना है। संवाद जो विचारों को जन्म दें। विचार जो विमर्शों की दुनिया के बीच हमें खड़ा करे। विमर्श जो सदैव चिंतनशील रहने के लिए प्रेरित करे। क्या यह चिंतन सदैव गतिशील रहा है? नहीं। इस चिंतन या विमर्श के पक्ष से सदैव किसी न किसी वर्ग का तिरस्कार होता रहा है। चिंतन का क्षेत्र सिर्फ भाषा या समाज तक आकर ही रुक जाना मात्र नहीं है बल्कि उसका अधिकार क्षेत्र प्रथमतः व्यक्ति है। वह व्यक्ति जिसने इस समाज की स्थापना की है। गौरतलब है कि मैं यहाँ व्यक्ति को मुख्य मान रहा हूँ। वह व्यक्ति जो सदैव अपने समाज या समुदाय को प्रगतिशील बनाने का स्वप्न देखता है लेकिन इन स्वप्नों के बीच हमारा यह समाज अवरोध का कार्य करता है। एक ऐसा ही व्यक्तित्व है लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी जिन्होंने अपनी लैंगिकता को व्यक्तिगत रूप से अनेक जटिलताओं के बाद स्वीकार किया। वे कहती हैं। "जब मैं पाँचवीं कक्षा में था, तब से गे लोगों के साथ रहता था। उनसे मिलता था, उनकी पार्टियों में जाता था।

पर धीरे–धीरे उनमें भी मुझे परायेपन का एहसास होने लगा था।"[1]

1910 में जर्मन सेक्सोलॉजिस्ट मैग्नस हिर्चफील्ड 'ट्रांसवेस्टेट' शब्द का प्रयोग करते हैं। सन् 1949 में 'ट्रांससेक्सुअल' शब्द सामने आता है। 1970 में 'सूजन स्टैंकर (ट्रांसजेण्डर) 19वीं शताब्दी के मध्य से 2000 के समय अमेरिकी ट्रांसजेण्डरी का इतिहास लिखते हैं तथा यह 2008 3 में काशिल होता है। स्टैंकर ट्रांसजेए परिभाषा कुछ इस प्रकार देते हैं। "People who move away from the gender they were assigned at birth.

1910 में जर्मन सेक्सोलॉजिस्ट मैग्नस हिर्चफील्ड 'ट्रांसवेस्टेट' शब्द का प्रयोग करते हैं। सन् 1949 में 'ट्रांससेक्सुअल' शब्द सामने आता है। 1970 में 'सूजन स्टैकर (ट्रांसजेण्डर) 19वीं शताब्दी के मध्य से 2000 के समय अमेरिकी ट्रांसजेण्डरों का इतिहास लिखते हैं तथा यह 2008 में प्रकाशित होता है। स्टैंकर ट्रांसजेण्डर की परिभाषा कुछ इस प्रकार देते हैं :–

""People who move away from the gender they were assigned at birth, People who cross over (trans) the boundaries who constructed by their culture to define and contain their geader."

"(जो लोग अपने जन्म के समय लिंग से अलग हो जाते हैं और जो उनके लिंग में निहित और उनकी संस्कृति द्वारा परिभाषित सीमाओं को पार करते हैं वे हैं ट्रांसजेंडर)"[2]

डॉ. पुनीत विसारिया के अनुसार "किन्नरों के चार वर्ग देखने को मुख्य रूप से मिलते हैं बुचरा, नीलिमा, मनसा व हंसा।"[3]

प्रो. मेराज अहमद लिखते हैं कि "हिजड़ा शब्द से हमारे मस्तिष्क में ऐसे लोगों की छवि बनती है, जिनके जननांग पूरी तरह विकसित न हो पाये हों अर्थात् वह न ही पूर्ण पुरुष हो न ही पूर्ण स्त्री। कुछ लोग पुरुष होकर भी स्वभाव से स्त्रैण होते हैं, उन्हें पुरुषों के बजाय स्त्रियों के बीच रहने में सहजता महसूस होती है।"[4]

प्रो. मेराज के शब्दों में "हम उन कारणों की जाँच कर सकते हैं जिन कारणों ने लक्ष्मी को हिजड़ा होने से रोका हुआ था।"[5]

उसके समक्ष अवरोधक कौन है? समाज! समाज ही उसका अवरोधक है जो उसको व उसके समुदाय को लैंगिक विस्थापन के लिए विवश करता है। यह विस्थापन ही इस समुदाय को समाज से बिल्कुल कांटकर अलग कर देता है। इनके लैंगिक विस्थापन का कारण बनती हैं समाज की अपेक्षाएँ – "स्त्री और पुरुष इन दो रेखाओं के बीच के हम... 'बिटवीन द लाइन्स'। हम में स्त्रीत्व है पर हम स्त्री नहीं हैं। पुरुषत्व है, पर हम पुरुष भी नहीं हैं... पुरुषों जैसा शरीर होने की वजह से समाज उस पर उसके तथाकथित पौरुषत्व की कल्पना थोप देता है कि इन सब में मैं वो 'पुरुष' नहीं। मन घुटता रहता है। कब तक सहता रहेगा कोई...?"[5]

चित्रा मुद्गल इनकी इसी पीड़ा को रेखांकित करते हुए कहती हैं कि "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वहीं निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, घड़कन नहीं हो, आंख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं. हैं. हैं. सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं। सोचो।"[6]

समाज की ये अपेक्षाएँ कहीं न कहीं पारिवारिक अपेक्षाओं में परिवर्तित होती जाती है जिसका भुगतान उस व्यक्ति को करना होता है जो पहले से ही शारीरिक व मानसिक यातना झेल रहा है। लक्ष्मी के हिजड़े होने के संबंध में उसके परिवार की प्रतिक्रिया को देखिए। "घर में घुसते ही माँ ने चिल्लाना शुरू किया। पापा भी गुस्सा

थे। वो स्वाभाविक ही था। उनकी पहली प्रतिक्रिया थी, "अपनी चौदह पीढ़ियों में ऐसा किसी ने नहीं किया होगा। हमारा खानदान ब्राह्मण को है... उसके मान–सम्मान के बारे में तो कम से कम सोचना चाहिए था। तुम्हारी बहन की शादी हो गयी है। उसके घरवाले क्या कहेंगे?"[7]

अंततः लक्ष्मी के प्रयासों से उसका परिवार उसकी लैंगिकता को स्वीकार्यता देता है।

लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी इस कृति में समुदाय से संबंधित बहुत से प्रश्नों को उठाया है। वह लिखती हैं कि किस प्रकार इस समुदाय को शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण का शिकार होना पड़ता है। "और सच में, उस वक्त मेरा शरीर एक खिलौने की तरह बन गया था। कोई भी आये और कुछ भी कर ले। दो बार तो मुझ पर बलात्कार करने की कोशिश की थी।"[8] इस शोषण के पर्याय में ही लक्ष्मी ने प्रतिरोध को चुना "पुरुष प्रधान समाज में कैसे बर्ताव करना चाहिए, इस बारे में अब मैं मन ही मन सोचने लगा था। इस पुरुष मानसिकता के सामने मुझे कड़ी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। खुद पर आनेवाली दुर्घटना को टाल सकता हूँ, दूसरे को टाल सकता हूँ... पर ऐसे कितने दिन टाल पाऊँगा...? मुझे प्रतिकार करना सीखना होगा।"[9]

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को एक ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा–किन्नरों को तृतीय लिंग के रूप में स्वीकृति दी जायेगी। अनुच्छेद 14, 16 व 21 का हवाला देते हुए कहा– देश के नागरिक होने के नाते किन्नरों को रोजगार, कार्यालयों, सार्वजनिक स्थलों, तथा रोजमर्रा की जिन्दगी में स्वीकार्यता मिलेगी। इसके बाद 2016 में संसद ने भी लोकसभा में ट्रांसजेण्डर व्यक्ति का अधिकार विधेयक प्रस्तुत किया और 2019 में ट्रांसजेण्डर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित किया। परंतु आज भी किस प्रकार से इस समुदाय को प्रशासनिक व्यवस्थाओं से जुझना पड़ता है इसका उदाहरण लक्ष्मी हमारे समक्ष उस समय उपस्थित करती हैं जब सुभद्रा के गुम होने व उसकी लाश मिलने के पर इसी व्यवस्था का उन्हें सामना करना पड़ता है। लक्ष्मी इसका प्रतिरोध करती है "वे हिजड़े हैं, मेरे चेले हैं, यह समझकर उनकी तरफ मत देखो। एक व्यक्ति की नजर से देखो। इनमें से अगर किसी ने कुछ किया होता तो मैं खुद उन्हें आपको सौंप देती। "पुलिस ने सबकी अच्छी तरह से पूछताछ की। मैं और मेरे चेले उनके सामने खड़े थे, पर उन्हें कोई भी क्लू नहीं मिला।"[10]

सामाजिक असमानता का यह कारण ही इस समुदाय को अपराध की ओर धकेलता है, हर अपराध इन्होंने ही किया है इस मनोरोग से भी हमें बचना होगा। "हम हिजड़े आम लोगों की तरह ही जीते हैं। असल में आम गरीब इनसानों की तरह, जिनकी कोई कीमत ही नहीं है। किसी का भी सहारा नहीं होता। परिवार ने बाहर निकाल दिया और समाज ने जैसे बहिष्कृत किया हुआ है। हम कैसे जीते होंगे? क्या खाते होंगे? इसकी किसी को परवाह ही नहीं है और फिर किसी हिजड़े से अपराध हुआ तो फौरन उसे मारने के लिए सब दौड़ते हैं, न जाने कौन–कौन सी दफा लगाकर पुलिस भी उन्हें फंसाती है। इस अपराध का समर्थन करने का सवाल ही पैदा नहीं होता, पर हर अपराध का एक सामाजिक पहलू होता है और हिजड़ों के बारे में वही सबसे महत्त्वपूर्ण है। पर इस पर कोई ध्यान नहीं देता।"[11]

लक्ष्मी अपनी इस आत्मकथा में सामाजिक असमानता को दिखाती हैं। इस असमानता के पर्याय में वह प्रतिरोध को चुनती हैं। यह प्रतिरोध ही उसे यह कहने की ताकत देता है कि "किसी परिवार में सभी का रंग बहुत गोरा है, एक ही लड़का काले रंग का है... तो क्या उसे परिवार से बाहर निकाला जाता है? किसी व्यक्ति का रंग, उसकी पसन्द, उसका किसी कला के प्रति झुकाव ये जितना प्राकृतिक है, उतनी ही उसकी लैंगिकता प्राकृतिक

है। इसी सन्दर्भ में के. वनजा लिखती हैं "ट्रांसजेंडर होकर जन्म लेना किसी भी व्यक्ति का स्वयं का चुनाव नहीं होता। इसलिए वह किसी भी तरह से पारिवारिक एवं सामाजिक लज्जा का कारण नहीं है, बहिष्कार का भी।"[12] अंततः मैं इतना ही लिखना चाहूँगा कि समाज और साहित्यकारों ने कभी इनकी ओर दृष्टि की ही नहीं। इनकी सामजिक असमानताओं को कभी जाँचा परखा ही नहीं गया है। हिंदी साहित्य में किन्नर समाज से संबंधित साहित्य अब धीरे–धीरे प्रकाश में आ रहा है परंतु अभी भी उसे उस रूप में स्वीकार्यता नहीं मिली जिस रूप में मिलनी चाहिए। चित्रा मुद्गल कहती हैं– "निर्मला' की तरह उन पर लिखा गया होता तो आज थर्ड जेण्डर की स्थिति बहुत अलग होती। यहाँ साहित्यकारों ने अपने कर्तव्य को समझा ही नहीं। अभी भी दोनों मुद्दों पर जमीनी काम बाकी है। सिर्फ लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मान लेना चाहिए, जमीन पर उतरिए।"[13]

निष्कर्ष :–

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा "मैं हिजड़ा, मैं लक्ष्मी" केवल एक व्यक्तिगत यात्रा का दस्तावेज नहीं, बल्कि हिजड़ा समुदाय के संघर्ष, अस्मिता और सामाजिक स्वीकृति की लड़ाई का प्रतीक है। इस आत्मकथा के माध्यम से लक्ष्मी ने न केवल अपने जीवन की चुनौतियों और उपलब्धियों को साझा किया, बल्कि हिजड़ा समुदाय के प्रति समाज की रूढ़ियों और भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण को भी उजागर किया है।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी का जीवन इस बात का प्रमाण है कि साहस, आत्मसम्मान और संघर्ष के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित कर सकता है और सामाजिक परिवर्तन का वाहक बन सकता है।

आधार ग्रंथ :–

1. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी!, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण – 2021

संदर्भ सूची :–

1. मै हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, पृ. 43
2. Susan Stryker: Transgender History, Da Capa Press, 2009
3. पुनीत विसारिया, किन्नर विमर्श।
4. सं. एम. फिरोज खान, किन्नर : थर्ड जेंडर अनूदित कहानियाँ, पृ. 8
5. मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, पृ. 50
6. 'चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा, सामायिक प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ. 50
7. "मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, पृ. 115
8. "में हिजडा... मैं लक्ष्मी, पृ 142–143
9. "मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, पृ. 153
10. मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, पृ. 159
11. मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, पृ. 162
12. के वनजा, क्वीर विमर्श, वाणी प्रकाशन, पृ. 150
13. चित्रा मुद्गत से साक्षात्कार, प्रियंका नारायण, किन्नर विमर्श सेक्स और सामाजिक स्वीकार्यता, वाणी प्रकाशन, 2021, पृ. 158

9494250061, jadavgovind@cuk.ac.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 126–131

COMPARISON OF SUICIDE RATIO IN BETWEEN KOTA CITY AND OTHER CITIES

Anzari Begam
Assistant Professor, Psychology, Modi Institute of Management & Technology, Dadabari Kota

INTRODUCTION :

Suicide, derived from Latin woard suicidium, is "the act of taking one's own life".

* **Suicidal Behavior :**

- Suicide is the act of intentionally killing yourself, most often as a result of depression or other mental illness.
- Suicidal behavior is termed as an inability to cope with the demands of life.
- Thoughts and plans about suicide are called suicide ideation.
- Suicide usually results from the interaction of many factors, usually including stressful life events.

Suicide is among the top three causes of death among youth worldwide. According to the WHO, every year, almost one million people die from suicide and 20 times more people attempt suicide; a global mortality rate of 16 per 100,000, or one death every 40 seconds and one attempt every 3 seconds, on average. Suicide worldwide was estimated to represent 1.8% of the total global burden of disease in 1998; in 2020, this figure is projected to be 2.4% in countries with market and

former socialist economies. According to the most recent World Health Organization (WHO) data that was available as of 2011, the rates of suicide range from 0.7/100,000 in the Maldives to 63.3/ 100,000 in Belarus. India ranks 43rd in descending order of rates of suicide with a rate of 10.6/ 100,000 reported in 2009 (WHO suicide rates).The rates of suicide have greatly increased among youth, and youth are now the group at highest risk in one-third of the developed and developing countries. The emerging phenomenon of "cyber-suicide" in the internet era is a further cause for concern; also because the use of new methods of suicide are associated with epidemic increases in overall suicide rates.Suicide is nevertheless a private and personal act and a wide disparity exists in the rates of suicide across different countries. A greater understanding of region-specific factors related to suicide would enable prevention strategies to be more culturally sensitive. This focus is also highlighted in the September 10, 2012 World Suicide Prevention Day theme "Suicide Prevention across the Globe: Strengthening Protective Factors and Instilling Hope". This qualitative review explores the historical and epidemiological aspects of suicide in with a special focus on India. We hope that exposure of the problem will facilitate primary prevention planning.

Provision in Indian lows :

Attempted suicide is a serious problem requiring mental health interventions, but it continues to be treated as a criminal offence under the section 309 of Indian Penal Code. The article reviews the international legal perspective across various regions of the world, discusses the unintended consequences of section 309 IPC and highlights the need for decriminalization of attempted suicide in India. The Mental Health Care Bill, 2013, still under consideration in the Rajya Sabha (upper house), has proposed that attempted suicide should not be criminally prosecuted. Decriminalization of suicidal attempt will serve to cut down the undue stigma and avoid punishment in the aftermath of incident, and lead to a more accurate collection of suicide-related statistics. From a policy perspective, it will further emphasize the urgent need to develop a framework to deliver mental health services to all those who attempt suicide

The Supreme Court had granted 'voluntary death' on March 9, At the time, the court said that under Article 21 of the Constitution, a person has the same right to live as he has the right to die with dignity. The court had approved passive euthanasia. It involves stopping the treatment of the sick person, so that he can die.

Classification : Types of Suicide –

Euthanasia - Individuals who wish to end their own lives may enlist the assistance of another party to achieve death.

Murder–suicide - A murder–suicide is an act in which an individual kills one or more other persons immediately before or at the same time as him or herself.

Suicide attack - A suicide attack is an act in which an attacker perpetrates an act of violence against others.

Escape - In extenuating situations where continuing to live would be intolerable, some people use suicide as a means of escape.

OBJECTIVES :

- To study the relationship of stressful life events with suicidal ideation in early teenagers.
- To study the relationship of self-oriented perfectionism with suicidal ideation in early teenagers.
- To study the relationship of emotional competence with suicidal ideation in early teenagers
- To study the relationship of stressful life events with self-oriented perfectionism in early teenagers.
- To study the relationship of stressful life events with emotional competence in early teenagers.
- To study the relationship of self-oriented perfectionism with emotional competence in early teenagers.
- To find out the relative contribution of stressful life events, self-oriented perfectionism and emotional competence towards suicidal ideation in early teenagers.

HYPOTHESES :

- There will be significant relationship between stressful life events and suicidal ideation in early teenagers.

- There will be significant relationship between self-oriented perfectionism and suicidal ideation in early teenagers.
- There will be negative relationship between emotional competence and suicidal ideation in early teenagers.
- There will be negative relationship of stressful life events with self-oriented perfectionism in early teenagers.
- There will be negative relationship of stressful life events with emotional competence in early teenagers.
- There will be negative relationship of self-oriented perfectionism with emotional competence in early teenagers

METHODOLOGY :

Primary data - Methods used by the researcher and Review of Literature to collect the required data and its analysis. Several sources like course- related documents such as; Course Co-coordinators, Faculty Members, Students, Principals of Schools and Colleges and Parents of the students who make would be in a position to take decisions would be contacted to gather information.

Secondary data - The main research will use both Quantitative as well as Qualitative.

Research methods to determine the current state of the art of education patterns followed in the educational institute which caters to the research objectives with the help of a well Structured Questionnaire, Structured Interviews, Participatory Observations as well as Structured Intervention.

Whenever the population is rather small or a comprehensive coverage is essential, the entire population would be selected but whenever the surveying of the total population would not be possible a sample would be selected by using Purposive and **Proportional Stratified Sampling Method.**

Because of the original nature of the data required, primary sources of all the education programs conducted during the period would be considered for the study. In addition to the published books, journal articles and other similar publications external to the institutions would also be used as a part of the literature review as well as **secondary data collection activity**.

To condense the volume of data thus collected, coding and content analysis would be used considering the semantic relationship of words. In order to maintain the ethics of the research, the identity of the individual institutions be kept confidential and restricted only for Research Activity.

- **Research Design :**

Experimental Research Design.

Research Approach : Analytical , Descriptive Survey. And questionnaire method.

Population :

Students in the age group of 12-19 would be considered as the population.

Sample Size: Depending on the permission to carry out the study program, division of the students in groups from different category of the Institute, the aim would be to have at-least 40 students from both the groups so as to arrive to decisive conclusions.

This would be taken up as a Pilot Study so as to check on the validity of the questionnaires and the accuracy of the information provided by the respondents in both the Experimental and the Control Groups.

After this I would like to reach out to about 500 Students so as to carry out an effective program based on the objectives of the research. Tools :

Part A – Demographic data

Part B – Structured questionnaire and

Part C — Personal Interviews will be conduct

Statistical Techniques :

- Mean
- Standard deviation
- Correlation
- Regression analysis

Other relevant higher statistical measure.

The findings and the Interpretations would be tabled followed by graphical representation of data which would also be included for ease of understanding.

	2018	2019	2020	2021	2022	2023
IITS	7	8	3	4	8	3
NITS	3	8	1	2	7	3
IIMS	1	0	1	1	1	0
TOTAL	11	16	5	7	16	6

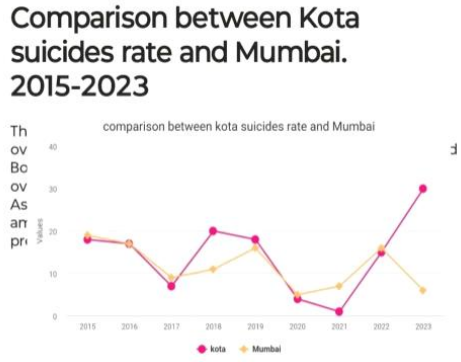

CONCLUSION :-

Suicide and attempted suicide is something that should never be neglected. Suicide is defined as the act of killing yourself because you do not want to continue living.India has one of the world's highest youth suicide rates. One student took their own life every 42 minutes in 2020, according to the National Crime Records Bureau (NCRB).Kota, a coaching hub for students, plays a big role in

producing the future generation of doctors and engineers.Over 2.5 lakh students move to Kota every year to prepare for competitive exams. Nearly 30 suicides have been reported from Kota this year, compared to 15 in 2022.Packed schedules, cut -throat competition Constant pressure to do better, the Burden of parents' Expectations and homesickness are among the common struggle of the students here. To prevent further suicides the Rajasthan government has taken initiatives by forming various policies and guidelines.

Mumbai, formerly known as Bombay, has seen instances of student suicides, attributed to various factors including academic pressure, competition, high expectations from family and society, lack of adequate mental health support, and personal

REFERENCES :

1. Vijayakumar L. Suicide in India in Suicide in Asia. In: Yip PS, editor. Hong Kong Univ Press; 2008. pp. 121–31. [Google Scholar]
2. Accidental Deaths and suicides in India. National Crime Records Bureau. Ministry of home affairs. Government of India. 2007 [Google Scholar]
3. Rao VA. Attempted suicide. Indian J Psychiatry. 1965;7:253–64. [Google Scholar]
4. Nandi DN, Banarjee G, Boral GC. Suicide in West Bengal - A century apart. Indian J Psychiatry. 1978;20:155–60. [Google Scholar]
5. Hegde RS. Suicide in rural community. Indian J Psychiatry. 1980;22:368–70. [PMC free article] [PubMed]

Address- H. No 3 j 21 opposite dadabari police station kota 324009
Mob 9024435785
yogeshmehra785@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 132-136

नगण्यता की ताकत को अभिव्यक्त करने वाला कवि

शिवानी शर्मा
शोधार्थी, डी. एस. बी. परिसर, नैनीताल।

शोध सार :-

साहित्य का मुख्य उद्देश्य जनता को समाज में व्याप्त समस्याओं के प्रति सचेत करना और जनता का मार्गदर्शन करना है। कविता मानव मन की सहज अभिव्यक्ति है। यह लोगों के संस्कार और संवेदना को प्रभावित करती है। हिन्दी साहित्य जगत में बहुत से कवि हुए हैं। समकालीन साहित्य जगत में अपनी विशिष्टता के कारण अलग से ध्यान आकृष्ट करने वाले कवियों में से एक वीरेन डंगवाल भी हैं। वीरेन डंगवाल की कविताओं में दैनंदिन जीवन में प्रयोग में लाई जाने वाली किन्तु नगण्य समझी जाने वाली वस्तुओं तथा आम आदमी, जिसका महत्व कुछ विशेष अवसरों तक ही सीमित रह गया है, उन सभी की साधारणता और साधारण महत्ता को भी अभिव्यक्त करते हैं। इस शोध पत्र में वीरेन डंगवाल की कुछ ऐसी ही कविताओं पर बात की गई है,जिसमें वे साधारण चीजों और व्यक्तियों के माध्यम से लोगों को अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हैं तथा अच्छे भविष्य की उम्मीद देते हैं।

बीज शब्द :- अतिक्रमण, मनुष्यता, संस्कार, अभिव्यक्ति, प्रखरता, आकृष्ट, वैविध्य, नगण्य, आडंबरहीन, तंबाकू, कठपुतली आदि।

मूल आलेख :-

साहित्य का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों और समस्याओं के प्रति सचेत करना है। साहित्य के सामाजिक घेरे में केवल उच्च वर्ग या मध्यम वर्ग नहीं आता, बल्कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति आता है। साहित्य में जड़ वस्तुओं को भी माध्यम बनाकर जीवन की अनुभूतियों को गहनता से अभिव्यक्त किया जाता है। कविता अपने समय को अभिव्यक्त करती है और कई बार समय सीमा का अतिक्रमण भी करती है। कविता को परिभाषित करते हुए विनय विश्वास लिखते हैं – "कविता मनुष्यता की संवेदन–लय है। अमानुषीकरण की प्रक्रिया में सर्जनात्मक हस्तक्षेप है। वह मनुष्य का विवेक जगाती है। जगाए रखती है। जाग्रत विवेक के कारण ही मनुष्य परिस्थितियों का खिलौना बनने से बच पाता है। हर हाल में मनुष्यता को सर्वोच्च रख पाता है। वही मनुष्यता, जिसकी पहचान है– दूसरों के दुःख में दुःख अनुभव करना। जितना हो सके, उसे दूर करना। दूसरों को इस्तेमाल करने की जगह उनके काम आना। लोभ की जगह प्रेम को चुनना। छल के नहीं, सच के साथ रहना। भोग का गुलाम होना नहीं, भोग पर अधिकार प्राप्त करना।"[1]

कविता मानव मन की सहज अभिव्यक्ति है। कविता लोगों के संस्कार और संवेदना को प्रभावित करती

है। हिन्दी साहित्य जगत में बहुत से बड़े कवि हुए हैं। बड़े कवि से तात्पर्य उन कवियों से है जिनकी कविताएँ संख्या में नहीं संवेदना के स्तर पर बड़ी हैं। अपनी प्रखरता और विशिष्टता के कारण अलग से ध्यान आकृष्ट करने वाले कवियों में से एक वीरेन डंगवाल भी हैं। उनकी कविताएँ संपूर्ण भारतीय जीवन की बात करती हैं। इन कविताओं में न सिर्फ संघर्षरत, वंचित व्यक्ति बल्कि छोटे– बड़े पशु, खाद्य पदार्थ, जड़ पदार्थ सबको अभिव्यक्ति मिली है।

वशिष्ठ अनूप लिखते हैं– "यात्राओं ने उनके अनुभव–जगत का विस्तार किया था जिससे उनकी कविताओं में खूब वैविध्य दिखाई पड़ता है। बहुत छोटी– छोटी नगण्य– सी चीजें, उनके स्पर्श से कविता बन जाती थीं।"[2]

वीरेन डंगवाल की कविताओं में हमारे दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ, खाद्य सामग्री न केवल ब्यौरे के रूप में आते हैं अपितु ये चीजें कविता में व्यक्त भाव को सघन करती हुई प्रतीत होती हैं। अपनी कविता कैसी जिंदगी जिए में वे चश्मे के माध्यम से शिथिल पड़ते आपसी संबंध तथा भौतिकवादी होते जा रहे समाज पर व्यंग्य करते हैं। यह व्यंग्य फूहड़ नहीं बल्कि दिल में कचोट उत्पन्न करने वाला व्यंग्य है। व्यक्ति समाज की इकाई है। व्यक्ति के परस्पर संबंध ही एक बेहतर पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का निर्माण करते हैं। आज के तकनीकी भौतिकवादी समाज में लोग केवल स्व तक सीमित होते जा रहे हैं। किसी की मृत्यु पर शोक तक जताने का समय लोगों के पास नहीं है।

"एक दिन चलते– चलते/यों ही ढुलक जाएगी गरदन/सबसे ज्यादा दुख/सिर्फ चश्मे को होगा,/खो जाएगा उसका चेहरा/अपनी कमानियों से ब्रह्मांड को जैसे–तैसे थामे/वह भी चिपटा रहेगा मगर।"[3]

यह सोचना भी कितना दुखद है कि एक व्यक्ति के इस संसार से जाने पर किसी मनुष्य को दुःख नहीं होगा। यह लोगों की खत्म होती जा रही संवेदना और उनके मशीनी होते जाने की तरफ संकेत है। यह आधुनिक दौर में इंसान के एकाकी होते जाने की कविता है।

वीरेन डंगवाल की कविताओं में आशा और उम्मीद सर्वत्र है। जैसा कि वशिष्ठ अनूप ने लिखा है, वीरेन मामूली सी चीज को भी स्पर्श कर कविता बना देते हैं। अपनी छोटी कविताओं में भी वीरेन इतनी बड़ी बात कह जाते हैं कि एक बार पढ़ने में वह मामूली लगती है और अंत तक पहुंचते–पहुंचते उसके असली आशय स्पष्ट होते जाते हैं। हमारे समाज के तथाकथित बड़े लोग जो धन और शक्ति से परिपूर्ण हैं, वे आम जन के लिए चिंता तो व्यक्त करते हैं पर जब आम जन के साथ उनके बीच रहने और स्वाभाविक सामान्य क्रियाएं करने की बाट आती है तब स्पष्ट भेद परिलक्षित होता है। यही बात वीरेन डंगवाल अपनी कविता हाथी–2 में कहते हैं–

"मैंने कभी हाथी को खाँसते हुए नहीं सुना/हालांकि उसके भी होते हैं फेफड़े/जैसा बताते हैं प्राणि–विज्ञानी/हाथी सिर्फ तब खाँसता है/जब वह हाथियों के बीच होता है/हमारे जैसे अदना आदमियों के बीच/वह सिर्फ हाथी होता है।"[4]

हमारे समाज का यही हाल है। प्रतिष्ठित लोग आम जनता के साथ उनके बीच रहने में असहज महसूस करते हैं जबकि आम जनता के जीवन जीने का तौर तरीका बेहद सरल और आडंबरहीन होता है।

आज के समय में एक दूसरे पर विश्वास करना मुश्किल होता जा रहा है। मनुष्य की अपनी निजी जिंदगी, अपना कोई एकांत नहीं रह गया है। मनुष्य आज अकेला तो होता जा रहा है पर सोशल मीडिया, इंटरनेट तथा

एआई के चलते अब वह डाटा में तब्दील हो रहा है। आज व्यक्ति इंटरनेट पर इतना इंगेज्ड है कि उसकी पसंद–नापसंद की अधिकतम जानकारी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। यह सब चीजें मनुष्य को सुविधा प्रदान करने के लिए बनाई गईं लेकिन आज यह हालात हैं कि मनुष्य इन पर आश्रित सा हो गया है। कई बार हमारी खुद की बनाई चीजें ही हमारे नुकसान का कारण बनती हैं। और ऐसा ही हमारे आस–पास भी होता है कि हमारे अपने कहे जाने वाले लोग ही हमारे पतन का कारण बनते हैं। वीरें डंगवाल की कविता तंबाकू इसे बखूबी अभिव्यक्त करती है।

"इसे भी उगाया था/चौड़े पत्ते वाले इस बदमाश को/मेहनती हाथों ने/इतनी लग्न और चाव के साथ,खेतों में।/हमारे ही हाथों पैदा होते हैं कई बार/हमारे दुश्मन प्यारे–प्यारे।"[5]

वीरेन डंगवाल अपने विचार और अनुभव इस तरह कविता में शामिल करते हैं कि वे पाठक पर कोई दबाव न बनाते हुए उनकी संवेदना पर प्रभाव डालते हैं। आज हमारा समाज तकनीकी विकास, कानून, व्यवसाय, सौन्दर्य, बुद्धिमत्ता आदि चीजों की अंधी होड़ में शामिल हो गया है। लोग अपनी व्यक्तिगत या ज्यादा से ज्यादा पारिवारिक महत्वाकांक्षाओं तक सीमित हो गए हैं और मनुष्य, जिसे सामाजिक प्राणी कहा जाता है वह गैर सामाजिक बनता जा रहा है। समाज जिस राह पर आगे बढ़ रहा है, वह चिंतनीय है। आज की पूँजी केंद्रित मानसिकता ने अपराधीकरण को बढ़ावा दिया है। ये भ्रष्ट लोग आम जनता के समक्ष खुद की छवि इतनी उजली तथा साफ–सुथरी पेश करते हैं कि लोगों को खतरे का एहसास तक नहीं होता। समाज में प्रेम का अभाव बढ़ रहा है। कवि अपनी कविता हड्डी खोपड़ी खतरा निशान में लिखते हैं–

"इधर काफी कम दिखाई देता है/हड्डी खोपड़ी खतरा निशान/.... /अब दरअसल सारे खतरे खत्म हो चुके/प्यार की तरह/दरअसल चारों तरफ चैन ही चैन है।"[6]

आज के समय में बलवान वही है जो कुटिल है। लोग कई मुखौटे लगाकर घूम रहे हैं। और आम आदमी इतना सरल हृदय होता है कि ये कपटी लोग अपने प्रपंचों से उसे छलते हैं और आम आदमी उसके बहकावे में आ जाता है। वीरेन डंगवाल अपनी कविताओं के माध्यम से सबको सचेत करते हैं और लोगों की परख करने के बाद ही उन पर विश्वास करने का आह्वान करते हैं।

"काफी बुरा समय है साथी/संस्कृति के दर्पण में ये जो शक्लें हैं मुस्काती/उनकी असल समझना साथी/अपनी समझ बदलना साथी।"[7]

समाज में पूँजीवादी शक्तियों का वर्चस्व ऐसा फैला कि आम आदमी नगण्य हो गया। पूँजी के चक्कर में व्यक्ति चेतना शून्य हो गया और पूँजी के हाथों की कठपुतली बन गया। अपने ही लोग अपनों के दुश्मन हो गए। वे रामसिंह के माध्यम से सभी लोगों से सवाल करते हैं :–

"तुम किसकी चौकसी करते हो रामसिंह?/तुम बंदूक के घोड़े पर रखी किसकी उंगली हो?/../कौन हैं वे, कौन/जो हर समय आदमी का एक नया इलाज/ढूंढते रहते हैं?"[8]

आम आदमी को पूँजीपति वर्ग मात्र हाड़–माँस का पुतला समझता है। अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए ये धनाढ्य वर्ग आम आदमी की हत्या करने से भी नहीं कतराता। और कुकृत्य भी वह स्वयं नहीं करता, इसमें भी माध्यम एक आम आदमी ही बनता है। रामदास की इन पंक्तियों में स्पष्ट दिखता है कि पूँजी कैसे मासूम साधारण लोगों के साथ खिलवाड़ करती है मानो पूँजी के समक्ष इंसान का कोई अस्तित्व ही न हो।

"पहले वे तुम्हें कायदे से बंदूक पकड़ना सिखाते हैं/फिर एक पुतले के सामने खड़ा करते हैं/.... /उसके बाद वे तुम्हें आदमी के सामने खड़ा करते हैं/ये पुतले हैं रामसिंह, बदमाश पुतले/इन्हें गोली मार दो, इन्हें संगीन भोंक दो, इन्हें..इन्हें...इन्हें.../वे तुम पर खुश होते हैं–तुम्हें बख्शीश देते हैं/..../वे तुम्हें गौरव देते हैं और इस सबके बदले/तुमसे तुम्हारे निर्दोष हाथ और घास काटती हुई/लड़कियों से बचपन में सीखे गए गीत ले लेते हैं।"[9]

अपने देश, अपने समाज के लिए कवि प्रतिबद्ध है। आजादी के बाद लोगों ने जिस खुशहाल परिवेश की कल्पना की थी, वह कल्पना ही रह गई। स्थितियाँ बद से बदतर ही होती रही हैं। आज देश बेशक तरक्की कर रहा है, पर हमारे देश, हमारी संस्कृति की असल पूँजी हमारी संवेदनाएं गुम होती जा रही हैं। आज कोमल हृदय व्यक्ति का भरपूर फायदा उठाने से लोग नहीं चूक रहे। जिस देश की नींव ही आदर–सत्कार, सत्य, अहिंसा जैसे मूल्यों पर टिकी थी, आज वे मूल्य ही गायब होते जा रहे हैं।

"लोगों के दुख तनिक कम न हुए बढ़े और बढ़े और और/प्यास लगी होने पर एक ग्लास शीतल जल भी/प्यार सहित पाना आसान नहीं/बेगाने हुए स्वजन/कोमलता अगर कहीं दीख गई आँखों में, चेहरे पर/पीछे लग जाते हैं कई–कई गिद्ध और स्यार/बिस्कुट खिलाकर लूट लेने वाले ठग और बटमार/माया ने धरे कोटि रूप/अपना ही मुल्क हुआ जाता परदेस। प्यारे मंगलेश।"[10]

वीरेन डंगवाल मलीन समय में पोस्टकार्डों की महिमा के गीत गाने वाले कवि हैं। पोस्टकार्ड जो अब नई खोजों के फलस्वरूप अपनी संस्कृति की तरह विलुप्त से हो गए हैं। कवि लिखते हैं–

"सबसे बड़ी बात तो यह/कि वे मौजूद रहते हैं हर तरफ/भले लोगों की तरह/जरूर वे दिखाई नहीं देते।"[11]

आज हमारा मनुष्यता से विश्वास खोता जा रहा है। आज मौकापरस्ती, चालबाजी, षड्यन्त्र का ऐसा जाल फैला है कि मनुष्यता, मनुष्य की संवेदना कहीं नजर ही नहीं आती। ऐसे समय में कवि लोगों को आश्वस्त करता है कि अच्छे लोग हमारे आस–पास हैं। कवि लोगों में अच्छाई की, मनुष्यता की उम्मीद जगाता है। कवि ने साधारण चीजों की महत्ता को स्वीकारते हुए उनके माध्यम से समाज की बड़ी समस्याओं पर प्रकाश डाला। कवि सिर्फ खोखली उम्मीद नहीं देता बल्कि समाज में नगण्य समझे जाने वाले लोगों के संघर्ष की भी बात करता है। कहने को तो आज सभी बहुत तरक्की कर रहे हैं,पर समाज के तथाकथित उच्च लोगों की मानसिकता आज भी बहुत संकीर्ण है। आज भी दलित, आदिवासी, स्त्रियाँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सभी लोगों की बात करता है।

"वे रानियाँ भी गुलाम थीं/जो सोने की थाली में खाती थीं/गुलाम थीं वे भी लखूदास शिवदास की तरह" इस कविता में कवि आगे बोलता है कि असली भूत–प्रेत (नकारात्मक शक्तियां) तो वे लोग हैं जो हमारे पहाड़, जंगल, नदियाँ सब अपने स्वार्थ के लिए नष्ट करते जा रहे हैं। पर कवि हताश नहीं होता, अपितु इन विध्वंसकारी शक्तियों द्वारा नगण्य समझे वाले आम आदमी में संघर्षरत रहने तथा फलस्वरूप अच्छे भविष्य की उम्मीद जगाता है कि हमें कोशिश करनी होगी सिर्फ अपने लिए नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए।

"इनका नाश करने को चलो जुटते हैं/सभी एक साथ/.../आएगा वह दिन जरूर आएगा दुनिया मे/काहे होते हो निराश/.../चाहे हम न ला सकें/चाहे तुम न ला सको/मगर कोई न कोई तो लाएगा/उस

दिन को दुनिया में..."[12]

कवि व्यष्टि और समष्टि दोनों की बात करता है। कवि की ये पंक्तियाँ उनके पूरे कवि कर्म की कोशिश यहाँ प्रस्तुत करती हैं।

"शून्य ही है सबसे ताकतवर संख्या/हालांकि सबसे नगण्य भी/याद रखूँगा मैं पूरे संसार को ढोने वाली/नगण्यता की विनम्र गर्वीली ताकत/जिसे अभी सही–सही अभिव्यक्त होना है।"[13]

निष्कर्ष :-

कवि वीरेन डंगवाल विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। उनकी कुछ कविताएं बेहद भौतिक हैं, किन्तु उन कुछ कविताओं के अलावा उनकी प्रत्येक कविता एक गंभीर संदेश देती है। आज का समाज बाजार पर और भौतिकवादी संस्कृति पर इतना आश्रित हो गया है कि कवि की निरी भौतिक कविताएं भी अर्थहीन नहीं हैं। वीरेन साधारण सी वस्तुओं को अपनी प्रतिभा से कविता में बदलने में सक्षम हैं। और यह काम उन्होंने बखूबी किया है। समाज के शोषित वर्गों को उनकी ताकत से रूबरू कराने की बात हो या आम आदमी को कुटिल, मौकापरस्त लोगों के विरुद्ध सचेत करने की बात हो, वीरेन की कविता में सब अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने दैनिक जीवन में प्रयोग में लाई जाने वाली, किन्तु नगण्य समझी जाने वाली वस्तुओं तथा आम आदमी के संघर्षों के माध्यम से बहुत महत्वपूर्ण संदेश आम जन तक पहुंचाया है।

संदर्भ :-

1. विनय विश्वास, आज की कविता, पृ. 15
2. वशिष्ठ अनूप, समकालीन कविता के प्रतिमान, पृ. 123
3. (सं.) पंकज चतुर्वेदी, प्रतिनिधि कविताएं वीरेन डंगवाल, पृ. 23
4. वही, पृ. 45
5. वही, पृ. 66
6. वीरेन डंगवाल, दुष्चक्र में स्रष्टा, पृ. 13
7. (सं.) पंकज चतुर्वेदी, प्रतिनिधि कविताएं वीरेन डंगवाल, पृ. 25
8. वही, पृ. 27
9. वही, पृ. 28
10. वही, पृ. 73
11. वीरेन डंगवाल, दुष्चक्र में स्रष्टा, पृ. 51
12. (सं.) पंकज चतुर्वेदी, प्रतिनिधि कविताएं वीरेन डंगवाल, पृ. 140–141
13. वही, पृ. 72

Email: ssharmakashti@gmail.com

Ph. 9917186356

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 137–144

'रांगेय राघव' और शिवमंगल सिंह 'सुमन' : एक तुलनात्मक अध्ययन

(प्रगतिशील सामाजिक चेतना के काव्यकार के विशेष संदर्भ में)

डॉ. नेमीचन्द कुमावत
सहायक आचार्य (हिन्दी), मा. ला. वर्मा राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राजस्थान)

हिंदी की प्रगतिशील काव्य–धारा में सामाजिक चेतना की अभिवृद्धि करने वाले कवियों में डॉ. रांगेय राघव एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म 17 जनवरी, 1923 ई. को आगरा में हुआ। वे कवि के साथ एक प्रसिद्ध उपन्यासकार रहे हैं। 'घरौंदें', 'मुर्दों का टीला', 'कब तक पुकारूँ', 'विषाद मठ' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास उन्होंने ही लिखे हैं। वे एक प्रगतिशील समीक्षक के रूप में भी विख्यात हैं। डॉ. राघव की प्रगतिशील सामाजिक चेतना का परिचय देने वाले दो काव्य–संग्रह हैं– 'राह के दीपक' और 'पिघलते पत्थर' (1946 ई.)। इनके अतिरिक्त प्रगतिवादी कवियों में वे अकेले कवि हैं, जिन्होंने मुक्तक काव्य के साथ ही चार प्रबंध कृतियाँ भी लिखी हैं– 'अजेय खंडहर' (1944 ई.), 'मेधावी' (1947 ई.), 'रूप–छाया' और 'पांचाली' (1955 ई.) आदि। बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. राघव का 1962 ई. में अल्पायु में ही स्वर्गवास हो गया।

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के झगरपुर गाँव में 16 अगस्त, 1916 ई. को जन्मे शिवमंगल सिंह 'सुमन' अध्यापन कर्म से संपृक्त रहे हैं। उनके 'हिल्लोल' (1939ई.), 'जीवन के गान' (1941ई.), 'प्रलय–सृजन' (1945 ई.), 'विश्वास बढ़ता ही गया' (1955 ई.), 'पर आँखें नहीं भरीं' (1956 ई), 'विंध्य–हिमालय' (1966 ई.), 'मिट्टी की बारात' (1972 ई.), 'वाणी की व्यथा' (1980 ई.), 'कटे अँगूठों की बंदनवारें' (1991 ई.) आदि नौ काव्य–संग्रह हैं। 'सुमन' जी के काव्य–आयाम डॉ. रांगेय राघव की तुलना में व्यापक हैं, क्योंकि उन्होंने किसानों, मजदूरों के साथ ही निम्न–मध्य वर्ग पर भी सृजन किया है।

प्रगतिशील सामाजिक चेतना के समानधर्मा कवियों– केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, 'मुक्तिबोध' और शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि ने 1936 ई. में स्थापित 'प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़कर और मार्क्सवादी चिंतन के अनुरूप युगीन पल्लवित हो रहे यथार्थ–बोध को सामाजिक विचारधारा से जोड़कर ठोस रचनात्मक जमीन पर खड़ा करने का ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया, जिसे प्रगतिशील सामाजिक चेतना का काव्य कहा जाता है। हिंदी समीक्षकों ने केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन को प्रगतिवादी काव्य में वृहत्त्यी के रूप में स्वीकारा है। इस संदर्भ में अन्य प्रगतिशील कवियों का योगदान भी इनसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वृहत्त्यी के साथ ही डॉ. 'सुमन' जी का सृजन भी प्रगतिवाद के शीर्षस्थ कवियों के साथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण

और प्रासंगिक है, जिसे इस तुलनात्मक अध्ययन द्वारा रेखांकित करने का एक प्रयास है। सामाजिक चेतना की दृष्टि से डॉ. रांगेय राघव और डॉ. 'सुमन' जी का क्या योगदान है, प्रगतिशील साहित्य के मूल्य उनके काव्य में किस हद तक और किस रूप में व्यक्त हुए हैं तथा ये दोनों कवि एक दूसरे से किस रूप में भिन्न, समकक्ष या विशिष्ट हैं? आदि को इस शोध–आलेख में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

साम्राज्यवाद–पूँजीवाद का विरोध, शोषकों से घृणा, शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय घटनाएँ, क्रांतिकारी जन–संघर्ष, आशा–आस्था और परिवर्तन का स्वर तथा आजाद भारत के सामाजिक–राजनीतिक जीवन से जुड़ा व्यापक यथार्थ प्रगतिशील कविता का कथ्य है। विषय–वैविध्य के साथ ही डॉ. रांगेय राघव और डॉ. 'सुमन' जी ने वैयक्तिक और जन–जीवन से जुड़े साधारण विषयों पर भी कविताएँ लिखी हैं। अतः एक शोध–पत्र में उनके समग्र काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करना असंभव और दुष्कर कार्य है। यहाँ उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों, जो देश–समाज केंद्रित हैं, को दृष्टि में रखकर दोनों कवियों की तुलना की है। दोनों कवियों के काव्य में व्यक्त संवेदनात्मक समानता और विशिष्टता पर ध्यान केंद्रित रखा है, ताकि दोनों कवियों की प्रगतिशील सामाजिक चेतना की परख हो सके और इस काव्यधारा में केंद्रीय–कवियों के साथ उनको उचित स्थान दिया जा सके, जिसके वे वास्तविक हकदार हैं।

श्री उमेश मिश्र के अनुसार– 'पिंघलते पत्थर' और 'राह के दीपक' काव्य–संग्रहों में डॉ. राघव की प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ पर्याप्त स्पष्टता से उभरी हैं। उनकी स्वस्थ व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, सामाजिक जीवन के प्रति जागरूकता और उनकी राष्ट्रीय भावना को इन दोनों कृतियों से ज्ञात किया जा सकता है।[1] इसी तरह कमला प्रसाद पांडेय जी ने भी लिखा है कि– ''रांगेय राघव विशुद्ध प्रगतिवादी कवि हैं। रचनाओं में उनका सामाजिक व्यक्तित्व झलकता है। उन्होंने मार्क्सवाद से अपने अनुरूप दृष्टि पाई थी। उनके विद्रोही कवि ने जागरूक और संवेदनशील रहकर सामाजिक चिंतन को काव्य रचनाओं में व्यक्त किया है।"[2] यहाँ उपर्युक्त दोनों विद्वानों के कथनों में डॉ. राघव के काव्य की प्रगतिशील सामाजिक चेतना का संक्षिप्त परिचय मिल जाता है।

डॉ. राघव और 'सुमन' जी के काव्य की तुलना से एक बात स्पष्ट उभरती है कि दोनों कवियों ने जीवन–यथार्थ के अंकन में सामाजिक–आर्थिक अभिशापों, जनता का करुण–क्रंदन, दुःख–दैन्य आदि का मार्मिकता के साथ उद्‌घाटन किया है। दोनों कवि जनता की विषादपूर्ण स्थिति से अत्यंत क्षुब्ध हैं। उनके काव्य में उपेक्षित और शोषित वर्ग के कारुणिक चित्रों में सहानुभूति व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से डॉ. राघव की 'साम्राज्यवाद के प्रति', 'अमरगीत', 'उफान', 'श्रमिक', 'साँझ', 'सहूर', 'संतराश', 'मशीन' आदि कविताओं में युगीन यथार्थ उपस्थित है। 'पिगलते पत्थर' की 'उफान' कविता का एक चित्र प्रस्तुत है, यथा–

''क्या कहूँ/घुटते हृदय की बात/हड्डियों का ढ़ेर/जिस पर लटकते हैं गिद्ध।"[3]

यहाँ आर्थिक अभिशापों से त्रस्त शोषित वर्ग का यथार्थ अंकन है। इसी तरह 'राह के दीपक' संग्रह की 'मजदूर' शीर्षक कविता की चंद पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं, जिसमें किसानों–मजदूरों की दयनीय स्थिति से कवि व्यथित हैं, यथा–

''माँ कंधों पर धरे बेलचे/कहाँ जा रहे हैं मजदूर/और चले ये संध्या आते
ऐसे जाने कितनी दूर/आने–जाने सूखे आनन/एक व्यथा से रहते चूर
जर्जर श्रममय क्लांत विक्षुब्धनत/रजमय गंदे दुख भरपुर।"[4]

डॉ. राघव की भाँति 'सुमन' जी ने भी शोषण से त्रस्त वर्ग की विभीषिकाओं और जीवन के अंधकारमय पक्ष को प्रस्तुत करने में अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। इस दृष्टि से उनकी 'कैसा मधुर सुप्रभात था', 'चारों ओर जल रही ज्वाला', 'हाय! नहीं यह देखा जाता', 'यह किसका कंकाल पड़ा है', 'बे–घरबार', 'कंकड़–पत्थर' आदि कविताएँ देखी जा सकती हैं। तुलना हेतु कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं, यथा :–

''हंत वह भूखा मानव बैठा/गोबर से दाने बीन रहा है/और झपट कुत्ते के मुँह से
जूठी रोटी छीन रहा है/साँस न बाहर–भीतर जाती/और कलेजा मुँह को आता।"[5]
''यह पूँजीवादी समाज के/जुल्मों का जंजाल पड़ा है।"[6]

दोनों कवियों की दृष्टि में सामाजिक–आर्थिक विषमता का मूल कारण साम्राज्यवाद–पूँजीवाद है, जिसने अन्याय, अत्याचार, शोषण का कहर बरसाकर जीवन को जर्जर बना दिया है। दोनों कवियों ने शोषक वर्ग का तीव्र विरोध किया तथा उसे जड़ से उखाड़ फैंकने के संकल्प के साथ उसे चुनौती भी दी है। डॉ. राघव की साम्राज्यवादी रक्त–पिपासुओं के प्रति घृणा, नफरत दृष्टव्य है, यथा :–

''हत्या, रक्ष, विश्वासघात, षड्यंत्र स्वार्थ के कुत्ते/कर्कश स्वर से भौंके,
रह–रह हड्डी चट–चट टूटी, दुर्भिक्षों के डाकू पनपे, प्रतिहिंसाएँ गरजी।"[7]

डॉ. राघव जैसी ही नफरत भरी आक्रोशी वाणी 'सुमन' जी के काव्य में भी अधिक मात्रा में सुनी जा सकती है, यथा–

''तेरे कारण मिटी मनुजता/माँग–माँग कर रोटी/
नोची श्वान–शृंगालों ने/जीवित मानव की बोटी
तेरे कारण मरघट–सा/जल उठा हमारा नंदन/
लाखों लाल अनाथ/लुटा अबलाओं का सुहाग–धन।"[8]

समाज के इसी शत्रु वर्ग को नष्ट–भ्रष्ट कर दोनों कवि समाज में आमूल–चूल परिवर्तन के आकांक्षी हैं। डॉ. राघव ''बदलना होगा आज समाज/कलुष की नींव मिटानी"[9] (मेधावी) की कामना करते हैं तो दूसरी ओर 'सुमन' जी भी इस कर्म में पीछे नहीं है, यथा– ''चाहता हूँ ध्वंस कर देना विषमता की यह कहानी/हो सुलभ सबको जगत् में वस्त्र–भोजन–अन्न–पानी।"[10] इसी लक्ष्य को हासिल करने के लिए दोनों कवियों ने रूसी क्रांति से प्रेरणा लेकर भारतीय जन–समूह को जाग्रत किया और स्वाधीनता आंदोलनों का समर्थन कर राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत काव्य लिखा है। डॉ. राघव ने 'अजेय खंडहर' में 'स्टालीनग्राद' के युद्ध (फासिस्ट जर्मनी और रूस का संघर्ष) का सजीव वर्णन कर रूस की प्रशस्ति का गायन किया है। कवि ने इस युद्ध को भारतीय स्वाधीनता संग्राम से जोड़कर देशवासियों को कर्तव्य–बोध कराया है, यथा–

''बंदी जाग/घर में लग गई है आग/चल बागी, प्रबल हुँकार
जागो याद कर गत मान/मेरे प्राण हिंदुस्तान/स्तालिनग्रेद हिंदुस्तान।"[11]

'सुमन' जी ने भी 'सोवियत रूस के प्रति', 'मास्को अब भी दूर है', 'स्तालिनग्रेद', 'बढ़ी जा रही है, बढ़ी लाल सेना' आदि कविताओं में सोवियत रूस की प्रशस्ति का गायन कर, रूसी प्रसंगों को भारतीय संदर्भों से जोड़ा है, यथा–

''दुनियाभर के मजलूमों अब/आज एक हो जाओ/हम मेहनतकश हमें कौन–सी/ताकत रोक सकेगी।"[12]

कवि ने भारतीय दलितों–पीड़ितों को संगठित करने में रूसी क्रांति से प्रेरणा ली है। दोनों कवियों ने साम्राज्यवाद–पूँजीवाद का विरोध अधिकांश रूप में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर किया है, यह युग की माँग भी थी। डॉ. राघव के अनुसार ('पिघलते पत्थर' संग्रह की पंक्तियाँ), यथा :–

''इस झूठे सौदागर का यह काला बाजार उठे/परदेशी का राज न हो, बस एक यही हुँकार उठे।"[13]

इसी तरह 'पिंघलते पत्थर' संग्रह की चंद पंक्तियाँ और दृष्टव्य है, यथा–

''एक–एक कील आजादी की/साम्राज्यवाद के घृणित कफन?
को मित्रों रक्त से, गूँद रही/कर नवल शक्ति का महा सृजन।"[14]

डॉ. राघव की 'राष्ट्र की पुकार', 'तड़कती बेड़ियाँ', 'मुक्ति–नाद', 'शहीद', 'अमरगीत', 'तलवार का गीत', 'माँझी' आदि कविताओं में राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। डॉ. राघव और 'सुमन' जी ने देश की संकट–ग्रस्त स्थिति को लक्षित कर देशवासियों में जागृति का संदेश प्रसारित किया तथा उन्हें कर्तव्य–बोध के साथ प्रेरित किया कि विदेशी शासन से संघर्ष कर भारत को आजादी दिलवाएँ। राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से 'सुमन' जी की 'यह तो विप्लव की वेला है', 'विद्रोह करो, विद्रोह करो', 'लो आज बज उठी रणभेरी', 'परीक्षा दो', 'नई आग है, नई आग है', 'आज देश की मिट्टी बोल उठी है' आदि कविताएँ देखी जा सकती हैं। डॉ. राघव की भाँति 'सुमन' जी भी साम्राज्यवाद को अपनी आँखों के सामने चूर–चूर होता देखना चाहते हैं, यथा–

''उठो–उठो मेरे शिव/तांडव नृत्य करो/कुहराम मचा दो।
कंगालों की अस्थि नींव पर खड़े/विश्व साम्राज्य की/आज ईंट से ईंट बजा दो।"[15]

नये संकल्प और विश्वास की वाणी दोनों कवियों के काव्य में अत्यंत सशक्त है, जिसके मूल में सामाजिक कल्याण की भावना निहित है। मानवता का कल्याण, मानव को कर्तव्य–बोध कराकर, उसे प्रगति–पथ पर अग्रसर करना, दोनों कवि अपना कर्तव्य समझते हैं। उनका यही रूप उन्हें जागरूक प्रगतिशील कवि सिद्ध करता है। डॉ. राघव मानव को कर्तव्य–बोध कराते हुए 'पिघलते पत्थर' संग्रह में लिखते हैं, यथा–

''युग–युग के चेतन दीप उठा/घर–घर लोक मंदिर छाएँ/
तू फिर से अपना चरण उठा/तू फिर से मैया फहरा दे
जन–जन मिल–मिलकर गाएगा/तू बाँट उठा दे अभयकर/साम्राज्य विकल थर्राएगा।"[16]

इस संदर्भ में कमला प्रसाद पांडेय ने भी लिखा है कि 'राघव की कतिपय रचनाओं में समाज–निर्माण की कामना है। कवि देश में नवीन संस्कृति का उदय चाहते हैं, जिसमें नये संकल्प हों, वर्ग–विषमता न हो और लोगों में आलस्य की भावना का नितांत अभाव हो।'[17] यही विचार 'सुमन' जी के काव्य पर भी सहज ही लागू होते हैं। 'सुमन' जी की प्रतिबद्धता दृष्टव्य है, यथा–

''ध्यान तक विश्राम का पथ पर महान् अनर्थ होगा/ऋण न युग का दे सका तो जन्म लेना व्यर्थ होगा।"[18]

आजादी के बाद 'सुमन' जी ने नव–निर्माण की कामना के साथ सजग रहने का संदेश प्रसारित किया है, यथा–

''घर–घर दीप संजोए जाएँ निष्ठा के/अमा का अँधेरा जिन्हें देख थरथराय।
एक बार जागकर राष्ट्र न सोए अहोरात्रि/विजय केतु विजया का द्वार फरफराय।"[19]

इस तरह हम देखते हैं कि डॉ. राघव की भाँति 'सुमन' जी भी मानव–जीवन की ओर दृष्टिपात करने वाले

प्रगतिशील साहित्य की उस परंपरा से संबंधित हैं, जिसमें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों ही दायित्वों के प्रति सजग रहने की चेष्टा है। डॉ. राघव का अल्पायु में देहांत हो जाता है, दूसरी ओर वे उपन्यासों के सृजन में अधिक सक्रिय रहे हैं, इसलिए काव्य–सृजन 'सुमन' जी की तुलना में कम ही कर पाए हैं। 'सुमन' जी के 'विंध्य–हिमालय' (1966 ई.), 'मिट्टी की बारात' (1972 ई.), 'वाणी की व्यथा' (1980 ई.), 'कटे अँगूठों की बंदनवारें' (1991 ई.) आदि काव्य–संग्रह डॉ. राघव के निधन के बाद रचित हैं, जिनमें वे एक प्रगतिशील कवि के रूप में अपनी खास पहचान बनाए रखते हैं। अतः देश की आजादी के बाद की घटनाएँ और व्यापक सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से 'सुमन' जी का काव्य प्रगतिवाद के अतिरिक्त वैभव के रूप में स्वीकारा जा सकता है।

इस तरह इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'सुमन' जी ने छायावादी संस्कारों से काव्यारंभ करने के बावजूद भी प्रगतिशील चेतना का मार्ग प्रशस्त किया, जिस पर दृढ़ रहकर सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व का पूर्ण सजकता के साथ निर्वाह करते हुए मानवीय कल्याण और उन्नयन को सृजन का मेरूदंड बनाया। उन्होंने जिस सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित किया, उसमें एक ओर युगीन वैषम्य का मर्मभरा यथार्थ उभरा है, युगीन समस्याओं का प्रकाशन हुआ है तो दूसरी ओर यथार्थ की गतिशीलता को लक्ष्य कर विषमताओं के बीच से गुजरते हुए सामाजिक शक्तियों का प्रत्यक्षीकरण है, जिसमें भावी समाज की सुख–समृद्धि निहित है। उनकी सामाजिक यथार्थ पर अद्भुत पकड़ है। वे समाज की असंगतियों, अंतर्विरोधों की गहरी समझ–परख के साथ तमाम विपरित परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए, वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ अनवरत् अभिशप्त जनता की मानसिकता में बदलाव लाने वाले एक ऐसे प्रकाशपुँज की भाँति प्रगतिशील काव्य में प्रतिष्ठित हैं, जिनके प्रकाश में अँधेरे में भटकती हुई जन–शक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः 'सुमन' जी हमारी जनवादी साहित्यिक विरासत के एक सजग प्रहरी कवि सिद्ध होते हैं।

'सुमन जी की काव्य–संवेदनाएँ उन ज्वलंत सामाजिक समस्याओं से उद्वेलित हैं, जो मानवता के कल्याण से जुड़ी हुई हैं। देश की स्वाधीनता के समय समाज की खुशहाली के, जो स्वप्न संजोए गए थे, वे पूरे नहीं होने पर कवि चिंतित होते हैं। समाज में अराजकता, भुखमरी, असमानता आदि की चुनौतियों को यथावत् देख कवि मानव–रक्षार्थ उबल पड़ते हैं, यथा–

''भूख की मरोर क्रूर / तिल–तिल तराशती जब / मानव–अस्तित्व को
बड़ी–बड़ी बातें तब / साहित्य और संस्कृति की / बगलें–सी झाँकती है।"[20]

''गीध मंडरा रहे हैं इर्द–गिर्द घेरे में / भेड़िये घात लगाए हैं इस अँधेरे में.....
जागकर एक बार राष्ट्र नहीं सोता है... / कदम–कदम पर यहाँ लुटेरों का डेरा है।"[21]

दूसरे उदाहरण में सामयिक परिवेश की भयावह स्थिति की हकीकत रेखांकित है। स्वतंत्रता दिवस की प्रथम वर्षगाँठ (15 अगस्त, 1948) पर कवि ने समाज की यथार्थ स्थिति पर एक विहंगम दृष्टि डालकर मानव–कल्याण को केंद्रित कर नौजवानों को शपथ दिलाते हैं कि हम प्रगति–पथ पर पल भर भी नहीं रुकेय यथा :–

"अब भी जन–जीवन जर्जर है / घर उजड़े हैं, मुँह सूखे हैं /
चालीस कोटि भगवान हमारे / अब भी नंगे–भूखे हैं.....
जब तक जन–गण–मन जीवन में / शोषण–तंत्रों का लेष रहे /

जब तक भारत माँ के आँचल में
एक दाग भी शेष रहे/हम विरक्त न हो संकल्पों से/
पल भर भी पथ पर न थमें/पंद्रह अगस्त की शपथ यही
तब तक आराम हराम हमें।"[22]

मानव–कल्याण के मार्ग में बाधित स्वार्थी नेताओं को भी कवि ने आक्रोशी मुद्रा में फटकारते हुए, उन पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया और उन्हें जाग्रत होने की चेतावनी दी है, यथा–

''ऐसी की तैसी/उन अस्मिता के केंचुओं की/दुनिया भर का दर्द/भोगने का जो दंभ लिए
साधते समाधि निर्विकल्प/न्यस्त स्वार्थों की/बाल भी बाँका कर सके न/आततायी का
तिनका भी न टाल सके/सर से सर्वहारा के/कोरी शान जिनकी/मात्र/अप्रतिबद्ध होने में।"[23]
''होश में आओ वर्ना बाद में पछताओगे/कब तक क्रांति को यों बरगलाते जाओगे।"[24]

'सुमन' जी की मानवतावादी–दृष्टि विश्व समाज को सुख–समृद्धि से संपन्न देखने की आकांक्षी है, इसलिए कवि कहते हैं, यथा–

"मानवीय संबंध बदले/दम न अब एक पल भी/हो न जाए विश्व/
विश्वसनीय जब तक/मैं प्रतिक्षारत् रहूँ अब और कब तक?''[25]

कवि विश्व–समाज को एक ऐसा स्वरूप देने की ओर तत्पर हैं, जिसमें शांति, प्रेम, ममता, करुणा, समता आदि मानवीय मूल्य फलीभूत हो सके, यथा–

"मानव ममता के स्रोतों के/नये बाँध अब बाँधों.../गाँधी सागर का जल/नेहरू की नहरों में ढालों
शांति–प्रेम संबोधि वृक्ष/फिर भारत में पनपा लो/इनकी कलमें देश–विदेशों को भेजी जाएगी।"[26]

पंडित नेहरू 'सुमन' जी के लोक प्रिय नेता थे। जब समाज के लोगों से कवि ने यह कहते सुना कि नेहरू अब जनता से दूर होते जा रहे हैं, तब कवि ने अपनी जिम्मेदारी समझकर नेहरू जैसे नेता को भी नहीं बक्शा, यथा–

"देख रहा हूँ आँख मीचे/देख रहा हूँ ऊपर–नीचे/सच्चाई से बैर नहीं है/
बिना कहे अब खैर नहीं है...स्वतंत्रता को निगल गई है कैसी कृत्या/
तुम सिंहासन पर पथ पर बापू की हत्या?''[27]

वस्तुतः 'सुमन' जी के काव्य का सिंहावलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि उनकी प्रगतिवादी कविताएँ नागार्जन–केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन की कविताओं के समक्ष ही नहीं, बल्कि उनकी अपेक्षा कहीं–कहीं बहुत गहराई से प्रगतिवादी आदर्शों की अभिव्यक्ति करती हैं। 'पथ भूल न जाना पथिक कहीं', 'तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार' जैसी बहुत–सी कविताओं का प्रभाव जनता में आज भी कायम है, जो आधुनिक मनुष्य को कर्म–संघर्ष और परिस्थिति से कभी न हारने की प्रेरणा देती हैं। उनके काव्य में देश और समाज में घटित हर प्रकार की अमानवीयता पर रोष है, जिसे नागार्जन की भाँति उनके समग्र काव्य में लक्षित कर सकते हैं। यह रोष कहीं चुनौती, कहीं ललकार, व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुआ है, जो उनकी निर्भीकता, कर्मठता, पक्षधरता का परिचय देकर, उनको सच्चा जनवादी कवि सिद्ध करता है। उनका काव्य अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी, पूँजीवादी एवं साम्प्रदायिक ताकतों से मुकाबला करने और विश्व–शांति हेतु प्रेरित कर मानवतावाद का पोषण करता है। यही

उनके काव्य का वैशिष्ट्य और प्रासंगिकता है।

'सुमन' जी के वैशिट्य को उभारते हुए प्रभाकर श्रोत्रिय ने ठीक ही लिखा है कि– '''सुमन' का अपना निराला अंदाज है। प्रगतिवादी कवियों में यदि नागार्जन अपने साफ, तीखे और तेजस्वी व्यंग्य के लिए प्रगतिवादी काव्य–धारा में अनुपम है, केदारनाथ अग्रवाल अपने बिंबों, चित्रों और ग्राम्य–जीवन के सहज चित्रण के लिए विख्यात हैय तो 'सुमन' अपनी प्रवाहपूर्ण अभिव्यंजना, काव्यमय उद्‌बोधन, साम्यवादी दर्शन को भारतीय संस्कृति और चेतना में अनस्यूत करने और मंच को काव्य–मंच बना देने में अपना सानी नहीं रखते। लंबी कविताओं की साधना और प्राणवत्ता 'सुमन' और 'मुक्तिबोध' को छोड़कर किसी अन्य प्रगतिवादी कवि में नहीं है। नागार्जन के पास वह कलात्मकता, दीर्घ प्रवाह, ओज और विरोधों के समन्वय की 'सुमन' जैसी सामर्थ्य नहीं है और केदार में प्रगतिवाद का सामयिक तेवर उतनी प्रबलता और स्पष्टता से उभरा नहीं है, क्योंकि जहाँ कहीं वे ऐसा करते हैं–उनकी कविता की अपनी विशिष्टता खो जाती है। डॉ. रांगेय राघव, त्रिलोचन शास्त्री और डॉ. रामविलास शर्मा की तत्कालीन सुमन से तुलना नहीं हो सकती।"[28]

वस्तुतः यहाँ यह कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी काव्य–धारा में 'सुमन' जी अन्य कवियो की तरह ऐसे उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं, जिनके काव्य के बिना हिंदी की प्रगतिशील कविता का समग्र मूल्यांकन करने का दावा निरा खोखला ही सिद्ध होगा। वस्तुतः उन्हें केवल रोमांटिक कवि करार देना बड़ी भूल होगी, क्योंकि उनका मूल स्वर समाजवादी–जनवादी ही है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची :-

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेश मिश्र, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1966 ई., पृष्ठ–214
2. छायावादोत्तर हिंदी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : डॉ. कमला प्रसाद पांडेय, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1972 ई., पृष्ठ–169
3. प्रगतिवादी काव्य : उमेश मिश्र, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1966 ई., पृष्ठ–219 से उद्धृत।
4. वही, पृष्ठ–219–220
5. जीवन के गान, सुमन समग्र–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–128
6. वही, पृष्ठ–134
7. हिंदी की प्रगतिवादी कविता : डॉ. सलमा खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2008 ई., पृष्ठ–248 से उद्धृत।
8. विश्वास बढ़ता ही गया, सुमन समग्र–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–246
9. हिंदी की प्रगतिवादी कविता : डॉ. सलमा खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2008 ई., पृष्ठ–247 से उद्धृत।
10. विश्वास बढ़ता ही गया, सुमन समग्र–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–219
11. हिंदी के प्रगतिशील और समकालीन कवि : डॉ. रणजीत, साहित्य रत्नालय, कानपुर, सं.–2001 ई.,

पृ.–120 से उद्धृत।
12. प्रलय–सृजन, सुमन समग्र–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–198
13. हिंदी की प्रगतिवादी कविता : डॉ. सलमा खान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2008 ई., पृष्ठ–249 से उद्धृत।
14. प्रगतिवादी काव्य : उमेश मिश्र, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1966, पृष्ठ–217 से उद्धृत।
15. विश्वास बढ़ता ही गया, सुमन समग्र–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–238
16. प्रगतिवादी काव्य : उमेश मिश्र, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1966, पृष्ठ–222 से उद्धृत।
17. छायावादोत्तर हिंदी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : डॉ. कमला प्रसाद पांडेय, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1972 ई., पृष्ठ–170
18. विश्वास बढ़ता ही गया, सुमन समग्र–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण –1997 ई., पृष्ठ–218
19. मिट्टी की बारात, सुमन समग्र–2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–198–199
20. वाणी की व्यथा, सुमन समग्र–2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–235
21. मिट्टी की बारात, सुमन समग्र–2, पृष्ठ–215
22. कटे अंगूठों की बंदनवारें, सुमन समग्र–2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–324–325
23. वही, पृष्ठ–303
24. मिट्टी की बारात, सुमन समग्र–2, पृष्ठ–217
25. कटे अंगूठों की बंदनवारें, सुमन समग्र–2, पृष्ठ–285
26. विंध्य–हिमालय, सुमन समग्र–2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997 ई., पृष्ठ–65
27. कटे अंगूठों की बंदनवारें, सुमन समग्र–2, पृष्ठ–328
28. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : मनुष्य और सृष्टा, लेखक–प्रभाकर श्रोत्रिय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति–1990 ई., पृष्ठ–148

पत्र व्यवहार का पता :–
डॉ. नेमीचंद कुमावत,
H. No. 16/3307, 100 फिट रोड, शारदा चौराहा के पास,
हरि ओम नगर, भीलवाड़ा, जिला–भीलवाड़ा (राजस्थान)।
पिन कोड नं. 311001, मो. नं. 92522–78880
E-Mail Id : nemichandkum1977@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 145–150

नवजागरणकालीन समाज सुधारक और स्त्री प्रश्न

पवन कुमार
शोध छात्र, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शोध सार :–

19वीं सदी से पूर्व भारत में समाज सुधारक स्त्रियों की कोई कमी नहीं रही है भले ही विभिन्न साम्राज्यों के नकारात्मक प्रभाव से भारतीय स्त्री के दायित्व और अधिकारों में फर्क जरूर रहा हो। चूँकि भारत बहुत लंबे समय तक विभिन्न विदेशी राजाओं के अधीन रहा है। लेकिन भारतीय स्त्री की गौरवशाली भूमिका ही उसे सदैव मनुष्य के रूप में अपने अस्तित्व को अविस्मरणीय बनाती आई है। भारतीय समाज विभिन्न धर्म ग्रंथों के अनुरूप ही कार्य करते आया है और उन भारतीय धर्म ग्रंथों में कोई भी धर्मग्रंथ न तो स्त्रियों द्वारा रचित है और न ही उसकी समीक्षा उनके द्वारा की गई है। अतः भारतीय नवजागरणकालीन समाज में दोयम दर्जे की स्थिति को देखते हुए स्त्रियों ने 19वीं सदी में संगठित होकर स्त्री की सदियों से चली आ रही अपारंपरिक स्थिति में सुधार लाने लिए कार्य करने पर बल दिया।

बीज शब्द :– स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, राजनितिक परिस्थितियां, आर्थिक कारण, सामाजिक परिवर्तन, समाज सुधार, राष्ट्रवाद, सामाजिक–असमानता, नवजागरण आन्दोलन में सहभागिता आदि।

मूल आलेख :–

औपनिवेशिक भारत में जो समय नवजागरण का माना गया है उसमें संगठित होकर पहली बार समाज में व्याप्त कुसंगतियों, राजनीति में भेदभाव और राष्ट्र के विकास में भागीदारी के रूप में अब तक उसके कर्म को अप्रभावी मानने की परंपरा को न केवल नकारा बल्कि 'जहां न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' की धारणा की सत्यता को अपने लेखन के द्वारा समय की जरूरत के आधार पर साबित भी किया। 19वीं सदी के मध्य में विभिन्न स्त्रियों ने विभिन्न तरीकों से स्त्री सुधार आंदोलन का श्रीगणेश किया और अधिक–से–अधिक स्त्रियों को संगठित करके अपने कर्म के मूल्य को पुरुषों के समक्ष प्रस्तुत किया। भले ही स्त्री–शिक्षा की अवधारणा के पीछे पुरुष समाज सुधारकों की श्मां के रूप में परिवार की भलाईश की अवधारणा काम कर रही थी किंतु पाश्चात्य स्त्री आंदोलनों से प्रेरणा लेकर विभिन्न स्त्री–समाज–सुधारकों ने भारतीय स्त्री की दशा और गति को भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में समझा और अपनी गतिविधियों से उन्हें बदलने का रास्ता और तरीका भी सुझाया। 19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में अंग्रेजी सरकार ने भारत में बालिका विद्यालय खोलने प्रारंभ कर दिए थे। इन बालिका विद्यालय के पाठ्यक्रम को लेकर काम भी होने लगा था। कुछ भारतीय विद्वान, भाषा, विज्ञान, गणित के साथ बालिकाओं को निपुण गृहिणी बनाने के लिए गृह–विज्ञान या यूँ कहें कि गृहस्थी में होने वाले कामों में बालिकाओं को दक्षता

प्रदान करने के लिए जोर दे रहे थे। इसके साथ–साथ उस समय का प्रमुख विषय– उन्हें शिक्षा प्रदान कौन करें? पर अधिक केंद्रित था। तत्कालीन युग में शिक्षित स्त्रियों की संख्या पर्याप्त ना होने के कारण प्रारंभ में यह कार्य पुरुषों द्वारा ही किया गया किंतु समय–समय पर इस विषय पर बहस होती रही कि स्त्री शिक्षा के लिए प्रशिक्षिकाएँ नियुक्त हों और वह भी देशी। अर्थात् अंग्रेज सरकार भारतीय बालिकाओं को भारतीय शिक्षिकाओं के द्वारा शिक्षित करने का प्रबंध करे। इस संदर्भ में सबसे पहले महाराष्ट्र के ज्योतिबा फूले ने अपनी पत्नी को "सन् 1848 को पेठ में भिंडे की हवेली में निचली जाति की समझी जाने वाली लड़कियों के स्कूल में विष्णुपंत थत्ते नामक ब्राह्मण शिक्षक के पढ़ाने से मना करने पर शिक्षिका के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया।"[1]

श्रीमती सावित्रीबाई फूले इस तरह भारत की प्रथम स्त्री एवं दलित जाति से संबंधित प्रथम शिक्षक के रूप में कार्यरत हुई। श्री एवं श्रीमती फूले ने बालिकाओं के पढ़ाने के साथ–साथ सर्वप्रथम विधवाओं के लिए श्प्रसूति गृहश का निर्माण करवाया, जिसका नाम रखा गया 'बालहत्या प्रतिबंधक गृह'। भले ही समाज–सेवा और स्त्री–शिक्षा के प्रसार के लिए ज्योतिबा फूले ने विभिन्न संस्थानों के साथ मिलकर उनका निर्माण किया, परंतु उनकी सच्ची एवं सुचारू रूप से क्रियान्वयव की जिम्मेदारी सावित्रीबाई फूले की ही थी। स्त्री शिक्षा के लिए देशी प्रशिक्षिकाओं की आवश्यकता पर फूले के बाद पंडिता रमाबाई ने प्रबल समर्थन दिया। उन्होंने 1882 ई. में इंग्लिश एजुकेशन कमीशन जो कि पूना में आया के समक्ष अपने सुझाव रखते हुए कहा किः– "शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं को बराबरी का दर्जा मिले। महिला शिक्षिकाएँ बहाल की जाए। उनकी अलग से ट्रेनिंग हो। अपनी भाषा के अलावा अंग्रेजी सीखें। पुरुषों की तुलना में उन्हें ज्यादा तनख्वाह मिलें, क्योंकि उनका चरित्र और ओहदा बेहतर होना चाहिए। कॉलेज परिसर में शिक्षिका और छात्राओं के रहने की व्यवस्था होनी चाहिए और वहाँ उनकी सहूलियत की सारी चीजें उपलब्ध होनी चाहिए।"[2]

उन्होंने इस पर कार्य करते हुए 11 मार्च, 1889 ई. को बंबई में श्शारदा–सदन की स्थापना की। इस सदन में विधवाओं के रहने और शिक्षा की पूरी व्यवस्था की गई। इस शारदा–सदन में की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि प्रत्येक बालिका अपनी धार्मिक अभिव्यक्ति के लिए पूर्णतः स्वतंत्रत थी और इस सदन की एक बाल विधवा गोधुबाई का विवाह डॉक्टर कर्वे के साथ हुआ। जिन्होंने 1896 ई. में हिंदू विधवाओं के लिए 'अनाथ बालिकाश्रम' खोला। पंडिता रमाबाई ने न केवल विधवाओं के लिए आश्रय की पूर्ति की बल्कि उन्होंने अनाथ बच्चों के लिए भी सन् 1898 में 'सदानंद सदन' खोला। जिसमें पढ़ाई के साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी की गई। 1890 के दशक में रमाबाई ने स्त्री के सामाजिक जीवन के साथ धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया। सन् 1806 में उन्होंने मथुरा, वृंदावन के पुजारियों की विधवाओं के साथ की जाने वाली अमानवीयता को भी बेपर्दा किया।

स्त्रियों के सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने के लिए 1880–1890 को दशक महत्वपूर्ण रहे हैं। इस समय न केवल आंदोलनों के जरिए बल्कि कलम के माध्यम से भी दीन–हीन अवस्था और समाज की दोगली मानसिकता को जगजाहिर किया गया। इस समय भले ही ऐसी स्त्रियों को कम महत्वपूर्ण या उनके लिखें साहित्य को 'छोटा और मनोरंजन' कहकर उपेक्षित किया गया किंतु सार्वजनिक क्षेत्र में विद्रोही स्त्रियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई। "बंगाल में निरुपमा देवी और अनुरूपा देवी, महाराष्ट्र की पहली महिला उपन्यासकार काशीबाई कानितकर ने 1890 के दशक में लेखन प्रारंभ किया तथा ठीक इसी समय महाराष्ट्र की पहली महिला

डॉक्टर आनंदीबाई जोशी ने अपनी शिक्षा पूरी की।"[3]

1882 ई. में ताराबाई शिंदे की पुस्तक स्त्री–पुरुष तुलना में शिंदे ने स्त्रियों के पक्ष का गहराई से बचाव करते हुए उपसंहार में लिखा है कि स्त्रियाँ अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण हमेशा सम्माननीय तथा अग्नि की तरह पवित्र एवं आंतरिक तथा बाह्य दोनों रूपों में सुपात्र मानी जाएँगी। पुस्तक पर सत्यशोधक समाज के फूले और कृष्णराव भालेलकर के मध्य गरमा–गरम बहस शुरू हुई। जिसमें भालेलकर की टिप्पणी पर फूले ने भालेलकर पर आरोप लगाया कि वह उस परंपरागत भारतीय प्रणाली का बचाव कर रहे हैं जिसमें पुरुषों को हर प्रकार की मनमानी करने की छूट तथा स्त्रियों को असहाय तथा घर की चारदीवारी में कैद करके रखने का रिवाज है। स्त्री के नवजागरण आंदोलन में योगदान के अंतर्गत इस घटना का वर्णन यह दर्शाने के लिए किया गया है कि जिन पुरुषों के सहयोग और मार्गदर्शन केवल पर स्त्रियों ने स्वयं के विषय में व्यापक रूप से सोचने, समझने और कहने का साहस पाया था वह सिर्फ एक पक्षीय नहीं था। इस दोहरे चरित्र के कारण ही भारत में सबसे पहले विधवाओं की शिक्षा और उनकी आत्मनिर्भरता के लिए प्रयासरत पंडित रमाबाई को हाशिए पर धकेल कर डॉ. कर्वे को इसका पूरा–पूरा श्रेय दिया जाता रहा है।

इसके पीछे के कारणों पर विचार करते हुए राधा कुमार लिखती हैं किः– "जहां तक पंडिता रमाबाई को हाशिए पर डाल दिए जाने के कारणों की बात है, वस्तुतः उनका रूढ़िवाद विरोधी रवैया तथा उनकी आत्मनिर्भरता ही एक स्त्री के रूप में उनका अवगुण माना गया।"[4] इसी दौरान भारतीय नवजागरण को आरंभ स्थल बंगाल में राष्ट्रवादी गतिविधियों में स्त्रियों की भूमिका बढ़ रही थी। "कुमुदिनी मित्रा ने शशिक्षित ब्राह्मण स्त्रियों का गुट तैयार किया जो भूमिगत क्रांतिकारियों के माध्यम सूचनाओं का आदान–प्रदान करता था।"[5] लीलावती मित्रा ने 1890 के दशक में विधवा पुनर्विवाह कराने में सहायता की तथा क्रांतिकारी छात्रों की सहायता की। "सन् 1909 में अरविंद घोष के जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने अपने घर में शरण दी।"[6] अघोरी कामिनी राय एक कन्या पाठशाला चलाती थी। उन्होंने बाद में एक 'महिला समाज कल्याण संगठन' बनाया जिसे आगे चलकर 'अघोरी कामिनी नारी समिति के रूप में जाना गया। "समिति ने असम के चाय बागान मालिकों द्वारा महिला श्रमिकों के शोषण के विरुद्ध अभियान चलाया। यह ऐसा कार्य था जिसको राष्ट्रवादियों ने सन 1880 के दशक में पहली बार समर्थन दिया।"[7]

इस दौर में बहुत सी स्त्री जो कि विभिन्न समाज–सुधार कार्यक्रमों में सक्रिय तो थी, पर वे राष्ट्रवादी विचारों एवं अभियानों के प्रसार से अनभिज्ञ थी। दिलचस्प बात यह है कि इनमें से कुछ स्त्रियाँ सुधारवादी तथा क्रांतिकारी लेखिकाएँ थी। "इनमें नागेंद्र कला मुस्तफा, मनकुमारी बासु, कुमुदिनी राय शामिल थीं जिन्होंने स्त्रियों की नैतिकता एवं कर्तव्य तथा स्त्री शिक्षा इत्यादि विषयों पर बांग्ला में कविताएँ, कहानियाँ, नाटक तथा निबंध लिखे तथा उन्हें प्रकाशित भी करवाया।"[8] महाराष्ट्र में पंडिता रमाबाई के साथ काशीबाई कानितकर, मैरी भोरे, गोदावरी समस्कर, पार्वती बाई तथा रुकिमणी बाई अपने लेखन के जरिए जानी जाने लगी थी। "इंडियन लेडीस मैगजीन की संपादक कमला सत्यानंदन एक उपन्यासकार थी।"[9] वहीं उत्तर भारत में रामेश्वरी नेहरू ने सन् 1909 में स्त्री दर्पण नामक एक मासिक पत्रिका का संपादन किया। रूपकुमारी नेहरू ने एक साथी पत्रिका लड़कियों के लिए प्रकाशित की जिसका नाम था कुमारी दर्पण। "उसी दौरान महिलाओं की गृह लक्ष्मी एवं चाँद नामक दो अन्य पत्रिकाएं भी शुरू हुई जिनमें से एक का संपादन एक महिला द्वारा किया गया तथा दूसरी पत्रिका में एक महिला मैनेजर थी।"[10] 20वीं सदी के प्रथम दशक में भारतीय स्त्री के बहुमुखी व्यक्तित्व और उसके योगदान को

वैश्विक अवधारणा में बदल दिया गया। चूँकि इस समय तक भारत में उदारवादी राष्ट्रीय विचारधारा के साथ–साथ क्रांतिकारी विचारधारा के सदस्य रूप में भी स्त्रियों ने अपने योगदान को राष्ट्रहित के रूप में अनिवार्य मानना, अपना धर्म समझ लिया था। स्त्री–शिक्षा राष्ट्रहित में अनिवार्य तत्वों के रूप में 1904–05 के आसपास उभर कर आई। 19वीं सदी में जहां पुरुषों के नेतृत्व में महिलाएँ कार्यशील थी, वहीं 20वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में वे इस बात पर प्रभावपूर्ण रूप से अपने विचार राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका को लेकर रखने लगी। उदाहरण के रूप में कलकत्ता में सन् 1906 में संपन्न हुए श्भारतीय समाज सम्मेलन में बोलते हुए सरोजिनी नायडू ने कहा कि :– "पालना झूलाने वाले हाथ ही विश्व पर शासन करते हैं।"[11] सरोजिनी की उद्‌गार भविष्य के स्त्री आंदोलन के सूत्रधार बने। सरोजिनी की तरह बहुत सारी स्त्री बुद्धिजीवियों की मान्यता थी कि बगैर सामाजिक सरोकारों के पूरा किए हम राजनीतिक दृष्टिकोण से भारत को राष्ट्र रूप में नहीं देख सकेंगे। अतः 20वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों में अंगुली पकड़ करें चलने वाली स्त्री नेतृत्व और साहस की प्रतिमूर्ति के रूप में उभर प्रकट हुई।

स्त्री–पुरुष की समानता की यह अवधारणा कई स्त्रियों द्वारा पुष्ट की गई है। उदाहरण के रूप में सरला राय, जो कि स्वयं भी एक सुधारक थी, के अनुसार, वे तथा गोखले आपस में अक्सर सामाजिक तथा राजनीतिक प्रगति के मुद्दे पर चर्चा करते और हमेशा इस बात पर विवाद खड़ा हो जाता कि किस विषय को पहले लिया जाए। वर्षों की बहस के पश्चात् अंततः वे इस बात पर सहमत हो गए कि दोनों ही मनुष्य के हाथ एवं पैर की तरह हैं– एक के बगैर दूसरे का काम नहीं चल सकता। बकौल राधा कुमार–"बहरहाल, अगर पहले का दौर सुधारवादी स्त्रियों में राष्ट्रवाद के प्रभाव को दर्शाता है, वहीं हम पाते हैं कि सन् 1910 के बाद उग्रराष्ट्रवादी स्त्रियाँ महिला अधिकारों के मुद्दे पर होने वाले आंदोलनों में ज्यादा सक्रिय नजर आई। सन् 1913 में क्रांतिकारी आतंकवाद की समर्थक कुमुदिनी मित्रा को बुड़ापेस्ट में संपन्न हुई इंटरनेशनल वीमेन सफरेज अलायंस कांग्रेस में 'भारतीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारतीय प्रतिनिधि' के रूप में आमंत्रित किया गया।"[12]

स्त्रियों के राजनैतिक योगदान एवं अधिकारों के लिए सन् 1910 में सरला देवी ने भारत स्त्री महामंडल की स्थापना की सन् 1917 में एनी बेसेंट, डोरोथी, जिन राज दास, मालती पटवर्धन, अम्मू स्वामीनाथन, श्रीमती दादा भाई एवं श्रीमत् अंबुजम्मल ने मिलकर वुमेंस एसोसिएशन की स्थापना की। सरोजिनी नायडू की सन् 1918 में कांग्रेस के बंबई अधिवेशन में स्त्रियों को वोट देने के अधिकार संबंधी प्रस्ताव पारित कराने में सक्रिय भूमिका रही। सन् 1919 में इंग्लैंड की पार्लियामेंट समिति के सामने नायडू, एनी बेसेंट, हीराबाई टाटा एवं मिट्ठी बाई टाटा के प्रतिनिधिमंडल ने मताधिकार की माँग की। "ब्रिटिश सरकार ने 1919 में भारतीय विधान सभाओं को एतद्विषयक निर्णय करने का अधिकार दिया और इस प्रकार सर्वप्रथम सन् 1921 ने मद्रास विधानसभा में स्त्रियों को मताधिकार दिया। सन् 1929 तक लगभग सभी प्रांतीय विधानसभाओं ने यह अधिकार स्त्रियों को दे दिया था।"[13] सन् 1919 कई मायनों में महत्वपूर्ण है। इस समय लज्जावती आर्य कन्या महाविद्यालय की प्रधानाचार्य बनी तथा सन् 1919 में राष्ट्रवादी आंदोलन में शामिल हुई। "कन्या महाविद्यालय की अनेक पूर्व छात्राएँ राष्ट्रवादी कार्यकर्ता बन गई जिनमें मेरठ की पार्वती देवी सन् 1920 के नागरिक अवज्ञा आंदोलन में जेल जाने वाली प्रथम महिला थी।"[14] सन् 1921–22 के आंदोलन के बाद कुछ स्त्रियों ने यह विचार व्यक्त करना शुरू कर दिया कि स्त्रियाँ अगर आजाद होना चाहती हैं तो उन्हें पुरुषों के साथ संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए। "दोनों लिंगों में बराबरी

की जहाँ तक बात है, यह स्वयं समानता के सिद्धांत पर आधारित है न कि किसी की दया पर।"[15] लिंग आधारित समानता के आधार पर काम के अधिकार और वेतन संबंधी भेदभाव पर इसी दशक में बहुत प्रयास हुए। सन् 1920 के दशक के उत्तरार्द्ध में मजदूर आंदोलनों में महिलाओं की उपस्थिति देखने लायक थी। उस समय कई महिलाएं ट्रेड यूनियन नेता थी। मणिबेन कारे रेलवे मजदूरों की समाजवादी नेता थी तो उषाबाई डांगे एवं पार्वती भोरे कपड़ा मजदूरों की कम्युनिस्ट नेताओं के रूप में उभरकर आई।

निष्कर्ष :-

भारतीय नवजागरण के दौरान स्त्री आंदोलन की प्रथम शुरुआत समाज सुधारक राजा राम मोहन राय के सती प्रथा के रोक से शुरू की जाए तो इसने भारतीय मेधा को आंतरिक और बाह्य रूप से सामाजिक व्यवस्था और इसमें स्थिति स्त्री की स्थिति पर अमूल चूल परिवर्तन करने के लिए शिक्षा को सर्वप्रथम हथियार रूप में प्रयुक्त करने की प्रेरणा दी। शिक्षा के माध्यम से तब से लेकर आज तक की स्थिति के बारे में भी विवेचन करे तो पाएंगे कि निरूसंदेह स्थिति में बदलाव आया है। परन्तु सदियों से चली आ रही मानव–प्रवृत्तियाँ स्त्री की वास्तविक स्थिति से उसे दूर रखने का काम आज भी निर्बाध गति से करती आ रही हैं। हालाँकि नकारात्मक पर प्रहार सकारात्मक ने किया है और खुशी की बात है कि 19वीं सदी की स्त्री की स्थिति में जो बदलाव आया वह नवजागरणकालीन आंदोलनों से आया है।

संदर्भ :-

1. पंडिता रमाबाई, द हाई कास्ट हिंदू वूमेन, अनु शंभु जोशी : हिन्दू स्त्री का जीवन (परिशिष्ट), पृ. 11
2. इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली में मीरा कोसाम्बी का आलेख– वीमेन, इमेन्सिपेशन एंड इक्यैलिटी पंडिता रमाबाईश्ज कान्ट्रीब्यूशन टू वीमेन 'ज काज', वर्ष 23, अंक 44, अक्टूबर, 1988, पृ. 39
3. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 78–79
4. वही, पृ. 100–101
5. मनमोहन कौर, रोल ऑफ वीमेन इन द फीडम मूवमेंट 1885–1947, दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1968, पृ. 97
6. उमा चकवर्ती, कंडीशन ऑफ बेंगाली वूमेन अराउंड द सेकंड हाफ ऑफ द 19जी सेंचुरी, कलकत्ता, 1963, पृ. 132
7. वही, पृ. 124–125
8. वहीं, पू. 129–141
9. सीताराम सिंह, नेशनलिज्म एण्ड सोशल रिफॉर्म इन इंडिया : 1885–1920 दिल्ली, रंजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, पृ. 189
10. वीर भारत तलवार का आलेख वीमेंस जर्नल्स इन हिन्दी 1910–1929 'संपादक सांगरी एवं वैद– रिकास्टिंग वीमेन', काली फॉर वीमेन, दिल्ली, 1989, पृ. 206–210
11. सरोजनी नायडू, 'स्पीचेज एंड राइटिंग्स' मद्रास, जी. ए. नेटसन, 1904, पृ. 18–20
12. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022 पृ. 120

13. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, हिंदी उपन्यास में कामकाजी महिला, पृ. 42
14. सुश्री लज्जावंती, इंटरव्यू एन. एम. एम. एल, ओरल हिस्ट्री सेक्शन, पृ. 3
15. इंद्राणी चटर्जी का अप्रकाशित शोध प्रबंध बंगाली भद्र महिला– 1930–34, जे. एन. यू. 1986, पृ. 91–94

M. 9415497300
pawanbhu54@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 151–157

संगीत और गणित : एक गहरा संबंध

Jitendra Saini
Assistant Professor, Department of Education
Institute of Advanced Studies in Education (Deemed to be University) Sardarshahar, Rajasthan

परिचय :-

संगीत और गणित, देखने में भले ही दो भिन्न विषय लगते हों, लेकिन इनके बीच एक गहरा और स्वाभाविक संबंध मौजूद है। संगीत, जहां भावनाओं और अभिव्यक्ति का माध्यम है, वहीं गणित तर्क, संख्याओं और संरचना पर आधारित एक विज्ञान है। परंतु अगर हम गहराई से विश्लेषण करें, तो पाएंगे कि संगीत की प्रत्येक ध्वनि, स्वर, लय और ताल एक व्यवस्थित गणितीय ढांचे के अनुरूप संचालित होते हैं। ध्वनि की तरंगों की गति, उनकी आवृत्ति और संगीतमय संयोजन को समझने के लिए गणित के सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है। संगीत में सुरों का संयोजन और उनका अनुपात, लय का क्रमबद्ध दोहराव, और ताल की सटीक गणना, सभी गणितीय अवधारणाओं से प्रभावित होते हैं। जब कोई संगीतकार किसी रचना की रचना करता है, तो वह अनजाने में भी गणितीय पैटर्न और गणनाओं का उपयोग करता है। संगीत की धुनें अक्सर विशिष्ट गणितीय अनुपातों और तालबद्ध संरचनाओं पर आधारित होती हैं, जिससे उनकी सहजता और मधुरता बनी रहती है। उदाहरण के लिए, सप्तक में स्वरों की व्यवस्था एक निश्चित गणितीय पैटर्न का पालन करती है, और ताल में बीट्स को गणनात्मक रूप से विभाजित किया जाता है।

पश्चिमी और भारतीय संगीत दोनों में ही ताल और लय के संयोजन गणितीय सिद्धांतों पर आधारित होते हैं, जो इसे एक विशिष्ट संरचना और प्रवाह प्रदान करते हैं। इसके अलावा, संगीत के कई पहलू, जैसे ध्वनि की तीव्रता, उसकी गूंज, और स्वरूप, भौतिकी और गणित के गहन अध्ययन से जुड़े होते हैं। डिजिटल संगीत के क्षेत्र में भी गणितीय एल्गोरिदम और सांख्यिकी का उपयोग किया जाता है, जिससे ध्वनि की गुणवत्ता और संरचना को बेहतर बनाया जा सके। कुल मिलाकर, गणित संगीत के मूल तत्वों में इतनी गहराई से समाया हुआ है कि इसे अलग करके देखना संभव नहीं है। आइए, विस्तार से समझते हैं कि गणित किस प्रकार संगीत की नींव को मजबूत करता है और उसे एक परिपूर्ण रूप प्रदान करता है।

1. संगीत में गणित की भूमिका :-

(क) ध्वनि और आवृत्ति (Frequency & Pitch) :

संगीत में प्रयुक्त प्रत्येक स्वर की आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) को गणितीय रूप से मापा और व्यवस्थित किया जा सकता है, जिससे सुरों के बीच तालमेल और संतुलन बना रहता है। उदाहरण के लिए, यदि 'सा' (शुद्ध मध्य

सप्तक) की आवृत्ति 240 Hz है, तो रे, ग, म, प, ध और नि की आवृत्तियाँ भी एक निश्चित गणितीय अनुपात में व्यवस्थित होंगी। यह अनुपात संगीतमय सामंजस्य (हार्मनी) और माधुर्य (मेलोडी) को परिभाषित करता है। पश्चिमी संगीत में "A" नोट की मानक आवृत्ति 440 Hz मानी जाती है, और अन्य स्वरों की आवृत्ति इसके सापेक्ष गणितीय रूप से निर्धारित की जाती है। भारतीय और पश्चिमी संगीत में स्वरों का यह गणितीय विभाजन उन्हें वैज्ञानिक और तार्किक आधार प्रदान करता है। संगीत की यह संरचना केवल सुनने में मधुर नहीं होती, बल्कि यह ध्वनि तरंगों के वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित होती है। इसके अलावा, सप्तक में एक ही स्वर का ऊंचा या नीचा रूप दोगुनी या आधी आवृत्ति पर स्थित होता है। यानी, यदि एक सप्तक में 'सा' 240 Hz पर स्थित है, तो अगले उच्च सप्तक का 'सा' 480 Hz होगा। यह नियम संगीत को एक तार्किक अनुशासन में बांधता है और सुनिश्चित करता है कि सुरों की पुनरावृत्ति में सामंजस्य बना रहे। ध्वनि तरंगों और उनकी आवृत्तियों का यह गणितीय आधार संगीत को केवल एक कला नहीं, बल्कि एक विज्ञान भी बनाता है। आधुनिक यंत्रों और डिजिटल संगीत में भी इन गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है, जिससे ध्वनि की शुद्धता और गुणवत्ता को बनाए रखा जा सके। यह दर्शाता है कि संगीत न केवल रचनात्मकता का, बल्कि गणना और संरचना का भी परिणाम है।

(ख) स्वर संधि और अनुपात (Intervals & Ratios) :–

प्राचीन यूनानी दार्शनिक पायथागोरस ने यह खोज की थी कि संगीत में प्रयुक्त सुर विशेष गणितीय अनुपातों में व्यवस्थित होते हैं, जिससे ध्वनि में सामंजस्य और माधुर्य उत्पन्न होता है। उन्होंने एकल तार वाले वाद्ययंत्र (मोनोकॉर्ड) पर प्रयोग करके यह पाया कि यदि एक तार किसी विशेष लंबाई का है और वह 'सा' स्वर उत्पन्न करता है, तो जब उस तार की लंबाई आधी कर दी जाती है, तो वही स्वर अगले सप्तक में (साश) उत्पन्न होता है। इसी तरह, अन्य स्वरों की आवृत्तियाँ भी तार की लंबाई के गणितीय अनुपातों (जैसे 3:2, 4:3, 5:4 आदि) के अनुसार बदलती हैं। पायथागोरस के इस सिद्धांत ने यह स्पष्ट किया कि संगीत केवल भावनाओं का विषय नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक सटीक गणितीय संरचना भी कार्य करती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत और पश्चिमी संगीत दोनों में इस अवधारणा का महत्व है। भारतीय संगीत में 'श्रुति' और 'स्वर' की ध्वनि तरंगें भी इसी वैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित हैं। आधुनिक संगीत सिद्धांतों में भी पायथागोरस के अनुपातों का उपयोग किया जाता है, खासकर ध्वनि उत्पादन और ध्वनि इंजीनियरिंग में। आज भी वाद्ययंत्रों की ट्यूनिंग (स्वर–सामंजस्य) इन्हीं गणितीय अनुपातों के आधार पर की जाती है, ताकि शुद्ध और संतुलित ध्वनि उत्पन्न हो। डिजिटल संगीत, साउंड डिजाइन और इलेक्ट्रॉनिक ध्वनि उत्पादन में भी इन सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि संगीत और गणित का संबंध प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक अटूट बना हुआ है।

(ग) ताल और बीट्स (Rhythm & Time Signatures) :–

तालबद्ध संगीत में लय और बीट्स का गणितीय ढंग से विभाजन किया जाता है, जिससे संगीत में संतुलन और अनुशासन बना रहता है। पश्चिमी संगीत में 'टाइम सिग्नेचर' का उपयोग किया जाता है, जहां प्रत्येक मापनी (बार) में कितने बीट्स होंगे, यह तय किया जाता है। उदाहरण के लिए, 4/4 ताल में चार समान रूप से विभाजित बीट्स होते हैं, जबकि 3/4 ताल में प्रत्येक मापनी में तीन बीट्स होते हैं, जिससे संगीत की प्रवाहशीलता और गति निर्धारित होती है। इसी प्रकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का निर्माण विशिष्ट

गणितीय संरचनाओं के आधार पर किया जाता है।

भारतीय संगीत में लय की तीन प्रमुख गतियाँ होती हैं – 'तीव्र' (तेज गति), 'मध्य' (सामान्य गति), और 'विलंबित' (धीमी गति), जिनका निर्धारण गणनात्मक रूप से किया जाता है। प्रत्येक ताल, चाहे वह 'तीन ताल' (16 मात्राएँ), 'झपताल' (10 मात्राएँ) या 'एकताल' (12 मात्राएँ) हो, एक निश्चित मात्रिक गणना के अनुरूप चलता है। तबला, मृदंग और पखावज जैसे वाद्ययंत्रों की थापों में गहरी गणितीय जटिलता होती है, जहां 'सम', 'खाली', और 'ताली' का संयोजन ताल की संपूर्ण संरचना को परिभाषित करता है। इसके अलावा, संगीत में 'फिबोनाची अनुक्रम' और 'गोल्डन रेशियो' जैसी गणितीय अवधारणाएँ भी देखी जाती हैं, जो ध्वनि संरचना को संतुलित और कर्णप्रिय बनाती हैं। जटिल तालों, जैसे कि 'आड़ा', 'कुंवारा', और 'मिश्र' तालों में गणितीय विभाजन और संयोजन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आधुनिक संगीत कंपोजिशन और डिजिटल बीट प्रोग्रामिंग में भी इन गणितीय संरचनाओं का उपयोग किया जाता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि लयबद्ध संगीत केवल भावनाओं का माध्यम नहीं है, बल्कि गणितीय अनुशासन का एक जीवंत उदाहरण भी है।

2. गणित में संगीत की भूमिका :-

(क) गणितीय पैटर्न और संगीत :

गणित में विभिन्न प्रकार के पैटर्न देखने को मिलते हैं, और इन्हीं पैटर्नों की गूंज संगीत में भी सुनाई देती है। संगीत संरचना में कई बार संख्यात्मक अनुक्रम और गणितीय अनुपातों का उपयोग किया जाता है, जिससे धुनों में एक स्वाभाविक प्रवाह और संतुलन बना रहता है। उदाहरण के लिए, फाइबोनाची अनुक्रम (1, 1, 2, 3, 5, 8, 13–) संगीत रचनाओं में प्रयोग किया जाता है, जहां स्वरों और तालों की व्यवस्था इसी पैटर्न के अनुसार बनाई जाती है। यह अनुक्रम ध्वनि तरंगों के प्राकृतिक प्रवाह से मेल खाता है, जिससे रचनाएँ अधिक मधुर और संतुलित लगती हैं। फाइबोनाची अनुक्रम और 'गोल्डन रेशियो' (1.618) को कई महान संगीतकारों ने अपनी रचनाओं में अपनाया है। पश्चिमी शास्त्रीय संगीत में बाख, बीथोवन और मोत्जार्ट की रचनाओं में इन पैटर्नों का उपयोग देखा गया है, जहां संगीतमय खंड और धुनों की लंबाई इस अनुपात में व्यवस्थित की जाती थी। भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी रागों की संरचना और तालों का विभाजन कई बार इन गणितीय पैटर्नों का अनुसरण करता है, जिससे संगीत अधिक सहज और सुमधुर लगता है।

इसके अलावा, जटिल लयबद्ध संरचनाओं में गणितीय पैटर्न महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय ताल प्रणाली में 'फिबोनाची आधारित ताल' देखे जा सकते हैं, जहां मात्राओं का विभाजन इस अनुक्रम से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, कुछ संगीत रचनाओं में बीट्स को 2, 3, 5, 8 जैसे समूहों में विभाजित किया जाता है, जो स्वाभाविक रूप से श्रोताओं को आकर्षक और संतुलित प्रतीत होते हैं। आधुनिक संगीत निर्माण में भी गणितीय पैटर्न का उपयोग देखा जाता है। इलेक्ट्रॉनिक संगीत में बीट्स और ध्वनि तरंगों की संरचना में गणितीय गणनाएँ की जाती हैं, जिससे संगीत की गुणवत्ता और प्रभावशीलता को बढ़ाया जाता है। कुल मिलाकर, संगीत केवल एक कला नहीं, बल्कि गणितीय पैटर्नों और तार्किक संरचनाओं का भी अद्‌भुत संगम है, जो इसे और अधिक प्रभावशाली और वैज्ञानिक बनाता है।

(ख) फ्रैक्टल्स और संगीत :-

फ्रैक्टल्स ऐसे गणितीय पैटर्न होते हैं जो स्वयं को विभिन्न स्तरों पर दोहराते हैं, यानी एक ही संरचना

छोटे और बड़े दोनों पैमानों पर समान दिखाई देती है। यह अवधारणा न केवल गणित और प्रकृति में बल्कि संगीत में भी देखी जा सकती है। कई संगीत रचनाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें धुनों और तालों की पुनरावृत्ति होती है, लेकिन हर बार थोड़े बदलाव के साथ, जिससे संगीतमय प्रवाह में संतुलन और आकर्षण बना रहता है। इस तरह की संरचना संगीत को एक प्राकृतिक लय और माधुर्य प्रदान करती है, ठीक वैसे ही जैसे गणित में फ्रैक्टल्स एक अनंत पैटर्न की छवि प्रस्तुत करते हैं। पश्चिमी संगीत में बाख और बीथोवन जैसे महान संगीतकारों की रचनाओं में फ्रैक्टल जैसी संरचना पाई जाती है। उदाहरण के लिए, कुछ धुनें या लयबद्ध पैटर्न पूरे संगीत में अलग–अलग रूपों में बार–बार उभरते हैं, लेकिन हर बार उनमें थोड़ी विविधता होती है।

इसी तरह, भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी रागों और तालों में इस तरह की पुनरावृत्ति देखी जाती है। रागों में एक ही स्वर समूह को अलग–अलग सप्तकों और लय संरचनाओं में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे संगीत की गहराई और जटिलता बढ़ती है। फ्रैक्टल संरचना का उपयोग आधुनिक संगीत में भी होता है, खासकर इलेक्ट्रॉनिक और जॉज संगीत में, जहां ध्वनि तरंगों के पैटर्न और लय के क्रमबद्ध दोहराव को एक विशिष्ट गणितीय क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। कुछ कंपोजर्स और साउंड इंजीनियर्स फ्रैक्टल गणित का उपयोग करके ध्वनि डिजाइन और म्यूजिक प्रोडक्शन में अनोखे प्रभाव उत्पन्न करते हैं। यह सिद्ध करता है कि संगीत केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह गणितीय संरचनाओं और पैटर्नों पर भी आधारित है। फ्रैक्टल पैटर्न न केवल संगीत को तार्किक और संतुलित बनाते हैं, बल्कि इसे अधिक आकर्षक और स्वाभाविक रूप भी देते हैं।

(ग) डिजिटल संगीत और गणित :

आज के डिजिटल युग में संगीत न केवल एक कला है, बल्कि यह गणितीय तकनीकों और कंप्यूटर विज्ञान के गहरे सहयोग से भी संचालित होता है। आधुनिक तकनीक के कारण संगीत को डिजिटल रूप में संरक्षित, संपादित और संशोधित किया जा सकता है, जिससे इसकी गुणवत्ता और उपयोगिता में अत्यधिक सुधार हुआ है। कंप्यूटर गणितीय एल्गोरिदम का उपयोग करके ध्वनि तरंगों को डिजिटल संकेतों में परिवर्तित करता है, जिससे संगीत को रिकॉर्ड, स्टोर और प्रसारित करना आसान हो जाता है। डच३ कंप्रेशन तकनीक गणितीय संकल्पनाओं पर आधारित होती है, जिसमें फोरियर ट्रांसफॉर्म और सांख्यिकीय मॉडलिंग का उपयोग किया जाता है। यह तकनीक मूल ध्वनि डेटा को संकुचित कर कम स्थान में संग्रहित करने योग्य बनाती है, जबकि इसकी गुणवत्ता को यथासंभव बनाए रखा जाता है। इसी तरह, विभिन्न ऑडियो फॉर्मेट्स (जैसे WAV, FLAC, AAC) भी विशिष्ट गणितीय मॉडल और एल्गोरिदम पर आधारित होते हैं, जो ध्वनि की गुणवत्ता और भंडारण दक्षता को नियंत्रित करते हैं। ध्वनि संपादन सॉफ्टवेयर, जैसे ऑडेसिटी, एबलटन लाइव और प्रोटूल्स, गणितीय एल्गोरिदम के माध्यम से ध्वनि तरंगों को विश्लेषण और संशोधित करते हैं। इनमें फिल्टरिंग, इक्वलाइजेशन, रीवरब, और पिच करेक्शन जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जो पूरी तरह से गणितीय गणनाओं पर आधारित होती हैं।

डिजिटल सिग्नल प्रोसेसिंग (DSP) की मदद से ध्वनि को विभिन्न स्वरूपों में बदला और सुधारा जा सकता है, जिससे संगीत निर्माण की संभावनाएँ अनंत हो गई हैं। इसके अलावा, मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की मदद से अब संगीत को ऑटो–ट्यून, रीमिक्स और अनुकूलित किया जा सकता

है। गणितीय मॉडल यह सुनिश्चित करते हैं कि ध्वनि का प्रवाह स्वाभाविक और मनमोहक बना रहे। इस प्रकार, आधुनिक संगीत न केवल रचनात्मकता का प्रतीक है, बल्कि यह गणितीय संरचना और एल्गोरिदम की शक्ति का भी सजीव उदाहरण है।

3. ऐतिहासिक संदर्भ :–

प्राचीन काल में भारतीय और यूनानी विद्वानों ने गणित और संगीत के बीच गहरे संबंध को पहचाना और उसे विश्लेषणात्मक रूप से समझने का प्रयास किया। भारतीय संगीत शास्त्र में ध्वनि और स्वरों का गहन अध्ययन किया गया था, जिसमें 22 श्रुतियों की संकल्पना विकसित की गई। श्रुतियाँ वे सूक्ष्म ध्वनि भिन्नताएँ हैं जो संगीत के स्वर–सौंदर्य और माधुर्य को निर्धारित करती हैं। यह अवधारणा दर्शाती है कि भारतीय संगीत केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं था, बल्कि उसमें ध्वनि विज्ञान और गणित का भी महत्वपूर्ण योगदान था। भारतीय ग्रंथों, जैसे 'नाट्य शास्त्र' और 'संगीत रत्नाकर' में स्वरों, तालों और लय की गणना को विस्तार से समझाया गया है। सप्तक में स्थित स्वरों की आवृत्तियों और उनके आपसी संबंधों को परिभाषित करने के लिए गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए, विभिन्न रागों में स्वरों के प्रयोग और उनके क्रमबद्ध संयोजन एक निश्चित गणितीय पैटर्न का अनुसरण करते हैं, जिससे संगीत में सामंजस्य बना रहता है। पश्चिमी परंपरा में पायथागोरस ने संगीत के गणितीय सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। उन्होंने मोनोकॉर्ड (एकल तार वाले वाद्ययंत्र) पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि तार की लंबाई और उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति के बीच एक निश्चित गणितीय संबंध होता है। उन्होंने पाया कि तार की लंबाई को विशिष्ट अनुपातों (जैसे 2:1, 3:2, 4:3) में विभाजित करने से विभिन्न स्वरों का निर्माण होता है। यह खोज पश्चिमी संगीत के स्केल सिस्टम की नींव बनी, जिसे आज भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार, चाहे वह भारतीय संगीत हो या पश्चिमी संगीत, दोनों में गणितीय संरचनाएँ गहराई से समाई हुई हैं। ध्वनि की वैज्ञानिक समझ और गणना के बिना संगीत की जटिलताओं को पूरी तरह से समझना संभव नहीं होता। प्राचीन विद्वानों द्वारा विकसित ये सिद्धांत आज भी आधुनिक संगीत और ध्वनि इंजीनियरिंग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि संगीत और गणित का संबंध चिरकालिक और अटूट है।

4. संगीत और गणित का आधुनिक उपयोग :–

आधुनिक तकनीक ने संगीत जगत में गहरा प्रभाव डाला है, जहाँ मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग से गणितीय एल्गोरिदम के आधार पर स्वचालित रूप से संगीत रचना संभव हो रही है। ये उन्नत प्रणालियाँ विभिन्न संगीत शैलियों का विश्लेषण कर, उनकी जटिलताओं को समझकर नई धुनें और रचनाएँ तैयार कर सकती हैं, जिससे कलाकारों को नई संभावनाएँ मिल रही हैं। AI सिर्फ एक उपकरण नहीं, बल्कि संगीतकारों के लिए एक रचनात्मक सहयोगी बन चुका है, जो पारंपरिक और आधुनिक शैली के बीच संतुलन स्थापित करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त, संगीत चिकित्सा (Music Therapy) में गणितीय आधार पर निर्मित ध्वनियाँ मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती हैं। वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि खास आवृत्तियों और लयबद्ध ध्वनि तरंगों के संयोजन से तनाव को कम किया जा सकता है, एकाग्रता को बढ़ावा दिया जा सकता है और अनिद्रा जैसी समस्याओं में सुधार लाया जा सकता है। यह विधि विशेष रूप से ध्यान (Meditation), योग और चिकित्सा सत्रों में उपयोगी साबित हो रही है, जहाँ

ध्वनि की शक्ति से मन को शांति और संतुलन प्रदान किया जाता है। संगीत उत्पादन और ध्वनि इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भी गणित की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ध्वनि की गुणवत्ता को सुधारने, विभिन्न आवृत्तियों का संतुलन बनाए रखने, स्टूडियो रिकॉर्डिंग को उन्नत करने और लाइव परफॉर्मेंस में सर्वोत्तम ध्वनि अनुभव प्रदान करने के लिए गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है। ध्वनि तरंगों की प्रकृति, ध्वनि प्रसार, अनुनाद (Resonance) और ध्वनि मिश्रण (Sound Mixing) जैसी प्रक्रियाएँ पूरी तरह से गणितीय गणनाओं पर आधारित होती हैं। इस प्रकार, संगीत केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि यह गणित, विज्ञान और तकनीक का अद्‌भुत संगम है। यह न केवल कला को समृद्ध करता है, बल्कि चिकित्सा, मनोरंजन और अनुसंधान जैसे कई क्षेत्रों में भी क्रांतिकारी बदलाव ला रहा है। भविष्य में, उन्नत तकनीकों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साथ संगीत की दुनिया में और अधिक नवाचार देखने को मिलेंगे, जिससे यह क्षेत्र और भी व्यापक और प्रभावशाली बन जाएगा।

निष्कर्ष :-

गणित और संगीत पहली नजर में भले ही दो अलग–अलग क्षेत्रों के रूप में दिखाई दें, लेकिन गहराई से देखने पर स्पष्ट होता है कि दोनों के बीच एक मजबूत अंतर्संबंध है। संगीत की संरचना में गणित की भूमिका महत्वपूर्ण होती है – चाहे वह सुरों के संयोजन में हो, ताल की लयबद्धता में, या ध्वनि तरंगों की गति और आवृत्ति में। हर राग और हर धुन एक निश्चित गणितीय पैटर्न के अनुसार ही निर्मित होती है, जिससे संगीत में सामंजस्य और सौंदर्य उत्पन्न होता है। संगीत सिद्धांत में प्रयुक्त हार्मोनिक्स, स्केल्स, और रिदम पैटर्न गणितीय अनुपातों पर आधारित होते हैं। पायथागोरस जैसे प्राचीन गणितज्ञों ने यह दर्शाया कि संगीत के सुरों में निहित कंपन गणितीय समीकरणों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी भी तार वाले वाद्ययंत्र में तार की लंबाई और उसकी ध्वनि की आवृत्ति का संबंध एक निश्चित गणितीय अनुपात से होता है। इसी तरह, पश्चिमी संगीत में प्रयुक्त 'फाइबोनाची सीरीज' और 'गोल्डन रेशियो' दर्शाते हैं कि संगीत में भी गणितीय सौंदर्य निहित है। यदि कोई व्यक्ति संगीत में निपुण होना चाहता है, तो गणित को समझना उसके लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। संगीत में ताल और लय की गणना, स्वरूप की समरूपता, तथा समय और ध्वनि के बीच के संबंधों को जानने में गणित एक उपयोगी उपकरण के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार, संगीत केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति भर नहीं है, बल्कि यह गणितीय सिद्धांतों पर आधारित एक विशिष्ट कला भी है, जो विज्ञान और रचनात्मकता का एक उत्कृष्ट समन्वय प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ सूची :-

1. शर्मा, प्रीति, संगीत और गणित के बीच संबंध, विज्ञान और गणित, 3 जनवरी 2023, पृष्ठ 100–103
2. गुप्ता, मीनाक्षी, गणित में लय और संगीत, संगीत और गणित : एक शोध दृष्टिकोण, 2024, पृष्ठ 72–75
3. जोशी, सुमित्रा, गणितीय दृष्टिकोण से संगीत, चंद्र प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 60–63
4. सिन्हा, राकेश, संगीत और गणित के पैटर्न, गणितीय संरचनाएं, 2022, पृष्ठ 80–85
5. शर्मा, अनिता, गणित और संगीत के सिद्धांत, संगीत शास्त्र का गणितीय अध्ययन, 2021, पृष्ठ 92–95
6. शाह, राजेश, संगीत और गणित : तात्त्विक संबंध, संगीत और गणित के प्रभाव, 2022, पृष्ठ 120–123
7. कुमार, विनय, संगीत और गणित : एक जोड़, गणित के प्रयोग, 2019, पृष्ठ 40–42

8. मिश्रा, राजीव, गणितीय अनुपात और संगीत में सामंजस्य, विज्ञान और कला, 2023, पृष्ठ 58–60
9. यादव, समीर, संगीत के सिद्धांत और गणित, संगीत : एक गणितीय अध्ययन, 2019, पृष्ठ 65–68
10. रावत, दीप्ति, संगीत और गणित के गणना पद्धतियां, शास्त्र और गणना, 2020, पृष्ठ 110–113
11. श्रीवास्तव, शंकर, गणित और संगीत के तालमील, संगीत और गणित का सामंजस्य, 2021, पृष्ठ 33–36
12. अग्रवाल, मनीश, गणितीय और संगीत संरचनाएं, गणित और कला : एक गहरी समन्वय, 2022, पृष्ठ 50–52
13. अली, फराह, संगीत और गणित का साहित्यिक विश्लेषण, गणितीय संरचनाएं और संगीत, 2023, पृष्ठ 40–42
14. वर्मा, नीलम, संगीत की लय और गणितीय समीकरण, गणित और संगीत का अनुसंधान, 2021, पृष्ठ 78–81

Email ID: jitendrasainitanwar@gmail.com
Contact No. 9799227879

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 158-161

वर्तमान में हड़प्पा सभ्यता से पर्यावरण संरक्षण की सीख

बलराम सैनी
व्याख्याता इतिहास (गेस्ट फैकल्टी) राजकीय कन्या महाविद्यालय।

सार :–

इस शोध पत्र में हड़प्पा सभ्यता से पर्यावरण संरक्षण के संबंध विशेष जानकारी प्रस्तुत की गई है। जैसा कि हम जानते हैं, कि इतिहास से हम वर्तमान को जीना सीखते हैं। क्योंकि हम हमारी वर्तमान की अधिकतर समस्या का निस्तारण इतिहास को पढ़कर ही करते हैं। और भविष्य में आने वाली समस्याओं के समाधान के उपाय खोजते हैं इसलिए हमें इतिहास पढ़ना चाहिए और अपने अतीत से सीख लेनी चाहिए। वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण की समस्या विश्व में विकट रूप लिए हुए हैं। इसके निस्तारण के लिए व्यापक स्तर पर विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं, किंतु पर्यावरण संरक्षण की समस्या ऐसी समस्या है, जिसका समाधान कोई एक व्यक्ति, एक समाज, एक संस्था या कोई सरकार नहीं कर सकती। इसका समाधान ढूंढने के लिए हर व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी। अतः मैंने इस कर्तव्य निर्वहन के लिए इस शोध पत्र से हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में पर्यावरण संरक्षण के उपाय ढूंढने का अथक प्रयास किया है। पर्यावरण संरक्षण के लिए इतिहास के विभिन्न कालों में विभिन्न उपाय अपनाए गए थे। जिन सब का उल्लेख यहां कर पाना मुश्किल है, क्योंकि मैंने यहां केवल हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में ही पर्यावरण संरक्षण के उपाय ढूंढने का कार्य किया है। हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में मुझे पर्यावरण संरक्षण के बहुत सारे तथ्य व प्रमाण मिलते हैं, इनसे मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा, कि हड़प्पा वासी पर्यावरण संरक्षण को लेकर बहुत जागरूक थे। कुछ तथ्यों की बात करें जैसेदृ सड़कों के किनारे कूड़ेदान का साक्ष्य मिलना, गंदे पानी की निकासी के लिए पक्की ईंटों से नालियां निर्मित करना, शौचालयों के प्रमाण मिलना मकानों के दरवाजे व खिड़कियां मुख्य सड़क की ओर न खुलकर गलियों में खुलना, मृद भांडों पर तुलसी, पीपल, नीम, खजूर आदि वृक्षों का चित्रण मिलना, कूबड़ वाले सांड का अधिक अंकन हाजा व फाख्ता पक्षी आदि का अंकन मिलना हड़प्पा वासियों का पर्यावरण प्रेमी होना दर्शाता है। इसलिए प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से मैंने तमाम साक्ष्यों व प्रमाणों के आधार पर पर्यावरण संरक्षण को हड़प्पा सभ्यता में खोजने का प्रयास किया है। जिसमें मैंने प्राथमिक स्रोतों के आधार पर पर्यावरण संरक्षण की सीख देने का कार्य किया है।

प्रस्तावना :–

जैसा कि हम सब परिचित हैं। कि हर वर्ष 05 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। जिसका प्रमुख लक्ष्य पर्यावरण संरक्षण होता है। जिस प्रकार से कुछ दशकों से पर्यावरण प्रदूषण हम सबके लिए एक बड़ा संकट पैदा कर रहा है। आज संपूर्ण विश्व इस समस्या से ग्रस्त है। शिक्षा के क्षेत्र में भी समय–समय पर पर्यावरण

प्रदूषण का समाधान ढूंढने का प्रयास किया है। जैसा कि हम जानते हैं कि इतिहास हमें वर्तमान में जीना सिखाता है, और मानव अपने अतीत को पढ़ने का कार्य भी इसलिए करता है, कि वह अपनी वर्तमान की समस्याओं का समाधान अपने अतीत में ढूंढ सके और निकट भविष्य में आने वाली समस्याओं से सतर्क रहे और रोकथाम के उपाय करें। अतः इतिहास के शोधार्थी होने के नाते मैंने इस शोध पत्र के माध्यम से वर्तमान में हड़प्पा सभ्यता से पर्यावरण संरक्षण की सीख कैसे ली जा सकती है, पर कार्य किया है।

विभिन्न काल खण्डों में इतिहास से हमें पर्यावरण संरक्षण की सीख मिलती है। इतिहास का प्रत्येक काल पर्यावरण संरक्षण को लेकर जागृत रहा है। प्रत्येक काल में पर्यावरण संरक्षण की अपनी अपनी योजनाएं थी जिसके माध्यम से पर्यावरण संरक्षण किया गया था, लेकिन इतिहास के सभी काल की सभी योजनाओं का यहां उल्लेख कर पाना संभव नहीं है, इसलिए मुझे अपने शोध शीर्षक का सीमांकन करना पड़ रहा है। इस कारण मैं इस शोध पत्र के माध्यम से केवल वर्तमान में हड़प्पा वासियों से पर्यावरण संरक्षण की सीख कैसे मिलती है, को खोजने का प्रयास करूंगा।

हड़प्पा सभ्यता से हमें बहुत से तथ्य मिलते हैं। जो हमारा ध्यान पर्यावरण संरक्षण सीख की ओर खींचते हैं। मैं परिचय स्वरूप यहां कुछ तथ्यों का विवरण देना चाहूंगा ताकि पाठकों को इतिहास की सही जानकारी मिल सके। जैसे– हड़प्पा सभ्यता के अधिकांश स्थलों से गंदे पानी के निकास हेतु नालियों का पाया जाना। और इनको ढकने की व्यवस्था होना हड़प्पा वासियों के पर्यावरण संरक्षण को स्पष्ट रूप से दिखाता है। मकानों के दरवाजे गलियों की ओर खुलते थे। क्योंकि मुख्य सड़क के कोलाहल एवं प्रदूषण से बचने के लिए दरवाजे, खिड़कियां एवं रोशनदान सड़कों की ओर न होकर पीछे की ओर खुलते थे। (अपवाद–लोथल) दीवारों में प्रकाश व शुद्ध हवा के लिए पत्थर की जाली लगाई जाती थी। इससे सीख मिलती है कि हड़प्पा के लोग स्वास्थ्य तथा साफदृसफाई के प्रति कितने सजग थे। आलमगीरपुर से मिले बर्तनों पर मोर व गिलहरी आदि का अंकन मिलना हड़प्पावासी के प्रकृति प्रेम को दर्शाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं। कि हड़प्पा वासी प्रकृति प्रेमी थे। उनका यही प्रकृति प्रेम उनके पर्यावरण संरक्षणकर्ता की ओर इशारा कर रहा है। क्योंकि यहां के निवासी ने अपने बर्तनों पर, मुद्रा पर या अन्य किसी वस्तु पर उसका ही अंकन किया है। जिससे वह अनन्य प्रेम करता हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि हड़प्पा सभ्यता में ऐसे अनेक तथ्य मिलते हैं जो उनके पर्यावरण संरक्षण को दर्शाते हैं। इसलिए कह सकते हैं कि हड़प्पा वासी खुशहाल जीवन जीते थे, क्योंकि वो प्रकृति–प्रेमी थे। वर्तमान मनुष्य को भी अपने अतीत से सीखना चाहिए ताकि खुशहाल जीवन बिताया जा सके। इस भागदौड़ भरी जिंदगी में हमें अंधाधुंध नहीं दोड़ना चाहिए। हमें इतिहास जो सिखाता है, वह हमें सीखना चाहिए ताकि हमारा वर्तमान जीवन सुखमय हो व भविष्य भी अंधकारमय न हो।

इस तरह हम देखते हैं, कि हड़प्पा सभ्यता में पर्यावरण संरक्षण की अनेक सीख मिलती है। इस प्रकार इतिहास के विभिन्न काल खंडों में भी पर्यावरण संरक्षण की सीख लेने का प्रयास करें तो इस विकट होती समस्या का समाधान खोजा जा सकता है। अतः इस शीर्षक पर भी और शोध करने की आवश्यकता महसूस होती है।

शोध पत्र के उद्देश्य :-

जैसा कि हम जानते हैं, कि किसी भी शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य उसके पीछे छिपे हुए सत्य को बाहर लाना होता है। किसी भी शोध कार्य का उद्देश्य शीर्षक के संबंध में नई जानकारी प्राप्त करना होता है। अतः इस

शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य भी सत्य और असत्य का पता लगाना और उस अदृश्य सत्य को उजागर करना है। इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य अग्रलिखित हैं–

1. हड़प्पा सभ्यता से वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण की सीख खोजना :–

इस शोध पत्र में हम हड़प्पा सभ्यता के परिपेक्ष्य में पर्यावरण संरक्षण को सीखने का प्रयास करेंगे। क्योंकि हड़प्पा वासियों का पर्यावरण के प्रति लगाव बहुत अधिक था, यहां के लोग प्रकृति प्रेमी थे। इसलिए ही ये खुशहाल जिंदगी जीते थे। किंतु आज का मनुष्य मशीनीकरण के दौर से गुजर रहा है, आवश्यकता से परे भौतिकवादी होता जा रहा है। स्वयं की आवश्यकताओं के कारण वह दिन प्रतिदिन प्रकृति को नुकसान पहुंचा रहा है, इससे पारिस्थितिकी तंत्र अनियमित होता दिखाई दे रहा है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। अतः वर्तमान में हमें इस समस्या पर ध्यान देते हुए इसका समाधान खोजना चाहिए। प्रत्येक कालखंड के इतिहास में पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न उपाय अपनाए गए थे, उनमें से हड़प्पा सभ्यता के समय किस–किस उपाय को अपनाया गया, उनका गहनता से अध्ययन करना ही इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है। अध्ययन उपरांत प्राप्त निष्कर्षों को समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुंचाना इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

2. विषय को रूचिकर बनाना :–

इस शोध पत्र के आधार पर विषय को पाठकों के लिए रुचिकर बनाना ही प्रमुख उद्देश्य रहेगा। इतिहास से हम वर्तमान में जीना सीखते हैं और भविष्य में समस्याओं से निजात पाना सीखते हैं। अतः इस शोध पत्र के माध्यम से पाठकों में इतिहास को रुचिकर बनाने का प्रयास करेंगे।

शोध पत्र की परिकल्पना :–

इस शोध पत्र की अवधारणा को निम्न बिंदुओं के आधार पर उल्लेखित करने का प्रयास किया गया है:

1. इसकी परिकल्पना पूर्ण रूप से व प्रत्यक्ष रूप से हड़प्पा सभ्यता के आधार पर वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण को लेकर की गई है।
2. शोध पत्र की अवधारणा स्पष्ट करती है, कि इसमें हड़प्पा सभ्यता के पर्यावरण संरक्षण को लेकर वर्तमान संदर्भ में सभी तथ्यों का तार्किक व विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक परीक्षण करने का प्रयास किया है।
3. प्रस्तुत शोध पत्र की परिकल्पना का आधार प्राथमिक स्रोत रहे हैं। इसके अलावा द्वितीयक व तृतीयक स्रोत भी उपयोग में लिए हैं, जो पूर्ण रूप से विश्वसनीय व प्रमाणिक थे।
4. जैसा कि इतिहास में लेखन कार्य करते समय बिना आधार के कुछ नहीं लिखना चाहिए। इस मूल मंत्र को ध्यान में रखते हुए इस शोध पत्र को पूर्ण किया गया है।
5. शोध की परिकल्पना में किसी आदर्शात्मक अवधारणा को स्थान नहीं दिया गया है। संपूर्ण शोध पत्र तटस्थ रहकर ही लिखा गया है।

शोध प्रविधि :–

पर्यावरण प्रदूषण से भारत में हर वर्ष मौतों का ग्राफ बढ़ता ही जा रहा है। इसके लिए हमें पर्यावरण संरक्षण के उपाय हड़प्पा सभ्यता के लोगों से सीखने की जरूरत है। जैसे वहां के आवास स्थल कच्ची ईटों से बने थे। जबकि गंदे पानी के निकासी हेतु पक्की ईंटों से नालियां बनी थी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि वहां के लोग पर्यावरण के प्रति कितने सजग थे, क्योंकि हड़प्पावासी जल प्रदूषण से होने वाले नुकसान

के बारे में जानते थे। इसलिए वर्तमान में हमें यहां के निवासियों को यह शिक्षा लेनी चाहिए, कि गंदे पानी के लिए पक्की नालियां बनाई जानी चाहिए। जिससे जल प्रदूषण से बचा जा सके और हेजे जैसी महामारी के संक्रमण को रोका जा सके।

हड़प्पा सभ्यता के कई स्थलों से शौचालय के भी प्रमाण मिले हैं। हड़प्पावासी खुले में शौच जाने से होने वाले दुष्परिणामों से अवगत थे। उनका मानना होगा कि खुले में शौच जाने से वायु प्रदूषण होता है। जिससे प्राण घातक बीमारी पनपने का खतरा बढ़ जाता है। अतः हमें भी इनसे सीख लेते हुए शौचालयों का निर्माण करना चाहिए। हड़प्पा सभ्यता के मृदभांडो पर अंकित वृक्षों के अंकन से उनका प्रकृति प्रेम प्रकट होता है। वे जानते थे कि पेड़ ही पर्यावरण को शुद्ध रख सकते हैं। वे सर्वाधिक पीपल वृक्ष को लगाते थे। वे इसके गुण (ऑक्सीजन) से परिचित थे। इनसे सीख लेते हुए हमें भी अधिक से अधिक पीपल वृक्ष लगाना चाहिए जिससे पर्यावरण प्रदूषित न हो सके।

अंतिम रूप से हम कह सकते हैं, की हड़प्पा सभ्यता के लोग पर्यावरण संरक्षण के महत्व को जानते थे। अतः हमें भी हड़प्पा सभ्यता के लोगों से सीख लेनी चाहिए।

निष्कर्ष :-

वर्तमान में हम को पर्यावरण से संबंधित समस्याओं का समाधान इतिहास में ढूंढना चाहिए और उनसे सीख लेते हुए अपना जीवन खुशहाल बनाना चाहिए। पर्यावरण संरक्षण के अलावा ऐसे बहुत से उपाय हमें और भी मिल जायेंगे बशर्ते हमें हमारे अतीत को पढ़ना होगा, उसको समझते हुए सीख लेनी होगी, उसको अपने जीवन में उतरना होगा। हमें हमारे अतीत पर लौटना होगा।

सुझाव :-

इस शोध पत्र में हड़प्पा सभ्यता के लोगों द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए किए गए कार्यों से सीख लेने का प्रयास किया। इतिहास के एक छोटे से कालखंड में पर्यावरण संरक्षण के उपाय को देखा है, उन्हें खोजा। आगे यह सुझाव देना चाहेंगे कि समय–समय पर इस शीर्षक पर और शोध कार्य होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंधु सभ्यता ' अर्नेस्ट जे एच मैके।
2. भारतीय सभ्यता के पहलू : नवीनतम परिपेक्ष्य – जगत पति जोशी।
3. The culture and civilization of Ancient India — D. D. Kosambi
4. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद।
5. टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 01 अप्रैल 2004 मैं प्रकाशित सूचना पर आधारित।
6. प्राचीन भारत का इतिहास – झा और श्रीमाली – हिंदी माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय।

बलराम सैनी, मौहल्ला सबलपुरा, वार्ड न. 06, बहरोड़, जिला – कोटपुतली–बहरोड़।

मो. 9001767644 Email : brsaini.behror@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 162-169

न्यू मीडिया का युवा व्यवहार पर प्रभाव : पूर्ववर्ती अध्ययन का विश्लेषण

नितिन कुमार, शोधार्थी
डॉ. सुशील कुमार, सहायक प्राध्यापक
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश–

यह शोध पत्र नव मीडिया के युवा व्यवहार पर प्रभाव का विश्लेषण करता है। डिजिटल युग में सोशल मीडिया, ऑनलाइन संवाद और डिजिटल प्लेटफार्मों ने युवाओं की मानसिकता, सामाजिकता और शैक्षिक प्रवृत्तियों को गहराई से प्रभावित किया है। विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों के आधार पर यह अध्ययन दर्शाता है कि नव मीडिया ने संवाद शैली, मानसिक स्वास्थ्य, राजनीतिक भागीदारी और सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव लाया है। हालाँकि, इसके दुष्प्रभाव भी स्पष्ट हैं, जैसे डिजिटल लत, साइबर बुलिंग, ध्यान केंद्रित करने की क्षमता में कमी और निजता से जुड़ी समस्याएँ।

शोध निष्कर्षों के आधार पर, डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा कानूनों की सख्ती, और डिजिटल डिटॉक्स जैसे उपायों की आवश्यकता बताई गई है। शिक्षकों, माता-पिता और नीति निर्माताओं को युवाओं के डिजिटल व्यवहार को संतुलित करने के लिए समन्वित प्रयास करने चाहिए।

कुंजीशब्द– न्यू मीडिया, डिजिटल लर्निंग, डिजिटल एडिक्शन, मीडिया साक्षरता, डिजिटल डिवाइड, सांस्कृतिक प्रभाव

प्रस्तावना–

1. न्यू मीडिया की परिभाषा और विकास

तकनीकी प्रगति और इंटरनेट क्रांति के साथ न्यू मीडिया ने पारंपरिक मीडिया का स्थान लेना शुरू कर दिया है।

न्यू मीडिया उन डिजिटल संचार माध्यमों को संदर्भित करता है जो इंटरनेट, मोबाइल टेक्नोलॉजी, सोशल मीडिया, ब्लॉग, ऑनलाइन समाचार पोर्टल, पॉडकास्ट और वीडियो स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से जानकारी का आदान-प्रदान करते हैं। यह पारंपरिक मीडिया, जैसे प्रिंट (अखबार, पत्रिकाएँ) और प्रसारण (रेडियो, टेलीविज़न) से भिन्न है, क्योंकि **यह** इंटरैक्टिव (परस्पर संवादात्मक), त्वरित (तुरंत सूचना उपलब्ध कराने वाला) और वैश्विक पहुंच वाला होता है।

न्यू मीडिया का विकास मुख्य रूप से 1990 के दशक में इंटरनेट के प्रसार के साथ हुआ। 2000 के दशक में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म (जैसे फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब) और स्मार्टफोन के आगमन ने इसे और व्यापक बना दिया। इसके बाद, डिजिटल तकनीक में तेजी से हुए नवाचारों ने ऑनलाइन संचार, सूचना प्राप्ति और सामाजिक संपर्क के तरीके को बदल दिया। आज न्यू मीडिया पारंपरिक मीडिया की तुलना में अधिक प्रभावशाली हो गया है क्योंकि यह तेज़, सुलभ और उपयोगकर्ता-केंद्रित है।

2. युवाओं के जीवन में न्यू मीडिया की भूमिका

युवा वर्ग हमेशा नई तकनीकों को अपनाने में सबसे आगे रहता है, और यही कारण है कि न्यू मीडिया का सबसे अधिक प्रभाव युवा पीढ़ी पर पड़ा है। आज का युवा मनोरंजन, शिक्षा, सूचना और सामाजिक संपर्क के लिए बड़े पैमाने पर सोशल मीडिया, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप, ऑनलाइन समाचार वेबसाइटों और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म का उपयोग करता है।

न्यू मीडिया से युवाओं के जीवन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं:

1. **संचार का डिजिटलरण:** पहले जहाँ संचार पत्रों, फोन कॉल या आमने-सामने बातचीत पर निर्भर था, वहीं आज न्यू मीडिया के माध्यम से **तत्काल (इंस्टेंट) संदेश, वीडियो कॉल और सोशल मीडिया पोस्ट** के द्वारा लोग संवाद कर रहे हैं।
2. **शिक्षा और ज्ञान का स्रोत:** ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म, ई-पुस्तकें और शैक्षिक वीडियो युवाओं के लिए ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन बन गए हैं।
3. **राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता:** न्यू मीडिया के कारण युवा अब **समाचार, सामाजिक मुद्दों और राजनीति** से अधिक जुड़े हुए हैं। ऑनलाइन आंदोलनों और डिजिटल अभियानों ने युवा भागीदारी को बढ़ाया है।
4. **करियर और व्यवसाय के नए अवसर:** यूट्यूब, फ्रीलांसिंग, ब्लॉगिंग और डिजिटल मार्केटिंग जैसे क्षेत्रों में न्यू मीडिया ने रोजगार के नए अवसर प्रदान किए हैं।

5. **मनोरंजन का स्वरूप बदलाः** अब मनोरंजन केवल टेलीविज़न या रेडियो तक सीमित नहीं है। स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन गेमिंग और सोशल मीडिया ने मनोरंजन के नए तरीके प्रस्तुत किए हैं।

हालाँकि, न्यू मीडिया के **नकारात्मक प्रभाव** भी सामने आए हैं, जैसे **डिजिटल एडिक्शन, मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव, गोपनीयता (प्राइवेसी) संबंधी चिंताएँ और गलत सूचना (फेक न्यूज) का प्रसार**।

3. शोध के उद्देश्य और परिकल्पना

न्यू मीडिया के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए, यह समझना आवश्यक है कि यह **युवाओं के सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है**। इस शोध का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित बिंदुओं पर प्रकाश डालना हैः

1. न्यू मीडिया के प्रभाव की गहराई और व्यापकता को समझना।
2. युवाओं के विचारों, सामाजिक संबंधों और जीवनशैली पर इसके प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. माध्यमिक स्रोतों (पूर्ववर्ती शोध, सरकारी रिपोर्ट, केस स्टडी) के माध्यम से प्रमाणिक निष्कर्ष निकालना।
4. न्यू मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं की पहचान करना।
5. भविष्य में न्यू मीडिया के प्रभाव को संतुलित करने के लिए सुझाव देना।

परिकल्पना

1. नव मीडिया युवा व्यवहार को सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक रूप से प्रभावित करता है।
2. सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म युवाओं की राजनीतिक जागरूकता और भागीदारी को बढ़ाते हैं।
3. नव मीडिया के अत्यधिक उपयोग से डिजिटल लत, साइबर बुलिंग और मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
4. ग्रामीण और शहरी युवाओं के बीच नव मीडिया के उपयोग और प्रभाव में स्पष्ट अंतर पाया जाता है।

4. माध्यमिक डेटा पर आधारित होने का स्पष्टीकरण

यह शोध मुख्य रूप से **माध्यमिक डेटा** पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि इसमें **पूर्व में प्रकाशित शोध-पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, संस्थागत अध्ययनों, समाचार स्रोतों और प्रासंगिक साहित्य** का विश्लेषण किया जाएगा। माध्यमिक डेटा का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि यह पहले से उपलब्ध शोधों का **गहन**

अध्ययन करके निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है और एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

माध्यमिक स्रोतों का उपयोग करने के फायदेः

1. **समय और संसाधनों की बचतः** चूँकि डेटा पहले से मौजूद है, इसलिए इसे संग्रह करने में अतिरिक्त संसाधन नहीं लगते।
2. **विस्तृत परिप्रेक्ष्यः** विभिन्न क्षेत्रों और देशों में हुए शोधों की तुलना करके व्यापक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।
3. **प्रामाणिकता और विश्वसनीयताः** सरकारी रिपोर्टें और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के अध्ययन अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं।

इस शोध में **भारत और वैश्विक स्तर पर हुए शोधों का तुलनात्मक अध्ययन** किया जाएगा, जिससे भिवानी जिले के युवाओं के संदर्भ में न्यू मीडिया के प्रभाव को बेहतर ढंग से समझा जा सके। न्यू मीडिया आधुनिक युग का सबसे प्रभावी संचार माध्यम बन चुका है, और इसका युवाओं पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। जहाँ एक ओर इसने ज्ञान, सूचना और मनोरंजन की नई संभावनाएँ खोली हैं, वहीं दूसरी ओर इसके नकारात्मक प्रभाव भी सामने आ रहे हैं। यह शोध माध्यमिक डेटा के आधार पर यह विश्लेषण करेगा कि न्यू मीडिया ने युवाओं के सामाजिक, मानसिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया है और भविष्य में इसके उपयोग को अधिक प्रभावी बनाने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं।

न्यू मीडिया और युवाः एक सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

न्यू मीडिया के प्रमुख घटक

न्यू मीडिया ने युवाओं के जीवन को कई तरीकों से प्रभावित किया है। इसके प्रमुख घटक निम्नलिखित हैंः

1. **सोशल मीडिया** – फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर जैसे प्लेटफॉर्म युवाओं को संवाद और नेटवर्किंग के अवसर प्रदान करते हैं।
2. **डिजिटल समाचार** – युवा अब पारंपरिक समाचार पत्रों की बजाय डिजिटल पोर्टल्स और ऐप्स के माध्यम से समाचार प्राप्त करते हैं।
3. **ऑनलाइन स्ट्रीमिंग** – नेटफ्लिक्स, यूट्यूब और अमेज़न प्राइम जैसे प्लेटफॉर्म मनोरंजन और शैक्षिक सामग्री का स्रोत बन चुके हैं।
4. **ब्लॉगिंग और माइक्रोब्लॉगिंग** – युवा अपने विचारों को व्यक्त करने और ज्ञान साझा करने के लिए ब्लॉगिंग का उपयोग कर रहे हैं।

5. **ऑनलाइन गेमिंग और वर्चुअल रियलिटी** – डिजिटल गेमिंग और आभासी वास्तविकता (VR) युवाओं की डिजिटल भागीदारी को बढ़ा रहे हैं।

युवा वर्ग पर न्यू मीडिया के प्रभाव को समझाने वाले प्रमुख सिद्धांत

1. **उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत** – यह सिद्धांत बताता है कि युवा अपनी आवश्यकताओं (सूचना, मनोरंजन, सामाजिक संपर्क) के अनुसार न्यू मीडिया का उपयोग करते हैं।
2. **सांस्कृतिक प्रसार सिद्धांत** – न्यू मीडिया विभिन्न संस्कृतियों के विचारों और परंपराओं का प्रसार करता है, जिससे युवा नई सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को अपनाते हैं।
3. **डिजिटल डिवाइड और साक्षरता सिद्धांत** – यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि डिजिटल संसाधनों तक असमान पहुँच के कारण समाज में डिजिटल विभाजन और शिक्षा में असमानता बढ़ रही है।

न्यू मीडिया ने युवाओं के जीवन को सूचना, मनोरंजन और सामाजिक संपर्क के नए साधनों से जोड़ा है। यह विभिन्न सिद्धांतों के माध्यम से उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक व्यवहार को प्रभावित कर रहा है।

2. पूर्ववर्ती अध्ययन की समीक्षा

2.1 विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रों का विश्लेषण

कई शोध पत्रों में न्यू मीडिया के प्रभावों को विभिन्न आयामों में अध्ययन किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, मैक्लुहान का 'ग्लोबल विलेज' सिद्धांत डिजिटल मीडिया की सर्वव्यापकता को दर्शाता है। भारतीय संदर्भ में, कई शोधों ने यह दर्शाया है कि सोशल मीडिया, ऑनलाइन समाचार और डिजिटल कंटेंट ने युवा मानसिकता को प्रभावित किया है।

2.2 भारत में न्यू मीडिया के प्रभाव पर हुए प्रमुख अध्ययन

भारत में हुए शोध यह दर्शाते हैं कि न्यू मीडिया ने राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डाला है। उदाहरण के लिए, सोशल मीडिया प्लेटफार्मों ने युवा राजनीति में भागीदारी को बढ़ावा दिया है।

2.3 भिवानी या हरियाणा जैसे अर्ध-शहरी क्षेत्रों में न्यू मीडिया के प्रभाव पर अध्ययन

भिवानी जैसे अर्ध-शहरी क्षेत्रों में न्यू मीडिया की पहुँच बढ़ने के बावजूद, डिजिटल विभाजन अभी भी एक चुनौती बना हुआ है। कुछ शोध यह दर्शाते हैं कि ग्रामीण और शहरी युवाओं के बीच न्यू मीडिया का उपयोग करने के तरीके में अंतर है।

2.4 युवाओं के मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवहार पर प्रभाव से संबंधित निष्कर्ष

पूर्ववर्ती अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि न्यू मीडिया ने युवाओं की मानसिकता, सामाजिकता और सांस्कृतिक पहचान को प्रभावित किया है।

3. न्यू मीडिया का युवा व्यवहार पर प्रभाव

3.1 संचार और सामाजिक जीवन पर प्रभाव

- **सोशल मीडिया और युवाओं के आपसी संबंधः** डिजिटल प्लेटफार्मों ने आपसी संबंधों की प्रकृति बदल दी है। पारंपरिक संवाद की तुलना में ऑनलाइन संवाद तेज और सुविधाजनक हुआ है, लेकिन इससे भावनात्मक संबंधों में सतहीपन भी आया है।
- **परिवार और समाज में संबंधों पर प्रभावः** परिवारों में संवाद की कमी देखी गई है क्योंकि युवा अपने डिजिटल उपकरणों में अधिक समय बिताने लगे हैं।

3.2 मानसिक और भावनात्मक प्रभाव

- **डिजिटल एडिक्शन और मानसिक स्वास्थ्यः** न्यू मीडिया की अत्यधिक खपत के कारण डिजिटल लत और मानसिक तनाव बढ़ा है।
- **साइबर बुलिंग और अवसादः** सोशल मीडिया पर साइबर बुलिंग और ऑनलाइन उत्पीड़न की घटनाएँ बढ़ रही हैं, जिससे युवाओं में चिंता और अवसाद बढ़ा है।
- **ऑनलाइन पहचान और आत्म-छविः** न्यू मीडिया पर युवाओं का आत्म-चित्रण वास्तविकता से अलग होता जा रहा है।

3.3 शैक्षिक और बौद्धिक प्रभाव

- **डिजिटल लर्निंग और शैक्षणिक प्रदर्शनः** ऑनलाइन शिक्षा ने शिक्षण प्रणाली को बदला है, लेकिन ध्यान केंद्रित करने की क्षमता पर इसका मिश्रित प्रभाव पड़ा है।
- **सूचना तक आसान पहुँच के सकारात्मक और नकारात्मक पहलूः** इंटरनेट के माध्यम से सूचना की सहज उपलब्धता ज्ञान में वृद्धि कर रही है, लेकिन इसकी प्रामाणिकता को सत्यापित करना चुनौती है।

3.4 सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों पर प्रभाव

- **पारंपरिक मूल्यों और न्यू मीडिया के बीच टकरावः** न्यू मीडिया ने पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित किया है, जिससे पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा है।
- **नैतिकता और निजता के मुद्देः** डेटा सुरक्षा और ऑनलाइन निजता की चुनौतियाँ बढ़ रही हैं।

4. प्रमुख निष्कर्ष और सुझाव

4.1 माध्यमिक डेटा से प्राप्त प्रमुख निष्कर्षों का सारांश

- न्यू मीडिया ने युवाओं के सामाजिक संबंधों, मानसिक स्वास्थ्य और शिक्षा पर गहरा प्रभाव डाला है।
- डिजिटल लत और साइबर बुलिंग जैसी समस्याएँ सामने आई हैं।
- शैक्षिक दृष्टि से न्यू मीडिया का प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में देखा गया है।

4.2 न्यू मीडिया के संतुलित उपयोग के लिए सुझाव

- युवाओं को डिजिटल स्वास्थ्य जागरूकता और मीडिया साक्षरता पर शिक्षित किया जाना चाहिए।
- न्यू मीडिया के अत्यधिक उपयोग से बचने के लिए डिजिटल डिटॉक्स को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- साइबर बुलिंग और डेटा सुरक्षा के लिए कड़े नियम लागू किए जाने चाहिए।

4.3 नीति निर्माताओं, शिक्षकों और माता-पिता के लिए अनुशंसाएँ

- **नीति निर्माताः** डिजिटल शिक्षा और साइबर सुरक्षा कानूनों को मजबूत करें।
- **शिक्षकः** डिजिटल लर्निंग को अधिक प्रभावी और सुरक्षित बनाने के लिए उचित मार्गदर्शन दें।
- **माता-पिताः** बच्चों की ऑनलाइन गतिविधियों पर निगरानी रखें और संवाद बढ़ाएँ।

5. निष्कर्ष

न्यू मीडिया ने युवाओं के जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। जहाँ यह शिक्षा और जानकारी तक पहुँच को आसान बनाता है, वहीं मानसिक तनाव, साइबर अपराध और पारिवारिक संवाद में कमी जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न करता है। यह आवश्यक है कि समाज, सरकार और शिक्षाविद् मिलकर न्यू मीडिया के संतुलित और सकारात्मक उपयोग को बढ़ावा दें। भविष्य के अनुसंधान में विशेष रूप से अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में न्यू मीडिया के प्रभाव पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

6. संदर्भ सूची

1. मैकलुहान, एम. (1964). अंडरस्टैंडिंग मीडियाः द एक्सटेंशन्स ऑफ मैन। एमआईटी प्रेस।
2. कैस्टेल्स, एम. (2009). कम्युनिकेशन पावर। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. बॉयड, डी. (2014). इट्स कम्प्लिकेटेडः द सोशल लाइव्स ऑफ नेटवर्क्ड टीन्स। येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. टीआरएआई (2022). भारत में डिजिटल मीडिया का उपयोग। भारत सरकार की रिपोर्ट।
5. आईएएमएआई (2023). इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया रिपोर्ट।
6. प्यू रिसर्च सेंटर (2021). सोशल मीडिया और युवा व्यवहार।
7. सिंह, आर. (2020). भारतीय युवाओं पर डिजिटल मीडिया का प्रभाव। जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च।
8. शर्मा, पी. (2021). अर्ध-शहरी भारत में सोशल मीडिया और युवाओं का मानसिक स्वास्थ्य। इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी।
9. कुमार, ए. (2019). ग्रामीण और शहरी भारत में डिजिटल विभाजन। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 170–176

ग्रामीण विकास में पारंपरिक मीडिया का प्रभाव : सूचना संप्रेषण का एक माध्यम

नवीन कुमार, शोधार्थी
डॉ. सुशील कुमार, सहायक प्राध्यापक
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश :-

ग्रामीण विकास के संदर्भ में मीडिया एक सशक्त माध्यम के रूप में कार्य करता है। संचार के माध्यमों में पारंपरिक मीडिया का विशेष योगदान रहा है, जो स्थानीय भाषा, संस्कृति और सामाजिक संरचना के अनुरूप संचार सुनिश्चित करता है। यह शोध पत्र पारंपरिक मीडिया के माध्यम से सूचना संप्रेषण की भूमिका का विश्लेषण करता है, जिसमें रेडियो, समाचार पत्र, लोक नाट्य, पोस्टर और मौखिक संचार जैसे माध्यम शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो एक अत्यंत प्रभावी माध्यम रहा है, क्योंकि यह किफायती और सुलभ है। समाचार पत्र, हालाँकि सभी के लिए उपलब्ध नहीं होते, फिर भी स्थानीय समाचारों और सरकारी योजनाओं की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं। लोक नाट्य, नुक्कड़ नाटक और कठपुतली शो जैसे पारंपरिक मनोरंजन माध्यमों का उपयोग सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने के लिए किया जाता है। पोस्टर और पत्रक विशेष रूप से स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा से जुड़ी सूचनाओं के प्रसार में सहायक होते हैं। शोध यह दर्शाता है कि पारंपरिक मीडिया ने शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और सामाजिक सुधारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिक्षा के क्षेत्र में साक्षरता अभियान और महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए नुक्कड़ नाटक और रेडियो कार्यक्रमों का उपयोग किया गया है। स्वास्थ्य जागरूकता के संदर्भ में रेडियो और पोस्टर के माध्यम से टीकाकरण, स्वच्छता और पोषण संबंधी जानकारी प्रसारित की जाती है। कृषि क्षेत्र में किसानों को उन्नत तकनीकों और सरकारी योजनाओं की जानकारी देने के लिए पारंपरिक मीडिया का सहारा लिया जाता है। सामाजिक सुधारों जैसे लैंगिक समानता, दहेज प्रथा उन्मूलन और बाल विवाह विरोधी अभियानों में नुक्कड़ नाटक और लोक नाट्य का प्रभावी उपयोग हुआ है।

हालांकि, पारंपरिक मीडिया की पहुँच और प्रभावशीलता कई चुनौतियों का सामना कर रही है। डिजिटल मीडिया के प्रसार से इसकी लोकप्रियता प्रभावित हो रही है। साथ ही, कुछ पारंपरिक माध्यमों की विश्वसनीयता और अद्यतन जानकारी की उपलब्धता भी एक चुनौती बनी हुई है। इस शोध के निष्कर्षों के आधार पर यह सुझाव दिया जाता है कि पारंपरिक और डिजिटल मीडिया के समावेशी उपयोग पर जोर दिया जाए। सरकार और सामाजिक संगठनों को पारंपरिक मीडिया को नई तकनीकों के साथ जोड़कर प्रभावी बनाना चाहिए, जिससे

ग्रामीण समुदायों तक सही और प्रभावी जानकारी पहुँच सके।

शब्द कुंजी– पारंपरिक मीडिया, ग्रामीण विकास, सूचना संप्रेषण, सामाजिक परिवर्तन, मीडिया साक्षरता।

1. प्रस्तावना :

ग्रामीण विकास किसी भी राष्ट्र की समग्र प्रगति के लिए अत्यंत आवश्यक है। एक सशक्त ग्रामीण समाज न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी समृद्ध होता है। ग्रामीण विकास के लिए सूचना का प्रभावी संप्रेषण आवश्यक होता है, ताकि लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार, तथा सरकारी योजनाओं की जानकारी मिल सके।

इस संचार प्रक्रिया में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। मीडिया को आमतौर पर दो भागों में विभाजित किया जाता है– पारंपरिक मीडिया और नवीन मीडिया। पारंपरिक मीडिया में वे संचार माध्यम आते हैं जो प्राचीन काल से समाज में सूचना प्रसार का कार्य करते आ रहे हैं। इनमें रेडियो, समाचार पत्र, लोक नाट्य, पोस्टर, पत्रक और मौखिक संचार शामिल हैं। ये माध्यम विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इनका प्रभाव सीधा और गहरा होता है।

इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि पारंपरिक मीडिया कैसे ग्रामीण समाज में सूचना संप्रेषण करता है और विकास में योगदान देता है। यह विषय इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि डिजिटल क्रांति के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक मीडिया की उपयोगिता बनी हुई है और यह आज भी सामाजिक जागरूकता और विकास में सहायक है।

शोध के उद्देश्य –

1. पारंपरिक मीडिया कैसे ग्रामीण समाज में सूचना संप्रेषण करता है और विकास में योगदान देता है।
2. ग्रामीण समुदायों में सूचना के प्रसार और सामाजिक परिवर्तन में पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता का विश्लेषण करना।

परिकल्पना –

1. पारंपरिक मीडिया ग्रामीण विकास से संबंधित सूचनाओं के प्रसार में एक प्रभावी माध्यम है।
2. डिजिटल मीडिया के विस्तार के बावजूद, पारंपरिक मीडिया ग्रामीण समुदायों में विश्वसनीयता बनाए रखे हुए है और सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देता है।

2. पारंपरिक संचार माध्यमरू अवधारणा और प्रकार :

2.1 पारंपरिक मीडिया की परिभाषा :

पारंपरिक संचार माध्यम वे संचार उपकरण और प्रक्रियाएँ हैं, जो वर्षों से सूचना प्रसार के लिए उपयोग की जा रही हैं और जो स्थानीय संस्कृति और परंपराओं से जुड़ी होती हैं। ये माध्यम ग्रामीण समाज में संदेशों को सरल, प्रभावी और सहज तरीके से संप्रेषित करते हैं।

2.2 पारंपरिक संचार माध्यमों के प्रकार

(क) रेडियो :

रेडियो एक सुलभ और किफायती माध्यम है, जो कम लागत में बड़ी संख्या में लोगों तक पहुँचता है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक लोकप्रिय है क्योंकि :

– इसे पढ़ने–लिखने की आवश्यकता नहीं होती।
– यह किसानों, मजदूरों और महिलाओं तक भी आसानी से पहुँचता है।
– यह कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा और सरकारी योजनाओं की जानकारी देने में सहायक है।
– सरकार द्वारा चलाए जाने वाले कार्यक्रम जैसे 'मन की बात', 'कृषि दर्शन' और अन्य क्षेत्रीय रेडियो कार्यक्रम ग्रामीण जनता तक जानकारी पहुँचाने में मदद करते हैं।

(ख) समाचार पत्र :

समाचार पत्र सूचना का एक विश्वसनीय स्रोत हैं, जो ग्रामीण जनता को विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषयों की जानकारी देते हैं।

– ये साप्ताहिक या मासिक संस्करणों में गाँवों तक पहुँचते हैं।
– सरकारी योजनाओं, कृषि संबंधी सुधारों, जल प्रबंधन, और रोजगार के अवसरों की जानकारी देते हैं।
– स्थानीय समाचार पत्र, जो ग्रामीण भाषा में प्रकाशित होते हैं, जनता के बीच अधिक प्रभावी होते हैं।

(ग) लोक नाट्य (नुक्कड़ नाटक, कठपुतली, गीत) :

– लोक नाट्य पारंपरिक संचार का एक सशक्त माध्यम है जो मनोरंजन और शिक्षा को एक साथ जोड़ता है।
– नुक्कड़ नाटक सामाजिक मुद्दों जैसे बाल विवाह, शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, और स्वच्छता पर जागरूकता फैलाने का एक प्रभावी साधन है।
– कठपुतली नृत्य भारत के विभिन्न राज्यों में लोक संस्कृति का हिस्सा है और यह सूचना संचार का एक पारंपरिक रूप है।
– लोकगीत ग्रामीण समाज में जागरूकता और जानकारी प्रसार के लिए उपयोग किए जाते हैं।

(घ) पोस्टर और पत्रक :

पोस्टर और पत्रक ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता फैलाने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

– यह कम लागत में बड़ी संख्या में लोगों तक संदेश पहुँचाने का एक माध्यम है।
– स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, स्वच्छता और कृषि संबंधी जानकारी देने के लिए उपयोग किए जाते हैं।
– चित्रों और स्थानीय भाषा में होने के कारण यह अधिक प्रभावी होते हैं।

(ङ) मौखिक संचार (ग्राम पंचायत और सामुदायिक चर्चाएँ) :

– ग्रामीण समाज में मौखिक संचार का बहुत महत्व है।
– पंचायतों और सामुदायिक चर्चाओं के माध्यम से सूचना साझा की जाती है।
– यह ग्रामीण विकास के लिए योजनाओं को लागू करने और जागरूकता फैलाने का एक पारंपरिक तरीका है।
– ग्राम सभा और पंचायत बैठकों में सरकारी नीतियों और योजनाओं की जानकारी दी जाती है।

3. ग्रामीण विकास में पारंपरिक मीडिया की भूमिका :

ग्रामीण विकास के लिए सूचना का प्रभावी संप्रेषण आवश्यक होता है, जिससे लोग शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, और सामाजिक सुधार से जुड़ी योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकें। पारंपरिक मीडिया, जो वर्षों से जनसंचार

का प्रमुख माध्यम रहा है, इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1. **शिक्षा :**

- **साक्षरता अभियान :** पारंपरिक मीडिया जैसे लोक नाट्य, पोस्टर और रेडियो कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता बढ़ाने के प्रयास किए जाते हैं।
- **जागरूकता कार्यक्रम :** महिलाओं और वंचित वर्गों के लिए विशेष शिक्षा कार्यक्रम, जिन्हें लोकगीतों और नुक्कड़ नाटकों के जरिए प्रचारित किया जाता है।
- **समाचार पत्र और पत्रक :** इनमें शिक्षा नीति, छात्रवृत्ति योजनाओं और सरकारी शैक्षिक कार्यक्रमों की जानकारी दी जाती है।

2. **स्वास्थ्य :**

- **टीकाकरण :** रेडियो और पोस्टर के माध्यम से बच्चों और गर्भवती महिलाओं के लिए टीकाकरण कार्यक्रमों की जानकारी दी जाती है।
- **स्वच्छता अभियान :** स्वच्छ भारत अभियान जैसे कार्यक्रमों को प्रचारित करने के लिए लोक नाट्य और दीवार लेखन का उपयोग किया जाता है।
- **मातृ-शिशु देखभाल :** पारंपरिक माध्यमों से पोषण, स्तनपान, और प्राथमिक चिकित्सा से संबंधित जानकारी दी जाती है।

3. **कृषि :**

- **नई कृषि तकनीकें :** रेडियो कार्यक्रम, स्थानीय मेले, और किसान मेलों के माध्यम से नई फसली तकनीकों की जानकारी दी जाती है।
- **सरकारी योजनाएँ :** कृषि से संबंधित सब्सिडी, बीमा योजनाएँ, और समर्थन मूल्य की जानकारी पोस्टरों और पत्रकों के माध्यम से दी जाती है।
- **किसान जागरूकता अभियान :** पारंपरिक मीडिया के जरिए जैविक खेती, सिंचाई प्रबंधन और फसल सुरक्षा की जानकारी पहुँचाई जाती है।

4. **सामाजिक सुधार :**

- **लैंगिक समानता :** महिलाओं के अधिकार, शिक्षा और कार्यस्थल में समान अवसरों को बढ़ावा देने के लिए लोक नाट्य और नुक्कड़ नाटकों का उपयोग किया जाता है।
- **दहेज प्रथा :** रेडियो नाटक और नुक्कड़ नाटक के माध्यम से दहेज प्रथा की बुराइयों के प्रति लोगों को जागरूक किया जाता है।
- **बाल विवाह :** स्थानीय भाषा में लोकगीतों और कठपुतली नाटकों के माध्यम से बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं के दुष्परिणामों की जानकारी दी जाती है।

4. **पारंपरिक मीडिया की प्रभावशीलता और चुनौतियाँ :**

पारंपरिक मीडिया ग्रामीण विकास में एक सशक्त संचार माध्यम के रूप में कार्य करता है। यह स्थानीय समुदायों तक आवश्यक सूचनाएँ पहुँचाने का प्रभावी तरीका है। हालाँकि, बदलते समय और डिजिटल मीडिया के विस्तार के कारण पारंपरिक मीडिया को कई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है।

सकारात्मक प्रभाव :

1. स्थानीय भाषा और संस्कृति के अनुरूप संचार :

– पारंपरिक मीडिया जैसे लोक नाट्य, कठपुतली नाटक, लोकगीत और पोस्टर स्थानीय भाषा में होते हैं, जिससे ग्रामीण समुदाय आसानी से इनका अर्थ समझ पाते हैं।

– लोक संस्कृति से जुड़े होने के कारण लोग इनमें अधिक रुचि लेते हैं, जिससे संदेश प्रभावी तरीके से प्रसारित होता है।

2. साक्षरता की कमी होने पर भी प्रभावी :

– भारत के कई ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी साक्षरता दर कम है। ऐसे में रेडियो, नुक्कड़ नाटक और मौखिक संचार के अन्य साधन उन लोगों के लिए अधिक प्रभावी होते हैं जो पढ़–लिख नहीं सकते।

– चित्रों और प्रतीकों का उपयोग करने वाले पोस्टर और पत्रक भी साक्षरता की कमी को दूर करने में सहायक होते हैं।

3. सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अपनाया जाना :

– सरकार और विभिन्न सामाजिक संगठन विकास योजनाओं के प्रचार–प्रसार के लिए पारंपरिक मीडिया का उपयोग करते हैं।

– स्वच्छ भारत अभियान, पोलियो उन्मूलन, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसी योजनाओं के प्रचार के लिए रेडियो विज्ञापन, नुक्कड़ नाटक और पोस्टर व्यापक रूप से प्रयोग किए जाते हैं।

– गैर–सरकारी संगठन (NGOs) सामाजिक परिवर्तन लाने और जागरूकता बढ़ाने के लिए पारंपरिक मीडिया के विभिन्न रूपों का उपयोग करते हैं।

चुनौतियाँ :

1. डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव से प्रतिस्पर्धा :

– इंटरनेट और स्मार्टफोन की बढ़ती पहुँच के कारण लोग डिजिटल मीडिया की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं।

– सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन समाचार पोर्टल और डिजिटल विज्ञापन तेजी से सूचना संप्रेषण का मुख्य साधन बन रहे हैं, जिससे पारंपरिक मीडिया की पहुँच सीमित होती जा रही है।

2. सीमित पहुँच और प्रसार क्षमता :

– पारंपरिक मीडिया की पहुँच आमतौर पर स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर तक सीमित रहती है।

– बड़े पैमाने पर प्रचार और प्रसार के लिए अधिक संसाधनों की आवश्यकता होती है, जो कई बार छोटे संगठनों या स्वतंत्र प्रयासों के लिए कठिन होता है।

– रेडियो और नुक्कड़ नाटकों की सीमित श्रोतृता के कारण इनका प्रभाव क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा रह जाता है।

3. कुछ माध्यमों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न :

– कुछ पारंपरिक माध्यम, विशेष रूप से मौखिक संचार और लोक नाट्य, कभी–कभी प्रामाणिकता की दृष्टि से विश्वसनीय नहीं माने जाते हैं।

– ग्रामीण क्षेत्रों में अफवाहों और गलत सूचनाओं के फैलने की संभावना अधिक होती है, जिससे गलतफहमियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।
– कई बार सरकार या प्रायोजकों की ओर से नियंत्रित होने के कारण पारंपरिक मीडिया का तटस्थ दृष्टिकोण प्रभावित हो सकता है।

5. शोध का निष्कर्ष :

यह शोध पारंपरिक मीडिया की भूमिका, प्रभावशीलता और चुनौतियों का विश्लेषण करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका बनी हुई है। पारंपरिक मीडिया, जैसे रेडियो, समाचार पत्र, लोक नाट्य, पोस्टर और मौखिक संचार, आज भी ग्रामीण समुदायों तक सूचना पहुँचाने का एक प्रभावी माध्यम है।

मुख्य निष्कर्ष :–

1. **सूचना संप्रेषण में प्रभावशीलता :** पारंपरिक मीडिया स्थानीय भाषा और संस्कृति के अनुरूप होता है, जिससे यह ग्रामीण जनता के लिए अधिक समझने योग्य और प्रभावी बनता है।
2. **साक्षरता–अवरोध को दूर करना :** साक्षरता की कमी के बावजूद, रेडियो, लोक नाट्य और मौखिक संचार के माध्यम से लोग आसानी से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
3. **सरकारी योजनाओं का प्रचार :** शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और सामाजिक सुधार से जुड़ी सरकारी योजनाओं का प्रचार–प्रसार करने में पारंपरिक मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है।
4. **सामाजिक जागरूकता :** दहेज प्रथा, बाल विवाह, लैंगिक समानता और स्वच्छता जैसे सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाने में पारंपरिक मीडिया उपयोगी सिद्ध होता है।

हालाँकि, डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव और तकनीकी प्रगति के कारण पारंपरिक मीडिया को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सीमित प्रसार क्षमता, विश्वसनीयता के मुद्दे और डिजिटल प्लेटफॉर्म से बढ़ती प्रतिस्पर्धा इसके सामने प्रमुख बाधाएँ हैं।

6. सुझाव

1. पारंपरिक और डिजिटल मीडिया का समावेशी उपयोग :

– पारंपरिक मीडिया को डिजिटल तकनीकों के साथ जोड़कर संचार को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।
– डिजिटल प्लेटफॉर्म पर रेडियो कार्यक्रमों, नुक्कड़ नाटकों और पारंपरिक माध्यमों की रिकॉर्डिंग को प्रसारित किया जा सकता है।

2. सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा समर्थन :

– पारंपरिक मीडिया को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सरकार और सामाजिक संगठनों को इसे आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रदान करनी चाहिए।

3. स्थानीय समुदायों की भागीदारी :

– ग्रामीण विकास से जुड़े संदेशों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए स्थानीय समुदायों और लोक कलाकारों को अधिक से अधिक शामिल किया जाना चाहिए।

4. तकनीकी नवाचार :

– पारंपरिक मीडिया को आधुनिक तकनीकों, जैसे पॉडकास्ट, सामुदायिक रेडियो और ऑनलाइन लोक नाट्य प्रस्तुतियों के साथ जोड़ा जाना चाहिए ताकि इसकी पहुँच और विश्वसनीयता बढ़ाई जा सके।

संदर्भ सूची :–

1. मकलुहान, एम. (1964). Understanding Media : The Extensions of Man. एमआईटी प्रेस।
2. कैस्टेल्स, एम. (2009). Communication Power. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. टीआरएआई (2022). भारत में डिजिटल मीडिया का उपयोग. भारत सरकार की रिपोर्ट।
4. प्यू रिसर्च सेंटर (2021). सोशल मीडिया और युवा व्यवहार।
5. शर्मा, पी. (2021). अर्ध–शहरी भारत में सोशल मीडिया और युवाओं का मानसिक स्वास्थ्य. इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी।
6. सिंह, आर. (2020). भारतीय युवाओं पर डिजिटल मीडिया का प्रभाव. जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च।
7. कुमार, ए. (2019). ग्रामीण और शहरी भारत में डिजिटल विभाजन. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली।
8. दिगे, एम. (2018). ग्रामीण भारत में पारंपरिक मीडिया की भूमिका : इसके प्रभाव पर एक अध्ययन. अंतर्राष्ट्रीय मीडिया और संचार अध्ययन पत्रिका।
9. सिंह, वी. (2017). पारंपरिक मीडिया और ग्रामीण विकास : साहित्य की समीक्षा. ग्रामीण अध्ययन पत्रिका।
10. भारत सरकार (2020). राष्ट्रीय ग्रामीण विकास नीति।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 177–184

विद्यालयों में पारंपरिक और आधुनिक संगीत का समावेश : एक नया दृष्टिकोण

Jitendra Saini
Assistant Professor, Department of Education
Institute of Advanced Studies in Education, (Deemed to be University) Sardarshahar, Rajasthan

भूमिका –

संगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह शिक्षा प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण घटक भी हो सकता है। विद्यालयों में पारंपरिक और आधुनिक संगीत को पाठ्यक्रम में शामिल करने से विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। संगीत की शिक्षा से उनकी कल्पनाशीलता और रचनात्मकता को नया आयाम मिलता है, जिससे वे अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से अभिव्यक्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह उनके मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने और भावनात्मक संतुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है। संगीत सीखने की प्रक्रिया विद्यार्थियों में अनुशासन, धैर्य और एकाग्रता को बढ़ाती है। किसी वाद्य यंत्र को बजाना या स्वर लय का अभ्यास करना निरंतर ध्यान और समर्पण की मांग करता है, जिससे उनकी ध्यान केंद्रित करने की क्षमता विकसित होती है। शोध बताते हैं कि संगीत का नियमित अभ्यास स्मरण शक्ति को सुधारता है और तार्किक विचार प्रक्रिया को मजबूत करता है। इसके अलावा, यह आत्मविश्वास बढ़ाने में भी मदद करता है, क्योंकि संगीत प्रस्तुतिकरण के माध्यम से विद्यार्थी अपने भीतर की झिझक को दूर कर आत्म–अभिव्यक्ति के नए आयाम खोजते हैं। विद्यालयों में संगीत शिक्षा से विद्यार्थियों को न केवल अपनी सांस्कृतिक धरोहर से परिचित होने का अवसर मिलता है, बल्कि यह विभिन्न संगीत शैलियों और परंपराओं को समझने में भी सहायक होती है। इससे वे अपनी जड़ों से जुड़े रहते हैं और सांस्कृतिक विविधता की सराहना करना सीखते हैं। यह उनके सौंदर्यबोध और संवेदनशीलता को गहराई प्रदान करता है, जिससे वे जीवन के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। संगीत शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में सहयोग और टीम वर्क की भावना विकसित होती है। समूह गान, वाद्य यंत्रों के समन्वय, और संगीत प्रस्तुतियों में भाग लेने से वे समर्पण, सामूहिकता और तालमेल का महत्त्व समझते हैं। यह न केवल उनकी सामाजिक कुशलता को बढ़ाता है, बल्कि उन्हें नेतृत्त्व कौशल और समस्या समाधान की क्षमता विकसित करने में भी सहायता करता है।

इस प्रकार, संगीत केवल एक अतिरिक्त विषय नहीं, बल्कि एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जो विद्यार्थियों को जीवन के विभिन्न पहलुओं के लिए तैयार करता है। यह उनकी मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक क्षमता

को विकसित कर, उन्हें संतुलित और आत्मनिर्भर बनने की दिशा में प्रेरित करता है। विद्यालयों में संगीत शिक्षा का समावेश केवल शिक्षा का विस्तार नहीं, बल्कि एक समृद्ध और समावेशी शिक्षण प्रक्रिया की ओर एक सकारात्मक कदम है।

पारंपरिक संगीत का महत्त्व –

भारत का पारंपरिक संगीत अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है, जिसकी जड़ें प्राचीन ग्रंथों, परंपराओं और लोक जीवन में गहराई से समाई हुई हैं। इसमें शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख धाराएँ–हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत–सहित लोक संगीत और भक्ति संगीत की विशिष्ट शैलियाँ शामिल हैं। विद्यालयों में पारंपरिक संगीत को शिक्षा का हिस्सा बनाने से विद्यार्थियों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर को समझने और उससे गहरा जुड़ाव स्थापित करने का अवसर मिलता है। पारंपरिक संगीत न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह इतिहास, समाज और जीवन के गहरे अर्थों को भी अभिव्यक्त करता है। जब विद्यार्थी इस संगीत को सीखते हैं, तो वे अपनी जड़ों और परंपराओं से परिचित होते हैं, जिससे उनमें सांस्कृतिक गर्व और आत्मपहचान की भावना विकसित होती है। इसके अलावा, लोक संगीत क्षेत्रीय विशेषताओं को प्रतिबिंबित करता है और समाज के विभिन्न समूहों की भावनाओं और विचारों को उजागर करता है, जिससे विद्यार्थी विविधता को स्वीकारना और सम्मान देना सीखते हैं। भक्ति संगीत का अभ्यास विद्यार्थियों को आध्यात्मिकता और नैतिक मूल्यों की ओर आकर्षित करता है, जिससे उनके मानसिक और भावनात्मक संतुलन में सुधार होता है। यह ध्यान और शांति प्रदान करने का एक प्रभावी माध्यम हो सकता है, जो उनके समग्र विकास में सहायक होता है। विद्यालयों में पारंपरिक संगीत को शामिल करने से न केवल विद्यार्थियों की संगीत प्रतिभा विकसित होती है, बल्कि उनकी रचनात्मकता, एकाग्रता और आत्म–अनुशासन भी बढ़ता है। इसके माध्यम से वे भारतीय संस्कृति की गहराई को समझने के साथ–साथ अपनी संगीत अभिव्यक्ति को भी समृद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार, पारंपरिक संगीत शिक्षा न केवल सांस्कृतिक विरासत को सहेजने का कार्य करती है, बल्कि विद्यार्थियों को एक समग्र और संतुलित शिक्षा प्रदान करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संगीत के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. संस्कृति और परंपरा का संरक्षण –

भारतीय संगीत परंपरा हजारों वर्षों से हमारी संस्कृति और सभ्यता की आधारशिला रही है। यह न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का भी महत्त्वपूर्ण साधन है। शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख शाखाएँ–हिंदुस्तानी और कर्नाटकी संगीत–अपनी विशिष्ट शैली, राग–रागिनियों, ताल संरचना और प्रस्तुति के लिए प्रसिद्ध हैं। हिंदुस्तानी संगीत मुख्य रूप से उत्तर भारत में विकसित हुआ, जिसमें ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी और टप्पा जैसी शैलियाँ शामिल हैं, जबकि कर्नाटकी संगीत दक्षिण भारत में अपनी मौलिकता और संरचना के लिए पहचाना जाता है। दोनों ही परंपराएँ भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्त्व करती हैं और संगीत के माध्यम से भारतीय दर्शन एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं। इनके साथ ही, लोक संगीत भारत की विविधता और जीवनशैली का सजीव चित्रण करता है। प्रत्येक क्षेत्र की लोक संगीत परंपराएँ वहाँ की परंपराओं, उत्सवों, मान्यताओं और जीवन के विभिन्न रंगों को दर्शाती हैं। राजस्थानी मांड, बंगाल का भटियाली, महाराष्ट्र का भावगीत, पंजाब का गिद्धा और भांगड़ा, और दक्षिण भारत की

लोक धुनें अपने अनूठे अंदाज में सांस्कृतिक विविधता को संजोए हुए हैं। लोक संगीत जनमानस से सीधा संबंध रखता है और इसे सहजता से आत्मसात किया जा सकता है।

जब विद्यार्थी पारंपरिक संगीत की शिक्षा प्राप्त करते हैं, तो वे न केवल एक कला रूप सीखते हैं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक जड़ों को भी पहचानते हैं। यह उन्हें अपनी समृद्ध परंपरा को समझने, संरक्षित करने और आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। संगीत शिक्षा केवल स्वर और ताल का ज्ञान देने तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह इतिहास, साहित्य, और दर्शन की गहरी समझ भी विकसित करती है। भारतीय संगीत में वर्णित भक्ति, श्रृंगार, करुणा और शांत रस जैसे तत्त्व विद्यार्थियों को आत्मिक उन्नति और भावनात्मक संवेदनशीलता की ओर ले जाते हैं। इससे उनमें राष्ट्रीय गौरव की भावना जाग्रत होती है और वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने में सहायक बनते हैं। इसके अतिरिक्त, संगीत का अभ्यास एकाग्रता, धैर्य और अनुशासन को बढ़ाता है, जिससे विद्यार्थियों का मानसिक और बौद्धिक विकास भी होता है। भारतीय संगीत न केवल मनोरंजन का स्रोत है, बल्कि यह ध्यान और योग का भी महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जो मन को शांत और सकारात्मक बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार, पारंपरिक संगीत शिक्षा न केवल एक कला के रूप में, बल्कि संपूर्ण व्यक्तित्त्व विकास और सांस्कृतिक उत्थान के माध्यम के रूप में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

2. संगीत के माध्यम से ध्यान और अनुशासन –

शास्त्रीय संगीत को सीखने की प्रक्रिया गहरी निष्ठा, निरंतर अभ्यास और अनुशासन की अपेक्षा करती है। इसमें विभिन्न रागों, तालों, स्वरों और लय की सूक्ष्मताओं को आत्मसात करना आवश्यक होता है, जिससे विद्यार्थी की एकाग्रता और मानसिक सतर्कता निरंतर विकसित होती है। नियमित अभ्यास के माध्यम से वे स्वरों के सूक्ष्म उतार–चढ़ाव, तालों की जटिलताओं और विभिन्न रागों की भावनात्मक अभिव्यक्ति को समझने में सक्षम होते हैं। यह प्रक्रिया केवल तकनीकी दक्षता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि रचनात्मकता, संवेदनशीलता और आत्म–अनुशासन को भी प्रोत्साहित करती है। जब विद्यार्थी कोई वाद्य यंत्र बजाना सीखते हैं या गायन में निपुणता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, तो यह उनके ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को बढ़ाता है। लंबे समय तक अभ्यास करने से धैर्य और आत्म–नियंत्रण का विकास होता है, जो उनके संपूर्ण व्यक्तित्त्व को संवारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अनुशासन केवल संगीत तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उनकी पढ़ाई, कार्यक्षमता और अन्य जीवन कौशल में भी परिलक्षित होता है।

संगीत का अभ्यास मनोवैज्ञानिक रूप से भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। यह न केवल मानसिक तनाव को कम करने में सहायक होता है, बल्कि आत्मविश्वास और आत्म–अभिव्यक्ति की क्षमता को भी बढ़ाता है। जब विद्यार्थी किसी राग या ताल को आत्मसात करते हैं, तो वे धैर्यपूर्वक सुनने, समझने और प्रतिक्रिया देने की कला सीखते हैं, जिससे उनका भावनात्मक संतुलन मजबूत होता है। यह संपूर्ण प्रक्रिया उनकी सोचने–समझने की शक्ति को प्रखर बनाती है और उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अधिक सक्षम बनाती है। इसके अतिरिक्त, संगीत की साधना विद्यार्थियों में रचनात्मकता और नवाचार को बढ़ावा देती है। जब वे किसी रचना को प्रस्तुत करते हैं, तो उसमें उनकी अपनी शैली और भावनात्मक अभिव्यक्ति झलकती है। यह न केवल उनकी कलात्मक समझ को परिपक्व करता है, बल्कि आत्म–अन्वेषण और आत्म–विकास का भी एक माध्यम बनता है। इस प्रकार, शास्त्रीय संगीत की शिक्षा केवल एक कला नहीं, बल्कि एक संपूर्ण जीवन दर्शन प्रदान करती है, जो अनुशासन,

धैर्य और आत्मनियंत्रण के माध्यम से व्यक्तित्त्व को समृद्ध बनाती है।

3. संवेदनशीलता और अभिव्यक्ति का विकास –

संगीत केवल ध्वनियों का संयोजन मात्र नहीं है, बल्कि यह भावनाओं और विचारों की गहरी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है। जब विद्यार्थी रागों, सुरों और तालों की सूक्ष्मताओं को समझते हैं, तो वे संगीत के भीतर समाहित भावनात्मक गहराइयों को महसूस करने लगते हैं। यह उन्हें संवेदनशील और सहानुभूतिपूर्ण बनाता है, जिससे वे अपने परिवेश में मौजूद लोगों की भावनाओं को अधिक सहजता और गहराई से समझने में सक्षम होते हैं। संगीत की यह विशेषता आत्म–अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करती है और विद्यार्थियों को अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त, संगीत मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। नियमित रूप से संगीत का अभ्यास करने से तनाव, चिंता और मानसिक दबाव कम होता है, जिससे विद्यार्थी अधिक शांत, संतुलित और आत्मविश्वासी बनते हैं। संगीत की धुनें और लयबद्ध स्वर मानसिक एकाग्रता को बढ़ाते हैं, जिससे स्मरण शक्ति और निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित होती है। कई शोध यह दर्शाते हैं कि संगीत सुनने और उसे आत्मसात करने से मस्तिष्क में सकारात्मक हार्मोन उत्पन्न होते हैं, जो मन को प्रसन्नचित्त बनाए रखते हैं और जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक होते हैं।

विद्यालयों में संगीत शिक्षा केवल पाठ्यक्रम का एक विषय भर नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों के संपूर्ण मानसिक, भावनात्मक और सांस्कृतिक विकास का प्रभावी साधन भी है। संगीत न केवल उनके व्यक्तित्त्व को निखारता है, बल्कि उनके भीतर एक गहरी सांस्कृतिक चेतना भी विकसित करता है। जब वे भारतीय शास्त्रीय या लोक संगीत की परंपराओं को समझते हैं, तो वे अपनी सांस्कृतिक जड़ों से और अधिक गहराई से जुड़ने लगते हैं। यह जुड़ाव उनमें आत्मगौरव की भावना उत्पन्न करता है और वे अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए प्रेरित होते हैं। संगीत शिक्षा केवल एक अच्छे श्रोता या कलाकार बनाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों को अधिक संवेदनशील, रचनात्मक और समावेशी दृष्टिकोण रखने वाला इंसान भी बनाती है। यह उन्हें न केवल एक कलात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती है, बल्कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्त्व को परिष्कृत करने में भी सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार, संगीत शिक्षा एक संपूर्ण जीवन दर्शन का प्रतीक है, जो आत्म–अभिव्यक्ति, मानसिक शांति और सांस्कृतिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है।

आधुनिक संगीत का महत्त्व –

आधुनिक संगीत की विभिन्न शैलियाँ, जैसे वेस्टर्न म्यूजिक, पॉप, जैज, रॉक और इलेक्ट्रॉनिक संगीत, न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं, बल्कि वे रचनात्मक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक आदान–प्रदान का भी एक महत्त्वपूर्ण जरिया बन चुकी हैं। बदलते समय के साथ, युवा पीढ़ी इन शैलियों की ओर आकर्षित हो रही है, जिससे उनकी संगीत की समझ और रुचि व्यापक हो रही है। यदि इन आधुनिक संगीत शैलियों को शिक्षा प्रणाली में समाहित किया जाए, तो यह विद्यार्थियों की सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने के साथ–साथ उनकी अभिव्यक्ति क्षमता को भी निखार सकता है। आधुनिक संगीत में प्रयोगधर्मिता और नवीनता की संभावनाएँ अधिक होती हैं, जिससे विद्यार्थियों को संगीत की नई विधाओं को सीखने और आत्मसात करने का अवसर मिलता है। डिजिटल उपकरणों और संगीत उत्पादन तकनीकों के माध्यम से वे अपनी खुद की धुनें और रचनाएँ

तैयार कर सकते हैं, जो उनकी नवाचार क्षमता को विकसित करने में सहायक हो सकता है। इसके अलावा, पॉप और रॉक संगीत समूहों में प्रदर्शन करने से विद्यार्थियों में टीम वर्क, आत्मविश्वास और मंच पर प्रस्तुति देने की क्षमता विकसित होती है। जैज संगीत, जो स्वाभाविक प्रवाह और तात्कालिकता पर आधारित होता है, विद्यार्थियों को त्वरित सोचने और अपनी भावनाओं को सहज रूप से व्यक्त करने में मदद करता है। इलेक्ट्रॉनिक संगीत और मिक्सिंग तकनीकें विद्यार्थियों को आधुनिक ध्वनि विज्ञान और प्रौद्योगिकी से परिचित कराती हैं, जिससे वे संगीत के तकनीकी पहलुओं को भी समझ पाते हैं। शिक्षा में आधुनिक संगीत के समावेश से विद्यार्थियों को वैश्विक संगीत परंपराओं की जानकारी मिलती है और वे विभिन्न संस्कृतियों के संगीत को समझने और सराहने में सक्षम होते हैं। इससे उनकी संगीत अभिरुचि और रचनात्मकता में न केवल वृद्धि होती है, बल्कि उन्हें एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा भी मिलती है।

1. नवाचार और तकनीकी कौशल –

आधुनिक संगीत शिक्षा में डिजिटल उपकरणों और तकनीकों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। डिजिटल संगीत निर्माण, ध्वनि संपादन, कंपोजिंग और रिकॉर्डिंग जैसे कौशल न केवल संगीत के प्रति विद्यार्थियों की रुचि को बढ़ाते हैं, बल्कि उन्हें भविष्य में उभरते करियर विकल्पों के लिए भी तैयार करते हैं। संगीत उत्पादन सॉफ्टवेयर, सिंथेसाइजर, मिक्सिंग कंसोल और ऑडियो इंजीनियरिंग की समझ विकसित करने से विद्यार्थी अपनी खुद की संगीत रचनाएँ तैयार कर सकते हैं। इससे उनमें रचनात्मकता और नवाचार की भावना प्रबल होती है, जिससे वे संगीत को एक पारंपरिक कला रूप से आगे बढ़ाकर एक तकनीकी और डिजिटल अनुभव में बदल सकते हैं। इन कौशलों की मांग मनोरंजन उद्योग, विज्ञापन, गेमिंग, और फिल्म निर्माण में भी बढ़ रही है, जिससे विद्यार्थियों को कई नए अवसर मिलते हैं।

2. संगीत और मानसिक स्वास्थ्य –

संगीत हमेशा से ही भावनात्मक संतुलन और मानसिक शांति प्रदान करने का एक प्रभावी साधन रहा है। आधुनिक संगीत की विभिन्न शैलियाँ, जैसे सॉफ्ट पॉप, लूफाई (Lo-Fi), जैज और चिलहॉप, विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। शोध से यह साबित हुआ है कि संगीत सुनने और अभ्यास करने से मस्तिष्क में डोपामाइन और सेरोटोनिन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर की मात्रा बढ़ती है, जो तनाव को कम करने और मनोबल बढ़ाने में सहायक होते हैं। संगीत थेरेपी का उपयोग अवसाद, चिंता और एकाग्रता संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। जब विद्यार्थी किसी वाद्य यंत्र को बजाते हैं या संगीत की लय में डूबते हैं, तो यह उनके दिमाग को शांत करता है और भावनात्मक स्थिरता बनाए रखने में मदद करता है। इसके अलावा, समूह संगीत प्रदर्शन से सामाजिक संबंध मजबूत होते हैं, जिससे विद्यार्थियों को भावनात्मक सहारा मिलता है और वे अधिक आत्मविश्वासी अनुभव करते हैं।

3. वैश्विक मंच पर प्रतिस्पर्धा –

आज के डिजिटल युग में संगीत की सीमाएँ धुंधली हो गई हैं, और भारतीय विद्यार्थी भी वैश्विक मंच पर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकते हैं। वेस्टर्न म्यूजिक, जैज और फ्यूजन म्यूजिक की शिक्षा उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने और अपनी अनूठी पहचान बनाने में मदद कर सकती है। आधुनिक संगीत शैलियाँ वैश्विक दर्शकों तक पहुँचने का एक सशक्त माध्यम हैं, और डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे यूट्यूब, स्पॉटिफाई, और

साउंडक्लाउड के माध्यम से विद्यार्थी अपने संगीत को पूरी दुनिया तक पहुँचा सकते हैं। इसके अलावा, जब विद्यार्थी अन्तर्राष्ट्रीय संगीत शैलियों को सीखते हैं, तो वे अन्य संस्कृतियों को समझने और विभिन्न संगीत शैलियों का समन्वय करने में सक्षम होते हैं। इससे उनकी संगीत की विविधता को अपनाने की क्षमता विकसित होती है और वे अधिक प्रयोगशील बनते हैं। फ्यूजन म्यूजिक, जो पारंपरिक और आधुनिक शैलियों का मिश्रण होता है, भारतीय संगीतकारों के लिए अपनी विरासत को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचाने का एक बेहतरीन माध्यम बन सकता है। इस प्रकार, आधुनिक संगीत शिक्षा केवल कला के रूप में सीमित नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों को एक वैश्विक मंच पर प्रतिस्पर्धा करने और अपनी प्रतिभा को नई ऊँचाइयों तक ले जाने के लिए प्रेरित करती है।

पारंपरिक और आधुनिक संगीत का समावेश कैसे किया जाए? –

विद्यालयों में पारंपरिक और आधुनिक संगीत के संतुलन को बनाए रखने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं :–

1. मिश्रित पाठ्यक्रम –

विद्यालयों में संगीत शिक्षा को प्रभावी और संतुलित बनाने के लिए पारंपरिक और आधुनिक संगीत दोनों को सम्मिलित करते हुए एक व्यापक पाठ्यक्रम विकसित किया जा सकता है। यह पाठ्यक्रम शास्त्रीय (हिंदुस्तानी और कर्नाटकी), लोक संगीत और भक्ति संगीत के साथ–साथ वेस्टर्न म्यूजिक, जैज, पॉप, रॉक और इलेक्ट्रॉनिक संगीत को भी शामिल कर सकता है। इससे विद्यार्थियों को न केवल अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित होने का अवसर मिलेगा, बल्कि वे वैश्विक संगीत प्रवृत्तियों को भी समझ पाएंगे। पाठ्यक्रम में संगीत इतिहास, थ्योरी, गायन, वाद्य यंत्रों का अभ्यास और संगीत उत्पादन से जुड़ी आधुनिक तकनीकों को भी जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार, एक संतुलित पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को विविध संगीत शैलियों में दक्ष बनने में सहायता करेगा और उनके समग्र कलात्मक विकास को प्रोत्साहित करेगा।

2. कार्यशालाएं और संगीत कार्यक्रम –

विद्यार्थियों को विभिन्न संगीत शैलियों से परिचित कराने और उनकी प्रतिभा को निखारने के लिए नियमित रूप से संगीत कार्यशालाएं, प्रतियोगिताएँ और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं। कार्यशालाओं के माध्यम से विद्यार्थियों को विशेषज्ञ संगीतकारों और प्रशिक्षकों से सीखने का अवसर मिलेगा, जिससे वे नई शैलियों और तकनीकों को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे। स्कूल स्तर पर संगीत समूहों, बैंड, कोरस और वाद्य यंत्रों के प्रदर्शन को बढ़ावा देकर विद्यार्थियों को अपने कौशल को दर्शाने का मंच दिया जा सकता है। संगीत महोत्सवों और इंटरस्कूल प्रतियोगिताओं के आयोजन से न केवल विद्यार्थियों का आत्मविश्वास बढ़ेगा, बल्कि वे संगीत के प्रति अधिक प्रेरित भी होंगे।

3. प्रशिक्षित संगीत शिक्षकों की नियुक्ति –

संगीत शिक्षा को प्रभावी और गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए पारंपरिक और आधुनिक संगीत दोनों में दक्ष प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति आवश्यक है। संगीत शिक्षकों को न केवल गायन और वादन में निपुण होना चाहिए, बल्कि उन्हें संगीत थ्योरी, रचना, और आधुनिक डिजिटल तकनीकों का भी ज्ञान होना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षकों को विद्यार्थियों की विभिन्न संगीत रुचियों और क्षमताओं को पहचानने और उन्हें प्रोत्साहित करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि विद्यालयों में योग्य और अनुभवी संगीत शिक्षकों की उपलब्धता होगी, तो विद्यार्थियों को

संगीत की विविध शैलियों को सीखने और अपनी प्रतिभा को निखारने का बेहतर अवसर मिलेगा।

4. तकनीकी साधनों का उपयोग –

आधुनिक तकनीक ने संगीत शिक्षा के क्षेत्र में नए द्वार खोले हैं। विद्यालयों में डिजिटल संगीत सॉफ्टवेयर, वर्चुअल इंस्ट्रूमेंट्स, रिकॉर्डिंग स्टूडियो और म्यूजिक प्रोडक्शन टूल्स का उपयोग करके विद्यार्थियों को संगीत के तकनीकी पहलुओं से परिचित कराया जा सकता है। म्यूजिक कंपोजिंग, मिक्सिंग और मास्टरिंग से जुड़े सॉफ्टवेयर, जैसे FL Studio, Ableton Live, और GarageBand, विद्यार्थियों को अपने स्वयं के संगीत ट्रैक बनाने की सुविधा प्रदान कर सकते हैं। इसके अलावा, ऑनलाइन संगीत सीखने के प्लेटफॉर्म और इंटरैक्टिव टूल्स के माध्यम से विद्यार्थी कहीं से भी अभ्यास कर सकते हैं और अपनी संगीत दक्षता को निखार सकते हैं। तकनीक के उपयोग से संगीत शिक्षा अधिक सुलभ और रोचक बन सकती है, जिससे विद्यार्थियों में संगीत के प्रति रुचि और नवाचार की भावना विकसित होगी।

निष्कर्ष :–

विद्यालयों में पारंपरिक और आधुनिक संगीत के समावेश से विद्यार्थियों को न केवल एक समृद्ध सांस्कृतिक अनुभव प्राप्त होगा, बल्कि यह उनकी रचनात्मकता, मानसिक कौशल और व्यक्तित्त्व विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। पारंपरिक संगीत उन्हें अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का अवसर देता है, जबकि आधुनिक संगीत नवाचार और वैश्विक दृष्टिकोण को अपनाने में मदद करता है। जब विद्यार्थी दोनों शैलियों का अध्ययन करते हैं, तो वे संगीत की विविधता को समझने के साथ–साथ अपनी खुद की अनूठी शैली विकसित करने में सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त, संगीत का यह समावेश उनकी तार्किक और संज्ञानात्मक क्षमताओं को भी विकसित करता है। शोध से पता चला है कि संगीत का अभ्यास मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाता है, एकाग्रता में सुधार करता है और स्मरण शक्ति को सशक्त बनाता है। पारंपरिक रागों और लयबद्ध संरचनाओं का अध्ययन करने से मानसिक अनुशासन विकसित होता है, जबकि आधुनिक संगीत में प्रयोगधर्मिता विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से सोचने और नए विचारों को अपनाने के लिए प्रेरित करती है। विद्यालयों में संगीत के इस संतुलित समावेश से न केवल शैक्षिक वातावरण समृद्ध होगा, बल्कि विद्यार्थियों का आत्मविश्वास और संचार कौशल भी बेहतर होगा। समूह गायन, वाद्य यंत्रों का सामूहिक अभ्यास और संगीत प्रदर्शन विद्यार्थियों में टीम वर्क, नेतृत्त्व क्षमता और सामाजिक कौशल को मजबूत करने में सहायक होते हैं। इसके साथ ही, संगीत तनाव को कम करने और मानसिक शांति प्रदान करने का भी एक प्रभावी माध्यम बन सकता है, जिससे विद्यार्थी अधिक संतुलित और सकारात्मक जीवन शैली अपना सकते हैं। इस प्रकार, शिक्षा प्रणाली में पारंपरिक और आधुनिक संगीत का संतुलित समावेश न केवल विद्यार्थियों के कलात्मक और बौद्धिक विकास में सहायक सिद्ध होगा, बल्कि यह उनके व्यक्तित्त्व को भी संपूर्ण रूप से निखारने में योगदान देगा। इससे वे अपनी संस्कृति को आत्मसात करने के साथ–साथ वैश्विक संगीत परंपराओं से भी परिचित हो सकेंगे, जिससे उनका दृष्टिकोण और अधिक व्यापक एवं समावेशी बन सकेगा।

सन्दर्भ सूची :–

1. कुमार, सुरेश, भारतीय शास्त्रीय संगीत का महत्त्व, संगीत शिक्षा पत्रिका, खंड 12, अंक 3, 2015, 45–52

2. वर्मा, प्रिया, पारंपरिक और आधुनिक संगीत का समन्वय, संगीत साधना, खंड 10, अंक 4, 2016, 55–62
3. पटेल, दीपक, संगीत शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्य, संगीत चिकित्सा पत्रिका, खंड 6, अंक 2, 2016, 42–49
4. मिश्रा, संगीता, पारंपरिक संगीत की शिक्षाः चुनौतियाँ और समाधान, शिक्षा समीक्षा, खंड 14, अंक 2, 2017, 38–45
5. शर्मा, राधिका, आधुनिक संगीत और युवा पीढ़ी, नवभारत संगीत समीक्षा, खंड 8, अंक 2, 2017, 33–40
6. राय, अजय, आधुनिक संगीत तकनीक और शिक्षा, संगीत विज्ञान पत्रिका, खंड 7, अंक 1, 2018, 49–56
7. गुप्ता, अनिल, विद्यालयों में संगीत शिक्षा : एक समग्र दृष्टिकोण, शिक्षा विमर्श, खंड 15, अंक 1, 2018, 22–29
8. सिंह, मोहन, संगीत शिक्षा में नई प्रवृत्तियाँ, शिक्षा दर्पण, खंड 9, अंक 3, 2019, 41–48
9. जोशी, नितिन, संगीत शिक्षा में डिजिटल उपकरणों का उपयोग, नवीन शिक्षा, खंड 13, अंक 3, 2019, 27–34
10. दास, मीना, विद्यालयी पाठ्यक्रम में संगीत का स्थान, शिक्षा संवाद, खंड 11, अंक 2, 2020, 30–37
11. कौशिक, सुमन, विद्यालयों में संगीत कार्यशालाओं का प्रभाव, शिक्षा प्रगति, खंड 12, अंक 4, 2020, 50–57

Email ID: jitendrasainitanwar@gmail.com
Contact No. 9799227879

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 185–188

हिंदी भक्ति काव्यधारा में हरियाणा का योगदान

डॉ० यशवीर दहिया
सहायक प्राध्यापक, एस. के. डी. यूनिवर्सिटी, हनुमानगढ़।

प्रस्तावना :–

हरियाणा एक कृषि प्रधान देश है। यह अपनी हरियाली और कृषि के लिए देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी पहचाना जाता है। लेकिन यह अपनी संस्कृति, भाषा व साहित्य में भी पीछे नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी भक्ति काव्यधारा में हरियाणा के कवियों का विशेष योगदान रहा है हिंदी साहित्य के भक्तिकाल को समृद्ध करने में हरियाणा के सूरदास, गरीबदास आदि कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भक्ति काव्यधारा को सबसे अधिक समृद्ध बनाने में कृष्णभक्त कवि सूरदास का स्थान सर्वोपरि है।

सूरदास :– अष्टछाप का जहाज कहलाने वाले परम कृष्ण भक्त महाकवि सूरदास का जन्म सन 1478 ई. में हुआ। इनके जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इनका जन्म–स्थान दिल्ली तथा फरीदाबाद के बीच 'सीही' नामक गाँव में हुआ। सूरदास की जन्मस्थली सिही नामक गाँव को मानने की पुष्टि हरिराय जी कृत 'भाव प्रकाश' से होती है, इसी प्रकार 'गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि ने भी अपने 'अष्टसखामृत' नामक ग्रंथ में सुर का जन्मस्थल सीही नामक गाँव ही बताया है।'[1] इस प्रकार अधिकांश विद्वान सीही को ही सूर की जन्मस्थली स्वीकार करते हैं। बाल्यावस्था से ही ये अद्‌भुत प्रतिभा के धनी तथा गान विद्या में निपुण थे। तरुणावस्था आते–आते इन्हें संसार से विरक्ति हो गई थी तथा ये मथुरा के विश्राम घाट पहुंच गए। वहां थोड़े दिन रहने के बाद ये वृन्दावन–मथुरा के बीच यमुना किनारे गऊघाट पर रहने लगे थे। यहीं पर इनकी भेंट स्वामी बल्लभाचार्य से हुई। इन्होंने उन्हें अपना गुरु बना लिया। बल्लभाचार्य के शिष्य बनाने से पूर्वये भगवान श्रीकृष्ण से संबंधित विनय व दास्य भाव के पद गाया करते थे। बल्लभचार्य ने इन्हें श्रीनाथ के मंदिर में भजन कीर्तन के लिए नियुक्त किया था। सूरदासजी नेत्रहीन थे या बाद में अंधे हुए थे। श्रीनाथ जी के मंदिर के समीप ही स्थित 'पारसौली' नामक गाँव मे सन 1583 में इनका परलोक में निवास हो गया था।

रचनायें :–

वैसे तो सूरदास जी की 24 रचनाओं का उल्लेख मिलता है लेकिन डॉक्टर दीनदयाल गुप्त ने इनकी तीन रचनाए प्रामाणिक व प्रसिद्ध मानी जाती हैं।

(1) **सूरसागर :–** इसकी रचना भागवत की पद्धति पर द्वादश स्कन्धों में हुई है।

(2) **सूरसारावली :–** यह 1107 छन्दों का ग्रन्थ है।

(3) **साहित्यलहरी :–** सूरदास के प्रसिद्ध दृष्टकूट पदों का संग्रह है। इसमें अर्थ गोपन शैली में राधा–कृष्ण

की लीलाओं का वर्णन है।

महाकवि सूरदास के साहित्य की अन्यतम विशेषता अनन्य भाव से भगवान श्रीकृष्ण की आराधना करना है। इन्होंने अपने समस्त काव्य में भगवान श्रीकृष्ण सगुण साकार ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठा करते हुए आराधना की है। इन्होने विनय, दास्य, सख्य, वात्सल्य व माधुर्य भाव से भगवान श्रीकृष्ण की आराधना की है। इनके साहित्य की दूसरी विशेषता इनका बाल लीला वर्णन है। अपने बाल लीला से सम्बन्धित पदों में इन्होंने ब्रज भूमि के मधुर परिवेश, गोपियों के हाव–भाव आदि का सहज स्वभाव के मनोरम एवं मार्मिक चित्रण के साथ बाल कृष्ण की लीलाओं के जो सजीव चित्र अंकित किये हैं। वे विश्व साहित्य में दुर्लभ है। पुरुष होते हुए भी सूरदास के पास माँ का कोमल हृदय था। जो इस प्रकार है :–

'सोभित कर नवनीत लिये,
घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।'[2]

इनके द्वारा प्रस्तुत बाल लीला के सजीव चित्र देख कर कुछ विद्वानों को नहीं लगता की ये जन्मांध थे दुनिया की ममतामयी से ममतामयी माँ भी इनके 'वात्सल्य' भाव मुकाबला नहीं कर पाती। भ्रमरगीत के माध्यम से इन्होंने गोपियों की विरह–व्यथा का जो हृदय–स्पर्शी चित्रण किया है, वह अदभुत है। इसके अलावा इनके निर्गुण ज्ञान के खण्डन से संबंधित पद भी साहित्य जगत में विशेष स्थान रखते हैं।

सूरदास सगुण साकार ईश्वर के उपासक थे। इनका विचार था कि निर्गुण निराकार ब्रह्म को समझना या उसे प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं है। इसलिए सूरदास ने रसरूप, पूर्ण पुरुषोत्तम, परब्रह्मा श्रीकृष्ण को ही अपना आराध्य स्वीकार किया है। एक स्थान पर वे कहते भी हैं :–

'अविगत–गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै।'[3]

सूरदास के उपास्य श्रीकृष्ण भक्त वत्सल हैं वे दीनों का उद्धार करने वाले हैं। इसलिए कवि स्वीकार करता है कि प्रभू को छोड़कर उसके मन को अन्यत्र कहीं सुख प्राप्त नहीं हो सकता :–

'मेरो मन कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पै आवै।'[4]

सूरदास का अध्ययन करने से पता चलता है कि सूरदास बल्लभचार्य के सम्पर्क में आने से पहले दास्य भक्ति के पद गाया करते थे। कवि अपने आराध्य श्रीकृष्ण का स्मरण करता है और उनके समक्ष अपनी दीन हीनता का प्रतिपादन करता है तथा उनकी स्तुति में लिखते हैं :–

'हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहि कबहूं, आवत गाढ काम।'[5]

कवि का ब्रज के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने में मन खूब रमा है जो इस प्रकार देखा जा सकता है:–

'जहें वृन्दावन आदि अजर, जहां कुँज–लता विस्तार
तई विहरत प्रिया–प्रियतम दोऊ, निगम गूंज गुजार।।'[6]

2. गरीबदास :– गरीबदास का जन्म बैशाख पूर्णिमा के दिन संवत 1774 (1717) को चौधरी बलराम धनखड़ के घर मे हुआ। माता का नाम रानी था। इनके पिता बलराम धनखड़ अपनी सुसराल छुड़ानी (रोहतक) में अपना

गांव करोंधा छोड़ कर आ बसे थे। इनके नाना का नाम शिव लाल था। उनके पास अथाह संपत्ति का भंडार था। शिव लाल के कोई बेटा नही था। केवल एक बेटी थी जिसका नाम रानी था। रानी का विवाह करौंथा निवासी हरदेव सिंह धनखड़ के पुत्र बलकार से कर दिया। एक वर्ष बाद रानी से एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ जिसका नाम गरीबदास था।

गरीबदास को बचपन से ही वैरागय हो गया था। ईश्वर भक्ति, स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता के लिए वे बाल्यकाल से ही प्रसिद्ध थे। जिन्होंने हिंदुत्व और आध्यात्मिकता का बहुत प्रचार किया। सन्त गरीबदास का विवाह नादर सिंह दहिया गाँव बरौना जिला सोनीपत की बेटी देवी से हुआ था। इनके चार पुत्र जेतराम, तुरतीराम, अंगदेराम और आसाराम थे। इनकी दो पुत्रियां दिलकौर और ज्ञानकौर पैदा हुई। जेतराम के जगन्नाथ पुत्र हुआ तो उसने गृहस्थ छोड़कर नागा साधू हो गया। वह साधु करौंथा गाँव में आकर रहने लगा तथा 1780 ई में महान्तपुर (जलंधर) में इनका निधन हो गया। जहां पर इनकी छतरी बनी हुई है। इनकी एक छतरी करौंथा में भी बनाई गई है।

गरीबदास के दूसरे पुत्र तुरतीराम छुड़ानी की गद्दी पर बैठे जो 40 वर्ष तक आसीन रहे। सन 1817 में इनका स्वर्गवास हो गया। इनकी दोनों पुत्रियाँ सम्पूर्ण जीवन कुंवारी रहकर ईश्वर की भक्ति करती थी। एक बार इनको मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीला (1719–1748) इनसे आशीर्वाद लेने के लिए दिल्ली बुलाया। उन्होंने बादशाह के आगे तीन बातें रखी :–

(1) सम्पूर्ण राज्य में गोधन वध बंद करो।

(2) दूसरे धर्म के लोगो पर अत्याचार बंद करो।

(3) किसानों के अन्न पर टैक्स बन्द करो व अकाल ग्रस्तों को लगान में छूट दो।

आपकी तीनों बातें बादशाह ने मान ली तो आशीर्वाद दिया। 'जो कोई माने शब्द हमारा, राज करें काबुल कंधारा' परन्तु मुल्लाओं ने यह कह कर 'काफिर का कहा मनना नापाक हो जाता है' शाह को तीनों बातें मनाने से रोक दिया। इनको बन्दी बनाने तक का षड्यंत्र रचा गया। परन्तु जब महाराज गरीबदास को पता चला तो यह सेवकों सहित दिल्ली छोड़ गए तथा यह अभिशाप दे गए कि दिल्ली मण्डल पाप की भूमाधरती नाल जगाऊँ सुभा।' अर्थात दिल्ली पाप की भूमि बन गई है और यहाँ पर शत्रुओं के घोड़ो के खुरों की धूल उड़कर रहेगी। इनके अभिशाप के कारण ऐसा ही हुआ। नादिरशाह ने दिल्ली पर धावा बोल दिया और इसे खूब लुटा तथा कत्लेआम किया।

गरीबदास जी कबीरदास जी के अनुयायी थे। वे ग्रामीणों को उपदेश देते थे– 'गरीब गाड़ी बाहो धर रहो, खेती करो, खुशहाल साई सर पर रखिये तो सही भक्ति हरलाल।'

इन्होंने आगे कहा – 'दास गरीबा कहे दरवेशा रोटी बांटो सदा हमेशा।'

इनकी 12 बोरियों का विशाल संग्रह गरीबग्रंथ के नाम से प्रसिद्ध है। जिसे रत्न सागर भी कहते हैं। इन्होंने दिल्ली, हरिद्वार, ऋषिकेश, काशीआदि में मठ तथा कुटिया बनवाई थी। इन्हीं के नाम हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान और गुजरात में लगभग 110 गरीबदास के नाम से आश्रम हैं। इन्होंने 1788 में अपना शरीर छोड़कर स्वर्ग में चले गये।

'सन्त गरीबदास (1717–1778) भक्ति और काव्य के लिये जाने जाते हैं। गरीब दास ने एक विशाल संग्रह

की स्थापना की जो गरीबग्रंथ के नाम से प्रसिद्ध है। जिसे रत्न सागर भी कहते हैं। इन्होंने गरीबदासी नामक सम्प्रदाय की नींव रखी स्वामी चेतन्डेस्क अनुसार इन्होंने 19500 से अधिक पदों की रचना की।'[7] एच. ऐ. रोज के अनुसार गरीबदास की ग्रन्थसाहिब पुस्तक में 7000 कबीर के पद लिये गए थे। और 17000 पद स्वयं गरीबदास ने रचे थे। गरीबदास का दर्शन था कि राम और रहिम में कोई अंतर नहीं है।'[8]

इन्होंने अपनी सांसो को सही रखने का संदेश दिया है :–

'सोम मंगल करो दिन राती, दूर करो न दिल की काती।'[9]

बुधवार के दिन ईश्वर का सुमिरन करना चाहिए :–

'बुध बनानी विद्या दीजे, सत सुकृत निज सुमरण किजे।'[10]

जगत गुरु बाबा गरीबदास की वाणी :–

'जो कोई कहा हमारा माने, सार शब्द कुं निश्चय आने।
हम ही शब्द शब्द की खानी, हम अविगत प्रवानी।।'[11]

निष्कर्ष :– अतः निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि हिंदी भक्ति काव्यधारा में हरियाणा के साहित्यकारों का विशिष्ट योगदान रहा है जो प्रमुख रूप से हिन्दी साहित्य के इतिहास में देखा जा सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. सूरसागर, पृ.–2
2. वही, पृ.–107
3. वही, पृ.–35
4. वही, पृ.––80
5. वही, पृ.–13
6. वही, पृ.–52
7. श्री गरीबदास : हरियाणा सन्त ऑफ हुमिनिटी/पृ.–216
8. ग्लोसरी ऑफ द ट्राइब एंड कास्ट ऑफ द पंजाब एंड नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस, पृ.–841
9. आधुनिक जाट इतिहास, पृ.–81
10. www.googal.com
11. www.googal.com
12. हरियाणा के सांगो में भक्ति भावना, डॉ. रमाकांत।
13. भक्तिकालीन साहित्य में सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना, डॉ. विपिन गुप्ता।
14. भक्तिकाव्यधारा में सामाजिक चेतना के विविध आयाम, डॉ. नीलम।
15. समाज उत्थान में हरियाणवी संत कवियों का योगदान, प्रीति सहरावत।
16. भक्तिकाव्य में बाल मनोविज्ञान, विनोद कुमार।
17. संत जैतराम के काव्य का सामाजिक स्वरुप, सोमवीर।

yashveer57@gmail.com, Mo. 9416377867

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 189–191

उदय प्रकाश के कथा साहित्य में पारिवारिक संघर्ष

आलडो डोमनिक मेन्डस, पी. एच.डी. शोधार्थी
प्रो. डॉ. संजय ए मादार, शोध निर्देशक
हिन्दी प्रचार सभा, एरणाकुलम, केरल, पीन कोड – 682016

लेखक परिचय :–

उदय प्रकाश हिन्दी साहित्य के जाने माने समकालीन लेखक एवं कवि है। उनके नितांत विशिष्ट प्रयोगों ने अल्पांकन में ही हिन्दी जगत का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट लिया। उदय प्रकाश की जीवन यात्रा अत्यंत संघर्षपूर्ण रहे है। उदय प्रकाश का जन्म 1 जनवरी 1952 को मध्य प्रदेश के राहडोल जिले के सीतापूर नामक गाँव के एक क्षत्रिय वंश में हुआ था। उदय प्रकाश के पिता श्री प्रेमशंकर और श्रीमति गंगा देवी थे। उनके बडे भाई अरुण प्रकाश और दो बहनें शशि प्रभा एवं स्वंय प्रभा।

शिक्षा :–

उदय प्रकाश की प्रारंभिक शिक्षा सीतापूर में हुई। बी.एस.सी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त सागर विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय से स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1975 ई में जवहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में पी.एच.डी प्रारंभ की। फ्रेच और स्पानिश भाषा में एम.ए की। इन्डोनेशियन भाषा में डिप्लोमा किया। पत्नि श्रीमति कुमकुम प्रकाश, दो लडके थे सिद्धार्थ और शान्तनु। आस्थाई नौकरी के सहारे अपना परिवार का भरण पोषण करते रहे। 1978 से 1980 तक जवहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफसर थे। साथ ही पूर्वग्रह के सहायक प्रोफसर थे। 2010 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मोहनदास कहानी पर प्रदान किया था।

पारिवारिक संघर्ष :–

"मनुष्य विविध परिस्थितियों का दास होता है वस्तुतः विषम परिस्थितियाँ ही मनुष्य के चरित्र महान बनाती है"।[1] उदय प्रकाश की कहानियों में पारिवारिक चित्रण है। परिवार समाज का छोटा भाग है। अनेक परिवाल मिले तो उसे समाज के नमुना होता है। परिवारों का संस्कृति समाज के संस्कृति बन जाता है। भारत विविध संस्कृतियों का मोल है।

परिवार में माता, पिता, बच्चे, दादी–दादा, नाना–नानी जैसे अनेक तरह के संबंध होते हैं। परिवार एक सामाजिक संस्था है जिसके आधार पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक परिस्थितियाँ है।

2. "रुचि वैभिलय को भी कतिपय लेखकों ने संयुक्त परिवार विघटन का प्रमुख आधार माना है। प्रत्येक प्राणी अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर एक कुटुम्ब में रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थितियों में देखता है।

रुचि वैभिलय से परिवार झगडा होता है। इसके अतिरिक्त नारी स्वतंत्रता की चेतना तथा आर्थिक स्वालम्बन ने नारी में विद्रोह की भावना उत्नन्न की है। जिससे एकांकी परिवार चाहने लगी है"।[2]

आधुनिक समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा है। जीवन में सभी मापदंण्ड बदल चुके हैं। अत्याधिक धन, अधिकार, सम्मान आर्जित करने की लालज में अधिकांश लोग अच्छे मूल्य और आदर्श को छोड दिया है।

"परिवार एक सामाजिक संस्था है जिसके आधार विशेष सामाजिक आर्थिक तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ है"।[3] हिन्दी में परिवार को अर्थ घर है। संस्कृत में कुटुम्ब कहते तो अंग्रेजी में फामिसी कहते हैं। परिवार शब्द का उद्‌भव लेटिन भाषा से है फैमिलया शब्द है।

परिवार कई प्रकार के है। प्रमुखता में संयुक्त परिवार और साधारण परिवार में बाँटा है। परिवार में साधारण पति घर दूखवाला है। माता रसोईघर, बच्चों को, नाना–नानी, दादी–दादा का देखबाल करते रहते हैं। आधुनिक परिवार में पत्नि पुरुषों को जैसे बाहर काम और घर की अंतर की काम करना पडती है।

उदय प्रकाश की कहानियाँ मोहनदास, पीली छतरीवाली लडकी और तिरिछ में कई पारिवारिक संदर्भ है। कथा का स्वरुप समाज, जाति, राजनीति और व्यक्तिगत संघर्षों के गहरे संदर्भों से जुडा हुआ है। मोहनदास नामक कहानी में परिवार संघर्ष से भरा है। उसके परिवार में रोटी–पानी कके लिए उसकी बाट जोतने वाले भी एक नहीं पाँच है। पाँच पेट और पाँच मूँह। मोहनदास का बाप काबादास जिसे पिछले आठ साल से टीबी है।

मोहनदास कहानी में परिवार के गरीबी और रोगग्रस्त परिवार का दर्दभरी हालत व्यक्त की है। परिवार में पढाई करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। मोहनदास कहानी में छह साल शारदा का हालत व्यक्त करते कहानी में कथन है कि छह साल की शारद गाँव की सरकारी प्राथमिक पाठशाला में दूसरी कक्षा की छात्र है और स्कूल के बाद वह ढाई किलोमिटर दूर, दो तालाबों के पार बसे गाँव बिछिया टोला चल देती है जैस से वह शत नौ–दस बजे तक घर लौटती है।

शिक्षा समाज को उन्नति ले आता है। आज का छात्र कल का नागरिक है। इसलिए कुछ भी परिस्थिति में पढाई करना छात्रों का लक्ष्य होना चाहिए। माता–पिता उसके लिए सहन, सहायक करना बच्चे के प्रति उसका दायित्व है।

परिवार में माता–पिता के साथ रहना अच्छा लगता है। नन्हें बच्चे होने पर माता–पिता उसे देखभाल करते हैं। जब बच्चे बडे होकर पढाई करके नौकरी प्राप्त होता है। जब नौकरी प्राप्त होने के बाद या उस समय माता पिता उसके लिए सहन, सहायक करना बच्चों के प्रति उसका दायित्व है।

परिवार में माता–पिता के रहना अच्छा लगता है। नन्हें बच्चे होने पर माता–पिता उसे देखभाल करते हैं। जब बच्चे बड़े होकर पढाई करके नौकरी प्राप्त होता है। जब नौकरी प्राप्त होने बाद या उस समय माता–पिता का शिक्षण संरक्षण करना हमारा दायित्व है। अरेबा–परेबों नामक कहानी संग्रह के एक कहानी है नेलकटर। इसमें अपना माँ के प्रति प्यार और रोगग्रस्त माँ के लिए सहायता और साथ देना लेखक उदय प्रकाश बचपन से ही सीखा है। बचपन से हुई घटना बड़े होने से याद आता है।

"बंबई के टाटा मेमोरियल अस्पताल से उन्हें ले आया गया था। सिर्फ अनारा का रस पीनी थी। वे बोलने के लिए अपने गले से डाक्टरों द्वारा बनाए गए छेद में उगली रख लेती थी, वहाँ एक ट्यूब लगी थी। उसी ट्यूब से वे साँस लेती थी"।[4]

यहाँ लेखक अपने माता को प्रेम और सहानुभूति व्यक्त किया है। माँ ने मेरे बालों को छुआ। वे कुछ बोलना चाहती थी। लेकिन मैंने रोक दिया। वे बोलती तो पूछती कि मैं सिर से क्यों नहीं नहाता? बालों में साबुन क्यों नहीं लगाता? झली धूल क्यों है? और कंधी क्यों नहीं कर रखी है यहाँ माँ बेटा का प्यार दिखाई देता है। लेखक बचपन में मिली प्यार और नेलकटर से सुन्दर और चिकनी नाखून बनाना कोशिश और पुराने यादों इस नेलकटर कहानी में पाठकों को आकर्षक रुप में दिखाया है। माँ के मृत्यु के उपरान्त उस नेलकटर यादें उसे और देखी बनाते हैं।

"अपराध नामक कहानी में उदयप्रकाश अपने बड़े भाई के साथ गुजरे दिनों की कहानी व्यक्त की है। बड़े भाई और लेखक के बीच छह साल कमी है। बड़े भाई अपाहिज थे। उनके नाक पैर पौलियो हो गया था"।[5]

रोगग्रस्त परिवार का चित्र उपरोध द्वारा अपनी आत्मकथा जैसे पाठकों को विवरण दिया है। मैंगोलियन कहानी में शोभा का बेटा सूर्य की मैंगासिल रोग से अधिक कठिनाइयों से पीड़ित थे। यहाँ परिवार की कठिनाइयों के साथ नारी शोषण अति भीषण रुप से व्यक्त है।

पीली छतरीवाली लड़की नामक कहानी में कॉलेज की छात्र अंजली और राहुल के बीच प्यार छात्र होने से प्यार से रहते हैं।

निष्कर्ष :-

उदय प्रकाश के कथा साहित्य में विविध पारिवारिक संघर्ष देख सकते हैं। परिवार में बच्चे माता–पिता, भाई, दादी सब उदय प्रकाश कहानियाँ का पात्र है। कहानी के घटनाएँ विचित्र और फान्टसी भी है। आम जीवन का चित्रण व्यक्त की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नव उपनिवेशवाद और उदय प्रकाश का साहित्य – डॉ धर्मेन्द्र प्रताप सिंह – पृ. सं. 56
2. उदय प्रकाश की कहानियों में समकालीन समाज और समस्याएँ – पी.जी. शिवकुमार–पृ. सं. 20
3. उदय प्रकाश की कहानियों में समकालीन समाज और समस्याएँ – पी.जी. शिवकुमार – पृ. सं. 21
4. मोहनदास– उदय प्रकाश– पृ. सं. 11
5. अरेबा – परेबो – उदय प्रकाश – पृ. सं. 6

9605133828,

domanic2008@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 192-197

EXPLORING AND EXPLAINING RAPE WITH SUBALTERN APPROACH : A READING OF MANJULA PADMANABHAN'S LIGHTS OUT

Ms. Jagruti Patel
Associate Professor, Smt. J. P. Shroff Arts College, Valsad.

"I have never been free of the fear of rape. From a very early age I like most women have thought of rape as a part of my natural environment. something to be feared and prayed against like fire or lightning. I never asked why men raped; I simply thought it one of the many mysteries of human nature." Says Susan Griffin in **'Rape – The Politics of Consciousness'**. Two major drives that result into a grave wrong called rape are- 1) Intense sexual desire 2) Obsession to possess and intimidate. It propagates male supremacy and perpetuates the historical defeat of female sex. It is the most painful and atrocious reality of a woman's life that results into psychological trauma, annihilation, depression and fragmentation. The victim is at once excluded from the mainstream activities and is sneered at. Out of shame, lack of self esteem, the victim withdraws herself from society. She is violated both physically and emotionally.

'Lights Out' is one of Manjula Padmanabhan's most realistic plays. Based on the real life incident the play penetrates deep into the psychology of common man and forces him to change his outlook. It defines rape as a crime not only against a female body but a deadly blow on her identity. It also deals with the theme of voyeurism. It offers a sharp criticism upon the practice of getting sexual pleasure by observing others active in sexual acts. The concept of female body and its violation is at the centre of the story. It narrates the story of defiling a female body, watching it being molested and remaining indifferent about the crime. The idea of Body can be discussed against the backdrop of the question of sex and gender. All societies at all time have differentiated between a male and a female with regard to their bodies. According to the Nigerian scholar Oyeronke Oyewumi, woman is a body based identity. Body is her strongest identity which she is taught to hide and control. It is the most important and central aspect of her corporeal existence. Since birth she is taught to regard her body

as an object which must be decorated and must be praised and appreciated by others. It is an object of people's gaze and an ultimate source of physical pleasure. As female body has the highest power to arouse sexual desires, it has become a perpetual object of oppression. Moreover, in ancient literature female body is depicted as a source of social and moral destruction. A woman must keep a check on her body or she may fall prey to rape or sexual molestation.

'Lights Out' is a story of an incident of gang rape that takes place near the apartment of Bhaskar and Leela in Santa Cruz, Bombay in 1982. It is an eye witnessed story of extreme brutality done to a woman. The couple Bhaskar and Leela are living happily in their luxurious flat with their children. But their peaceful life gets destroyed when a gang rape happens in the neighbouring under construction building. The heinous crime doesn't end in an overnight. Every night there is one or other woman being dragged and raped by gang of unknown men. She is stripped naked, pulled, beaten and torn apart. The hateful act is going on for several weeks and people living around the area watch it, hear it, feel it but incapable to protest or to stop it or to complain about it. Nobody wants to interfere. They think that it is somebody else's business and if it doesn't directly affect them they must ignore it. Furthermore, people are extremely scared of those predators in case they may target them. Another reason for pretending ignorance is that people know the corrupt police. They know it very well that even if they file a complaint the police won't take any action.

It's getting more and more strenuous for Leela to bear the noise every night. Those painful cries of the victim for help makes her hysteric. She keeps agitated and disturbed for whole day. She wants to call the police and persistently keeps begging to her husband to complain. But Bhaskar acts deaf to her appeals. He feels it will be a waste of time and even a phone call. The whimpering noise that has seized away Leela's peace of mind, doesn't disturb an inch to Bhaskar. She has never seen the incident, yet the dirty ugly sounds make her shiver, "it's as if my insides were knotted up (5.Padmanabhan) She is scared and highly agitated and can not concentrate upon anything. The terrible screaming of the woman down there doesn't let her respite for a single moment. She can't sleep, eat or do anything, "And with all the windows shut, with all the curtains drawn, with cotton in my ears-the sound still comes through!" (6. Padmanabhan) She doesn't let her children go out to play. Instead, she would feed them early and force them to sleep before the night falls and before it starts again. She continuously asks Bhaskar to do something but he ignores her. He remains nonchalant and unaffected. He rather advises Leela to shut her ears and pretend nothing has happened. He even suggests her to start yoga and concentrate on her meditation sessions or listen to good music. But Leela is so obsessed with the loud, awful cries that any noise of anything, vessels, doorbell make her jump out of her seat. The predators have threatened them to put out the lights while they perform the act. No body dares

switch on the lights. If someone dares go against the given instructions, either his windows are smashed or his car is smeared with shit. Most residents are deeply frightened. Unanimously they decide to shut themselves in their apartments and ignore the matter. However, there are some who shamelessly enjoy watching the dreadful scene.

Bhaskar and his friends Mohan and Surinder think that there is nothing wrong in watching it. Mohan, like a great philosopher calls himself a practical observer of life. He proudly calls himself mature for having the ability to see the incident and still remains indifferent. He firmly believes that it is his sociological concern and his duty to at least witness the act and discuss it in detail. Quite heedlessly he describes the loud screaming, moaning and the nakedness as some sacred rites and says that no one, not even the police can interfere in such religious rituals. Bhaskar also agrees with him, "Someone else's religion is someone else's business." (25. Padmanabhan) The incident is happening outside their house and so it is not their concern. Why should they unnecessarily poke in somebody else's business? But yes, they have the right and freedom to analyse it. With great interest they discuss about every small movement, minutest noise made during the rape- What kind of people are they? Are they fully naked? Who is the woman? How is she dressed? How do the men tear off her clothes? How do they hold her? What kind of screaming it is? High pitched? Hysterical? The shamelessly indifferent attitude of these men reflects male sexual politics to keep the women in the perpetual terror.

Susan Griffin explains, "Rape is an act of aggression in which the victim is denied her self-determination. It is an act of violence which if not actually followed by beating or murder, nevertheless always carries with it the threat of death" (20 Griffin). It is the cruellest act of violence that shatters the victim from inside out. It is a symbolic expression of male superiority, his sovereign status above women. Leela can imagine the intense pain the victim is going through. She is disturbed for being helpless to do anything about it. Being a woman she cannot be a passive observer or indulge into long useless discussion about the incident. She just cannot sit tight doing nothing while the other woman is being molested near her house. She represents a traditional Indian woman a meek, submissive wife and a caring mother. She belongs to that subaltern group of women who have no voice, no stand in the man-made jungle. Subaltern theory can be applied to everyone who is weak, oppressed and marginalised. It is about misrepresentation or no representation of the weak, poor or lower-class people.

Abhijit Sahoo writes in his article **Subaltern Studies : A New Trend in Writing History,** "Subalterns occupy entry-level jobs or occupy a lower rung of the 'Corporate ladder.' But the term is also used to describe someone who has no political or economic power, such as a poor person living under dictatorship. Different kinds of synonyms are used for the word subaltern like: common people,

lower-class, underprivileged, exploited, inferiors, minors, weak etc." (81. Sahoo) All the three women characters in the play Leela, Freida and Naina belong to the subaltern category. Leela is a middle-class woman who prefers to live in the sanctity of home, an ordinary India woman who is happy in devoting herself to domestic duties. The terrible cries from the neighbouring compound frightens her to the limit. Her desperate requests to take action is ignored with casual silence from Bhasker.

Naina, Leela's friend visits her house and is shocked to know about the gang rape which is being described by Bhaskar and Mohan as some religious ritual. Unlike Leela Naina is bold and outspoken. She strongly argues with them and refuses to accept the rape as a religious ceremony. She won't get distracted by all the silly excuses offered by the men to justify that deceitful act. She insists on seeing it for herself what actually is happening outside. She says, "But I must, I can't bear to hear this sound and not look. Even if it's something religious it sounds as if it should be stopped." (34) She goes speechless, fights for her voice when she looks out. Disgusted with the nonsensical talk of the men she cries out, "You're ……you're mad! Both of you – you're talking nonsense! Just one look outside the window and you'll know it's rape!" Mohan still shamelessly mocks at her saying she must have seen many rapes, so that she can recognize it at one glance only. Naina snapes at him, "Three men, holding one woman, with her legs pulled apart, while the fourth thrusting his organ – into her! What would you call that – a poetry reading? (39. Padmanabhan) She makes lot of counter arguments when the men call the poor victim a prostitute. She sneers at their incapability, their passivity to act and commands them to inform the police. But as her husband Surinder enters the scene, she becomes silent. Surinder like the other two men cannot remain passive. He gets angry and prepares to attack upon the assailants. But he also wastes time in planning about how to attack - with knife? With acid? By throwing petrol at them or to electrocute them? When Naina tries to intervene, he retorts, "Shut up- or 'I'll kick your teeth in!" (49). He treats her like a master treats a slave. She feels deeply hurt and humiliated. Embarrassed she shuts her mouth. And by the time all the three men could decide, they realise that the screaming has stopped and all the attackers with the victim have disappeared.

The third female character that silently expresses her protest is Freida. She is the maid servant in Leela's house who does all the household chores silently and religiously. She represents the subaltern class – women who belong to lower class or minority – women who are not allowed to speak – who are forced to keep silence to maintain patriarchal domination. Her name suggests that she may belong to minority division of society. Thus, she suffers double subjugation, for being a woman and for being a member of minority community. According to Gayatri Chakravorty Spivak, "When we come to the concomitant question of the consciousness of the subaltern, the notion of what the work cannot say becomes important." She further observes, "For the figure of woman, the relationship between woman

and silence can be plotted by women themselves; race and class differences are subsumed under that change."(28. Spivak) Frieda comes and goes, does her job and listens without reacting like a robot. However, her silence penetrates the heart of the readers. It is loud and clearly heard. Her instant action to collect material like knife, acid etc to attack upon the predators disports her intense anger towards the rapists. Nobody notices her activities as if she doesn't exist. Her monotonous movements till now, suddenly seem to enliven as the men prepares to fight. Her wordless existence suddenly gets animated as if she wants the crime to be stopped immediately. Her silence symbolises not her indifference but a strategy to protest against the abominable crime. It actually speaks loudly about the unbearable and unacceptable oppression of women in patriarchal society.

The play presents the increasing voyeurism in modern society – the exhibitionist attitude of people – to behave in exaggerated manner as to attract the attention of the viewers/ audience. Alpna Saini explains, "Voyeurism and exhibitionism are both largely pejorative terms with clinical underpinnings: largely describing the voyeur/ exhibitionist as a subject affected with some psychological disorder with its foundations in infant sexuality, somewhat along on the lines of Freudian psychology." (63. Saini) The Oxford dictionary defines the term as, sexual pleasure gained from watching others when they are naked or engaged in sexual activity. The three men seem to take voyeuristic pleasure in watching the act of gang rape. The cries of the victim arouse their interest in observing and analysing every detail of the brutal scene. The play thus exposes the ugly mentality and indifference of the society towards the exploitation of women. The modern man is so engrossed in his blind run towards materialist that he has no time to think about the sufferings of others. His greed for money turns him into a machine that has no human feeling. He is least interested in the problems and well being of others. Padmanabhan criticises social apathy of upper middle-class people. To be alone and to be self-centred have become common characteristics of the contemporary man.

Manjula Padmanabhan thus has highlighted three most prevalent evils of today' Society - 1) Rape as the most traumatic mean to intimidate women 2) Social apathy of the marginalized and 3) Silence as a strong weapon to deal with social evils. As a socially responsible writer she has taken up some less discussed and more controversial issues with a view to expose the passivity, inaction and selfishness of the contemporary society. She indirectly appeals to bring a radical change in the inherited middle-class mentality and get rid of the rigid social structure and think afresh to build a nation pillared on equality, humanity and freedom.

References :

1. Nelson Cary and Grossberg Lawrence (Ed.) "Marxism and the Interrelation of Culture.'Macmillan.London.1988

2. Padmanabhan Manjula, 'Lights Out', 'Body Blows – Women, Violence and Survival', Seagull books, Calcutta. 2000.
3. Saini Alpna, IISUniv.J.A. Vol-3(1) P: 63-68, ISSN 2319-5339,2014 (https://search.app/KwozfSnk (Bv 1 wuzj7)
4. Susan Griffin, 'Rape – The Politics of Consciousness' open Road. Integrated India. New York. (www.EarlyBirdBooks.com)
5. Sahoo Abhijit, 'Subaltern Studies : A New Writing History', Odisha Review, November – 2014. (https://magazines.odisha.gov.in)

jagrutip993@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 198–209

The Ethics of Kant and the *Bhagavad-Gitā* : A Comparative Analysis

Dr. Gauranga Das
Assistant Professor, Department of Philosophy
Kalimpong College, Kalimpong, West Bengal, India, Pin Code: 734301

Abstract :

The ethical frameworks found in Immanuel Kant's moral philosophy and the *Bhagavad Gītā* are compared philosophically in this study. It seeks to analyze their underlying ideas—such as obligation, drive, and the nature of moral behavior—in order to find both notable parallels and significant divergences. The *Bhagavad Gītā* highlights *Niṣkāma Karma* (selfless action without attachment to consequences) and *Dharma* (moral duty) as routes to *Mokṣa* (liberation), grounded in divine intent and cosmic order. The deontological ethic of Kant, on the other hand, is based on the Good Will and the Categorical Imperative, and thus derives morality from both individual autonomy and universal reason. The two traditions differ greatly in their views on the origin of moral authority, the function of wants, and their ultimate teleological goals, even if they both emphasize the primacy of internal disposition and obligation above results. Kant's unconditional universalizability stands in contrast to the *Gītā*'s contextual *svadharma*. In order to provide light on current issues in fields like work ethics, leadership, human rights, and ethical governance, the study will finish by examining the continued applicability of these various but complementary ethical theories.

Keywords :

Bhagavad Gītā , Kantian Ethics, *Dharma*, *NiṣkāmaKarma* , Categorical Imperative, Good Will, Duty, Detachment, Autonomy, Deontology, Comparative Philosophy, Ethics, Moral Philosophy.

1. Introduction :

1.1. Background and Significance of the Study :

Despite their age, classical ethical systems continue to provide valuable insights for resolving moral conundrums and promoting human wellbeing. This research explores two such significant systems: Immanuel Kant's moral philosophy from the Western Enlightenment and the *Bhagavad Gītā* from ancient Indian philosophy. Despite being written in very different cultural contexts and centuries apart, this article offers complex frameworks for comprehending moral obligation and the nature of ethical behavior.

An essential component of the Hindu epic *Mahābhārata*, the *Bhagavad Gītā* offers a wealth of moral lessons focused on obligation (*dharma*) and selfless deeds (*karma yoga*), frequently in a spiritual and metaphysical framework. Its lessons, which address basic issues of action, accountability, and emancipation in the face of a moral dilemma on the battlefield, are presented as a conversation between Lord Krishna and the warrior-prince Arjuna. Arjuna, who is caught between fighting his family and carrying out his warrior's duty, receives guidance from the *Gītā* on how to live a moral life.

A rigorous deontological framework that emphasizes rationality, the autonomy of the human will, and universal moral principles is provided by Immanuel Kant's moral philosophy, which is mostly expressed in his Groundwork of the Metaphysics of Morals and Critique of Practical Reason. Kant aimed to create an absolute moral code that all rational creatures must abide by, regardless of their wants or the results of their deeds.

It is important to compare these various philosophical traditions for a number of reasons. It enables a more thorough comprehension of the ways in which various historical, cultural, and philosophical underpinnings influence ethical reasoning. By contrasting different systems, it is possible to see potential universal ethical principles—like the significance of duty and the inward dimension of morality—that speak to a wide range of human experiences, overcoming the apparent cultural distinctions. At the same time, it shows how different metaphysical presuppositions—such as divine will and cosmic order against pure reason and autonomy—lead to different methods of moral application and justification. By combating ethnocentric prejudices and promoting a more sophisticated view of humanity's common moral journey, this process enhances the global knowledge of ethics while simultaneously acknowledging the distinctive advantages that each tradition contributes to the current ethical conversation. A study of this kind can reveal potential universal ethical truths that cut across many traditions and

show the distinctive strengths and weaknesses of each system in tackling the intricacies of moral existence.

1.2. Objectives :

The text discusses the fundamental moral precepts of the *Bhagavad Gītā*, including *Dharma*, *Karma Yoga*, and *Niṣkāma Karma*, and their role in achieving emancipation. It also compares Kantian ethics, focusing on Good Will, Categorical Imperative, and autonomy. It critically analyzes the distinctions between these systems, and their applicability in professional ethics, personal behavior, and social governance.

1.3. Methodology :

This paper explores the concept of *dharma* in Hindu philosophy, which encompasses the cosmic order and life's purpose. It uses a qualitative, comparative philosophical methodology to examine Immanuel Kant's and the *Bhagavad Gītā*'s ethical frameworks. The methodological steps include exposition, comparison, analysis, and synthesis. The focus is on providing evidence-based discussion, allowing for deep exploration of themes without external investigation.

2. The Ethical Framework of the *Bhagavad Gītā :*

2.1. *Dharma* and *Svadharma*: Duty and Righteousness :

Dharma, a fundamental concept in Hindu philosophy, represents the cosmic order and life's purpose. It serves as a foundation for individual behavior and social peace, often translated as obligation or righteousness. In the *Bhagavad Gītā*, Arjuna faces a moral crisis when he must balance his duty to his family and masters with his duty as a warrior. Lord Krishna teaches that acting morally involves carrying out one's *dharma* in the proper spirit, rather than pursuing selfish interests or avoiding pain. Kṛṣṇa reminds Arjuna about svadharma and paradharma and why is svadharma better? It is better to die doing your *Svadharma* than performing *paradharma*. "*Śreyan Svadharma Viguṇaḥ Paradharmātswanuṣṭhitāt Svadharme nidhanaṁ Śreyaḥ paradharmo bhayāvahaḥ*."- said Lord Kṛṣṇa in the *Gītā*. *Svadharma*, or one's own duty, is a crucial contextual component, setting it apart from universalist ethical frameworks. This method results in situational ethics, where universal principles are highly customized, emphasizing the importance of harmony with one's inner self and path.

2.2. *Karma Yoga* and *NiṣkāmaKarma* : The Path of Selfless Action :

Karma Yoga is a spiritual discipline that promotes selfless action, focusing on fulfilling responsibilities without expecting negative outcomes. The cornerstone of *Karma Yoga* is *Niṣkāma Karma*, which translates to "without desire" and emphasizes

disengagement from the outcome rather than the job itself. This approach helps individuals achieve spiritual development, holistic growth, and cleanses the mind. It addresses modern problems like job discontent, workplace anxiety, and the need for external validation by encouraging disengagement from actions' outcomes. By promoting "even-mindedness" and focusing on the task at hand, it creates a "flow state" that boosts productivity, emotional stability, and inner tranquility. Karma Yoga is a practical tool for holistic well-being and peak performance, reducing stress, heightened presence, and higher satisfaction.

2.3. Detachment from Results and the Pursuit of *Mokṣa* (Liberation) :

A *Karma Yoga* emphasizes detachment and a focus on a greater purpose, allowing individuals to maintain composure and calmness despite success or loss. The *Bhagavad Gītā* posits that achieving *Mokṣa* (spiritual emancipation) or salvation involves aligning actions with higher ideals and remaining detached from outcomes. This involves overcoming identification with the temporal ego and calming the mind through self-control and higher activities.

The *Bhagavad Gītā*'s ethical framework does not lack an ultimate goal, even if it strongly supports *Niṣkāma Karma*, or behavior without attachment to the results of one's labor. It is made clear that the pursuit of *Mokṣa*, also known as liberation or salvation, is the ultimate goal and the highest good. Consequently, the "detachment from results" does not indicate a lack of purpose or serve as an aim in and of itself. Rather, it is a technique or a way to achieve this highest spiritual condition, lessen suffering, and cleanse the mind. The ethical acts are carried out with an implicit, higher teleological objective, even if the immediate results are to be ignored. This sets the *Gītā*'s approach apart from a merely deontological position. For a comparison understanding with Kant, who essentially disentangles morality from the pursuit of happiness or any other external purpose, this subtlety is essential. The *Bhagavad Gītā* highlights the importance of selflessness and detachment in performing actions. Krishna encourages Arjuna to act without attachment to personal gain or consequences[1].

2.4. The Role of Intentions and Inner State :

The *Bhagavad Gītā* emphasizes the importance of ethical behavior, stating that actions should be carried out in the right spirit and without selfish motives. It suggests that a balanced state of mind, free from ego inflation and self-promotion, is crucial for success and optimal performance. The *Gītā* also suggests that an action's moral and spiritual nature is largely determined by the agent's intentions and inner condition. It

posits that unselfish, efficient, and morally righteous behavior is possible through inner purity and a balanced mind, ultimately leading to liberation.

3. The Ethical Framework of Immanuel Kant

3.1. The Good Will and Duty for Duty's Sake :

Kant's ethical philosophy emphasizes the Good Will as the only source of moral worth, acting solely out of duty and universal meaning. This concept is fundamental to Kant's philosophy, as it is intrinsically good and independent of external influences. Kant believes that actions should be carried out out of duty, not just out of desire or inclination, to have moral value. He believes that happiness is acceptable as long as it doesn't violate the moral code. Kant's approach is seen as ascetic, formal, and rigorist, ensuring morality is independent of external influences or individual preferences. However, this approach raises questions about the psychological viability and practical applicability of such a demanding standard in the context of complex human motivations and innate empathy.

3.2. The Categorical Imperative: Formulations and Application :

The core idea of Kantian ethics is the categorical imperative. The Categorical Imperative directs acts instantly as objectively necessary, without reference to any other aim, in contrast to hypothetical imperatives (which are conditional, such as "If you want good grades, study"). Regardless of their own objectives or preferences, it is always applicable to all reasonable people in all circumstances. Although there is only one categorical imperative, according to Kant, it can be stated in a number of ways.

Table 1 : Formulations of Kant's Categorical Imperative

Formulation Name	Description	Implications / Core Idea
Formula of Universal Law/Nature	"Act only according to that maxim whereby you can at the same time will that it become a universal law."	Requires that the principle behind one's action (maxim) could consistently be willed as a universal law that everyone follows. If universalizing the maxim leads to a contradiction (either in conception or in will), then the action is immoral.
Formula of Humanity/End in Itself	"Act in such a way that you always treat humanity,	Emphasizes the intrinsic worth and dignity of all

	whether in your own person or in the person of any other, never simply as a means, but always at the same time as an end."	rational beings, asserting that they should never be used or exploited merely as tools to achieve one's own goals, but always respected as autonomous agents.
Formula of Autonomy	"So act that your will can regard itself at the same time as making universal law through its maxims."	Highlights that a rational will is not merely subject to moral law but is also its own lawgiver, capable of legislating universal moral principles.
Formula of the Kingdom of Ends	"So act as if you were through your maxims a law-making member of a kingdom of ends."	Envisions a hypothetical community of rational beings who all act according to maxims that could be universal laws, treating each other as ends in themselves.

By comparing maxims to these formulations, Kant determines moral obligations. Lying regarding debt repayment, for instance, is unethical since it would be impossible to have a guarantee if everyone lied, creating a contradiction. In a similar vein, suicide is wrong since it goes against the fundamental emotion (self-love) that is meant to protect life.

The Categorical Imperative is essentially a test of rational coherence and universalizability rather than just a collection of moral precepts. According to Kant, a behavior is immoral if its underlying principle, when applied universally, results in a logical contradiction (for example, universal lying prevents communication) or compromises the very prerequisites for social interaction or rational agency. According to Kant, this suggests that morality is ingrained in the very framework of reason; irrationality in behavior is intrinsically immoral. This compelling concept offers an objective and non-contingent foundation for ethical standards by demonstrating that moral obligations are not arbitrary external laws but rather stem from the fundamental needs of reason. Kant's categorical imperative emphasizes the importance of universal

moral principles. He argues that moral actions should be guided by principles that can be universalized and applied to all individuals[2].

3.3. Rationality and Autonomy of the Will :

Kant's concept of rational autonomy emphasizes the importance of human action based on self-imposed moral standards, rather than external influences. This autonomy is the basis of moral obligation and human dignity. Kant's idea of moral agency is based on self-legislation, transforming humans from passive recipients to active creators of moral law. This ability to rationally self-legislate, derived from universal reason, is the ultimate basis of intrinsic human dignity. This belief in inherent dignity establishes a universal standard for treating people, regardless of social standing or accomplishments. This concept has significantly influenced contemporary human rights discourse.

3.4. Deontological Nature of Kantian Ethics :

Kantian ethics, a deontological approach, asserts that an action's moral worth is determined by its conformity to duty and moral law, rather than its outcomes. Kant rejects outcomes as a measure of moral worth, stating that a positive consequence does not confer moral value if the action was not carried out out of a sense of obligation. This shift in moral assessment emphasizes the importance of the pure will, requiring a reevaluation of morality.

4. Comparative Analysis: Similarities

4.1. Emphasis on Duty and Action :

Responsibility is central to Kantian ethics and the *Bhagavad Gītā*, emphasizing virtuous commitment and moral behavior. Both systems encourage active participation in the world, with Karma yoga emphasizing the need for continuous work. Both systems emphasize the importance of fulfilling obligations without attachment to outcomes, despite their different theoretical foundations. This convergence highlights the idea that moral existence is dynamic and action-oriented, and ethical ideas must be translated into tangible obligations. Both systems emphasize the importance of detachment from duty and the need for active participation in the world.

4.2. Rejection of Consequentialism as the Primary Moral Determinant :

The *Bhagavad Gītā* and Kantian ethics both reject the idea that an action's morality is primarily based on its effects or results. The *Bhagavad Gītā* emphasizes the importance of avoiding obsessive attachment to outcomes, while Kant's ethics emphasize the morality of an action's universal and absolute moral law. Both theories are anti-utilitarian, focusing on the agent's internal state, intention, and motivation as the locus of

moral value. This internalization fosters moral integrity and steadfastness, promoting calmness and harmony. Both theories are referred to as "anti-utilitarian."

4.3. Importance of Internal Disposition and Motivation :

The *Bhagavad Gītā* emphasizes the importance of a "proper spirit" (*niṣkāma*) in performing karma, avoiding selfish motives and a balanced state of mind. Kant's philosophy emphasizes the importance of an agent's motivation, based on duty and obedience to moral law, in determining the moral worth of an action. Both Kantian ethics and the *Bhagavad Gītā* emphasize the importance of cultivating moral character, focusing on developing a mind free from ego and selfish desires, rather than just following the law or achieving positive outcomes.

5. Comparative Analysis: Differences :

5.1. Source and Nature of Moral Law :

In terms of the ultimate source and character of their respective moral laws, Kantian ethics and the *Bhagavad Gītā* differ fundamentally. According to Kant, universal reason alone is the source of the moral code, which is an internal code of conduct. Regardless of their individual objectives or situations, it is absolute, unconditional, and universally applicable, binding on all rational creatures. Individuals are the authors of the moral laws they are subject to because moral principles are self-legislated by the logical autonomy of the individual will. According to this theory, morality is inherently based on reason.

On the other hand, *Dharma*, the moral code found in the *Bhagavad Gītā*, is derived from cosmic order and divine intent as made clear by Krishna's teachings. The concept of duty (*dharma*) is central to the *Bhagavad Gītā*. Krishna emphasizes the importance of fulfilling one's duty without attachment to consequences[3]. The ethical systems of Kant and the *Bhagavad Gītā* differ significantly. Kant's moral law is derived from universal human reason and is not dependent on divine decree or authority. It rests morality in the innate ability to be autonomous and rational. The *Bhagavad Gītā*, on the other hand, is transcendent and binding, coming from a cosmic order and divine guidance. This metaphysical split significantly impacts moral responsibility, justification, and faith in upholding ethical standards.

5.2. Role of Desires, Emotions, and Ultimate Goals :

The debate over moral motivation is significant. Kant's ethics are often characterized as ascetic, formal, and rigorist, emphasizing the separation of moral behavior from selfish goals. However, the *Bhagavad Gītā* promotes *Niṣkāma Karma*,

which involves disengagement from results or benefits, and aspirations for spiritual emancipation and the well-being of the world. This differs from Kant's pure deontology, which emphasizes duty for duty's sake. The *Gītā*, on the other hand, allows for aspirations for ultimate spiritual emancipation and the well-being of the world, allowing for a more tolerant approach to human emotional life and a higher ethical standard.

5.3. Concept of Freedom and Determinism :

Another important area where the two philosophies divide is in how they conceptualize freedom. We will also talk about Kant's ethical views on "freedom" in this part. What does the phrase "freedom of will" actually mean? What does freedom mean? In this regard, Kant says "we were unable to demonstrate that freedom is an actual property of ourselves or human nature; instead, we observed that it must be assumed if we are to conceive of a being as rational and aware of its causation in relation to its acts, i.e., as equipped with a will"[4]. According to Kant, intellectual autonomy and freedom are inextricably intertwined. It is the ability of the will to be its own lawgiver, behaving in accordance with moral standards that it has placed on itself as opposed to being dictated by desires or outside circumstances. This is the "freedom to" independently decide what is morally right and what is not. According to Kant, freedom is a prerequisite for the feasibility of the categorical imperative rather than a universal law that is fixed in stone.

The *Bhagavad Gītā* emphasizes human freedom through reason and transcending innate tendencies, while acknowledging the law of karma. It encourages rational self-legislation and the ability to overcome predefined tendencies through conscious action. The *Bhagavad Gītā* defines freedom as emancipation from the consequences of past deeds and ambitions. The main distinction is whether freedom is about discovering one's nature and overcoming conditioning (*Gītā*) or the origin of moral rule (Kant).

5.4. Contextual vs. Universal Application of Duty :

Kant's categorical imperative aims for universally applicable morality, based on the principle of *Dharma*. However, the *Bhagavad Gītā* introduces *Svadharma*, or one's own duty, which is specific to a person's role, social standing, and unique circumstances. This creates a conflict between Kant's abstract universalism, which provides clarity and impartiality through universality, and the *Bhagavad Gītā*'s situated morality, which contextualizes each person's duty based on their role, nature, and circumstances. This highlights the need for a balance between individual life particularities and universal moral requirements.

Table 2 : Key Ethical Concepts: *Bhagavad Gītā* vs. Kant

Category	*Bhagavad Gītā*	Kantian Ethics
Core Ethical Principle(s)	*Dharma*, *Karma Yoga*, *Niṣkāma Karma*	Good Will, Categorical Imperative, Duty
Source of Moral Law	Cosmic Order / Divine Will (Krishna's teachings)	Universal Reason / Autonomy of the Will
Nature of Moral Action	Selfless action without attachment to *fruits* (*Niṣkāma Karma*)	Action purely *from* duty (Good Will)
Role of Consequences	Rejected as primary determinant; attachment to results causes suffering	Rejected as determinant; moral worth independent of consequences
Role of Desires/Emotions	Detachment from *results* (*Niṣkāma Karma*), but desire for *Lokasaṁgraha* (welfare of humanity) and *Mokṣa* acceptable; accommodates feelings/love	Must be excluded for an action to have moral worth; morality separate from happiness/inclination; "rigorist"
Ultimate Goal of Ethics	*Mokṣa* (Liberation / Salvation)	Virtue (as supreme good), not happiness; duty is an end in itself
Concept of Freedom	Transcendence of Karmic tendencies through rational control of senses	Rational Self-Legislation; "freedom to" impose moral requirements
Application of Duty	Contextual (*Svadharma* – duty varies by role/circumstance)	Universal and Unconditional (Categorical Imperative)

6. Conclusion :

The deep ethical foundations of Immanuel Kant and the *Bhagavad Gītā* have been elucidated by this comparative study, which has shown both striking parallels and essential distinctions. Both traditions go beyond a narrow focus on external results to emphasize the fundamental significance of obligation and the moral agent's inward disposition. They both oppose consequentialism as the main factor in determining moral worth, placing more emphasis on the inherent worth of morally upright behavior and the purity of intention. Moral agents are made more resilient by this common emphasis on

internalizing moral values, which enables them to uphold their integrity regardless of success or failure on the outside. A prevalent theme that demonstrates a cross-cultural understanding of human responsibility is the universal need to live a decent life and act morally. The ultimate kind of morality, according to *Gitā* and Kant, is carrying out one's duties for their own sake, without consideration for reward or personal gain. For the simple reason that it is his job, the moral man must fulfill it. "A man's will is good, not because of what it performs or effects, not by its aptness for the attainment of some proposed end, but simply by virtue of the volition, i.e., it is good in itself"[5].

Notwithstanding these noteworthy similarities, the two schools of thought differ greatly in their metaphysical underpinnings and real-world applications. The *Bhagavad Gītā* bases its moral code (*Dharma*) on divine will and cosmic order. *Svadharma*, or obligations, are frequently tailored to an individual's role and past *karma*. This is in contrast to Kant's moral law, which derives from the autonomous will and universal human reason and results in duties that are unconditional and applicable to everyone. This metaphysical dichotomy affects how moral duty is justified as well as how faith and reason relate to upholding ethical standards. Furthermore, the *Gītā* permits desires related to the welfare of humanity (*Lokasaṁgraha*) and ultimate liberation (*Mokṣa*) through *Niṣkāma Karma*, suggesting a more nuanced approach to human flourishing than Kant, who demands that desires and emotions be strictly excluded for an action to have moral worth. Additionally, the concepts of freedom are different: the *Gītā*'s definition of freedom entails transcending karmic conditioning, whereas Kant's definition is logical self-legislation. Kant believed that an action was not moral if it was motivated by inclination. The *Gitā* ethics, on the other hand, calls for us to moderate our impulses, keep them in the proper order, and make sure that reason always rules and subjugates them rather than asking us to eradicate them. The *Gitā* ethics does not mean a life without passion; rather, it is a life in which passion is transcended. In this regard, *Bhagavad Gitā*: Chapter 3, Verse 42, Shree Krishna says - "*indriyāṇi parāṇyāhur indriyebhyaḥ paraṁ manaḥ Manasas tu parā buddhir yo buddheḥ paratas tu saḥ*" [6].

It is indisputable that these ethical frameworks are still relevant in today's world. The *Niṣkāma Karma* principles of the *Bhagavad Gītā* provide a strong foundation for psychological health and performance, tackling contemporary issues including decision fatigue, job stress, and the need for approval from others. Integrity and accountability in governance are promoted by its emphasis on selfless service and composure, which offers guidelines for moral leadership and public service. With its emphasis on universal human

dignity and autonomy, Kantian ethics continues to influence discussions on international law, human rights, and moral leadership. The Categorical Imperative ensures that decisions respect the intrinsic value of every person by acting as a strong test for rational consistency in policymaking.

In conclusion, Kant presents a strict, universal, and reason-based deontological framework focused on duty and autonomy, whereas the *Bhagavad Gītā* gives a situated and spiritually connected ethics emphasizing selfless action for liberation. By showing that many philosophical trajectories can result in comparable moral imperatives while providing unique viewpoints on the essence of morality, human agency, and the road to a righteous life, their comparative study enhances our knowledge of ethical philosophy across cultural boundaries.

References :

1. *Bhagavad Gītā*: Chapter 3
2. Kant, I. (1785). *Grounding for the Metaphysics of Morals*. Translated by J. W. Ellington.
3. *Bhagavad Gītā*: Chapter 3
4. Kant, I. (2020). *Fundamental Principles of the Metaphysics of Moral*. Germany: Outlook Verlag. P. 49.
5. Poter, N. (1886). *Kant's Ethics: A Critical Exposition*. Chicago: S. C. Griggs and company. P. 54.
6. *Bhagavad Gītā*, hapter 3, Verse 42

Email: gdasindianphilosophy@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037